नववर्षाङ्क

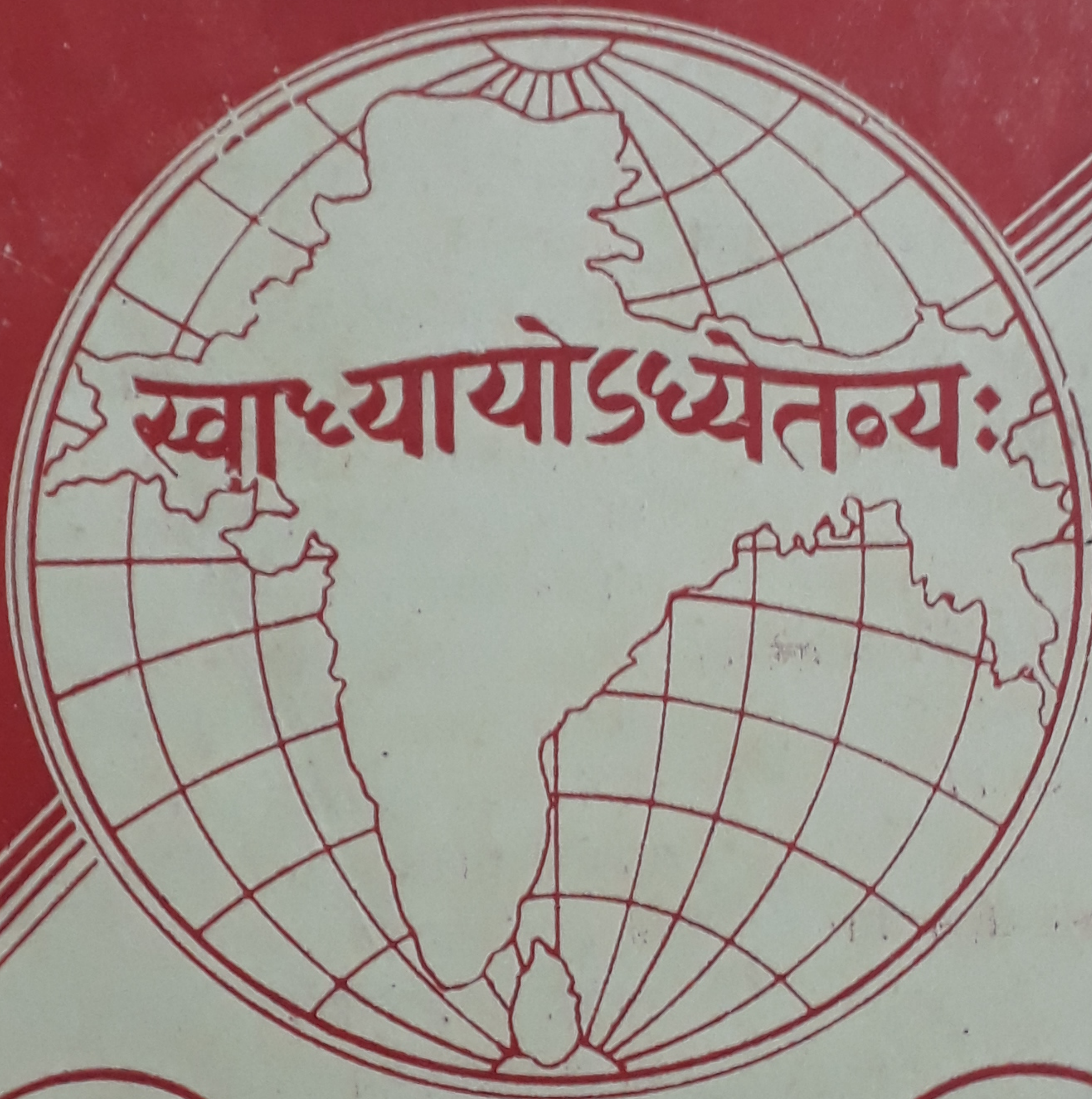
श्रीः

श्रीस्वाध्याय

शरदङ्क

वर्ष १०
सं० २००८

संख्या ५
कार्तिक



वार्षिक मूल्य ४)

इस अङ्कका मूल्य २)रु०

संस्थापक—
श्रीमान् अमृतवाग्भव आचार्य

सम्पादक—
श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी

-विषय-सूची

❀ श्रीः ❀

❀ श्रीस्वाध्याय ❀

——०॰——

संस्थापक तथा प्रधानाध्यक्ष—

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहिम आचार्य

श्री १०८ मान् अमृतवाग्भवजी महाराज



संरक्षक—

धर्ममार्त्तण्ड राजासाहब श्री० १०५ मान् दुर्गासिंहजी बहादुर सी० आई० ई०, सोलन।
श्रीमान् लाला शिवचरणदासजी, सदस्य परामर्शदातृ-समिति हिमाचलप्रदेश, सोलन।

सहायक—

श्री १०५ मती स्व० मांजी महारानी साहिबा [सिरमौरीजी] बघाटराज्य।
आयुर्वेदमहोपाध्याय श्री पं० गोवर्द्धन शर्माजी छांगाणी; सीताबर्डी, नागपुर।
श्रीमान बा० भागीरथलालजी मिलअानर, लहरागागा, [पटियाला राज्यसङ्घ]
श्रीमान् ला० अमरनाथजी रईस, दिल्ली।
श्रीमान् लाला श्यामलालजी मित्तल, अनूपशहर [उत्तरप्रदेश]
श्रीमान् सेठ गयाप्रसादजी खण्डेलवाल सिल्चर [आसाम]
श्रीमान् स्व० पं० चतुर्भुजजी राजपुरोहित ताल्लुकेदार भरतपुर।
श्रीमान् स्व० अक्रियानन्दजी [श्री चुन्नीलालजी] भरतपुर।
श्रीमान् ला० शिवप्रसादजी आढ़ती, खड़ [पंजाब]



प्रधान सम्पादक और व्यवस्थापक—

श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिषाचार्य

उप सम्पादिका—

श्रीमती शकुन्तला देवी त्रिवेदी

प्रकाशक—

श्रीस्वाध्यायसदन सोलन [हिमाचल प्रदेश]

श्रीस्वाध्यायके नियम तथा उद्देश्य

उद्देश्य—

समस्त संसारको हितकी ओर ले जाना तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक मोक्ष (स्वातन्त्र्य) प्राप्त कराना 'श्रीस्वाध्याय' का मुख्य उद्देश्य है।

संचालकगणोंके नियम—

संरक्षक—

(१) जो महानुभाव ३००) तीनसौ रुपयेसे अधिक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक माने जायेंगे।

सहायक—

(२) जो सज्जन ५१) रु० से ३००) रु० तक प्रतिवर्ष सहायता देंगे, वे 'श्रीस्वाध्याय' के सहायक माने जायेंगे।

'श्रीस्वाध्याय' आश्विन शुक्ला १०, पौष शुक्ला १०, चैत्र शुक्ला १० और आषाढ़ शुक्ला १० को प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ४) रु० और एक प्रतिका १।) रु० है।

(२) जिन सज्जनोंके लेख श्रीस्वाध्याय-सदनकी ओर से प्रार्थना-पूर्वक मंगवाये जायेंगे वे अवश्य प्रकाशित होंगे अन्य लेख यदि गवेषणा-पूर्ण मौलिक और उपयोगी समझे जावेंगे तो यथासमय प्रकाशित हो जायगे, अन्यथा नहीं।

(३) लेख, कविता, चित्र, समालोचनार्थ पुस्तकोंकी दो दो प्रतियां और विनिमय (परिवर्त्तन) की पत्र पत्रिकाएं सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (शिमला) के पतेसे भेजने चाहिएं।

(४) लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री स्पष्ट अक्षरोंमें कागजके एक ओर ही लिखी होनी चाहिए।

(५) किसी लेखके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने न लौटाने का सम्पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। अस्वीकृत लेख डाकव्यय प्राप्त होने पर ही लौटाये जा सकेंगे।

ग्राहकोंके नियम—

'श्रीस्वाध्याय' के स्थायी ग्राहक वर्षारम्भके प्रथमाङ्क से (आश्विनमास की विजयादशमीसे) ही बनाये जाते हैं, चाहे वे मूल्य कभी भेजें। यदि विजयादशमीका 'नववर्षाङ्क' समाप्त हो जावे या कोई ग्राहक अवधि समाप्त होने पर पीछे विशेषांक न लेना चाहें तो बीचमें किसी भी समयसे ग्राहक हो सकते हैं। ऐसी स्थितिमें उनसे वार्षिक मूल्य ४) रु० न लेकर वर्ष-समाप्ति (आषाढ़) तकके शेष अङ्कोंका मूल्य ही लिया जायगा। 'नववर्षाङ्क' के बिना तीन अङ्कों या नौ मासका मूल्य ३) रु० और एक अङ्क का मूल्य १।) रु० मनीआर्डर द्वारा पेशगी आना चाहिए। वी० पी० मंगवानेमें उक्त मूल्यमें छः आने रजिस्ट्री खर्च के अधिक बढ़ जायेंगे। वर्षारम्भसे स्थायी ग्राहक बन कर पूरी फाइल मंगवानेमें ही ग्राहकोंको विशेष लाभ है।

मूल्य भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर अपना नाम तथा पूरा पता और ग्राहकसंख्या स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिए। यदि ग्राहक संख्या स्मरण न हो और पुराने ग्राहक हों तो मनीआर्डरके कूपन पर 'पुराना' शब्द और नये ग्राहक हों तो 'नया' शब्द नामके साथ अवश्य लिख देना चाहिए। वार्षिक मूल्य या एक अङ्कके मूल्यका नोट या टिकट लिफाफेमें कदापि न भेजें।

'श्रीस्वाध्याय' का नमूना बिना मूल्य किसी को नहीं भेजा जाता। जिन सज्जनोंके जवाबी पत्र या उत्तरके लिए टिकट आवेंगे, उन्हींको तत्काल उत्तर दिया जावेगा। 'श्रीस्वाध्याय' प्रकाशित होनेकी तिथि (शुक्ला दशमी) को प्रत्येक ग्राहकके नाम बड़ी सावधानीसे भेज दिया जाता है। यदि किसी ग्राहकके पास कोई अङ्क न पहुंचे तो उसके प्रकाशित होनेकी तिथिसे १५ दिनके अन्दर हमें सूचना देनी चाहिए। बादकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—

श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)

श्रीस्वाध्यायके नियम तथा उद्देश्य

उद्देश्य—

समस्त संसारको हितकी ओर ले जाना तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक मोक्ष (स्वातन्त्र्य) प्राप्त कराना 'श्रीस्वाध्याय' का मुख्य उद्देश्य है।

संचालकगणोंके नियम—

संरक्षक—

(१) जो महानुभाव ३००) तीनसौ रुपयेसे अधिक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक माने जायेंगे।

सहायक—

(२) जो सज्जन ५१) रु० से ३००) रु० तक प्रतिवर्ष सहायता देंगे, वे 'श्रीस्वाध्याय' के सहायक माने जायेंगे।

'श्रीस्वाध्याय' आश्विन शुक्ला १०, पौष शुक्ला १०, चैत्र शुक्ला १० और आषाढ़ शुक्ला १० को प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ४) रु० और एक प्रतिका १) रु० है।

(२) जिन सज्जनोंके लेख श्रीस्वाध्याय-सदनकी ओर से प्रार्थना-पूर्वक मंगवाये जायेंगे वे अवश्य प्रकाशित होंगे अन्य लेख यदि गवेषणा-पूर्ण मौलिक और उपयोगी समझे जावेंगे तो यथासमय प्रकाशित हो जायगे, अन्यथा नहीं।

(३) लेख, कविता, चित्र, समालोचनार्थ पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियां और विनिमय (परिवर्त्तन) की पत्र पत्रिकाएं सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (शिमला) के पतेसे भेजने चाहिएं।

(४) लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री स्पष्ट अक्षरोंमें कागजके एक ओर ही लिखी होनी चाहिए।

(५) किसी लेखके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने न लौटाने का सम्पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। अस्वीकृत लेख डाकव्यय प्राप्त होने पर ही लौटाये जा सकेंगे।

ग्राहकोंके नियम—

'श्रीस्वाध्याय' के स्थायी ग्राहक वर्षारम्भके प्रथमाङ्क से (आश्विनमास की विजयादशमीसे) ही बनाये जाते हैं, चाहे वे मूल्य कभी भेजें। यदि विजयादशमीका 'नववर्षाङ्क' समाप्त हो जावे या कोई ग्राहक अवधि समाप्त होने पर पीछे विशेषांक न लेना चाहें तो बीचमें किसी भी समयसे ग्राहक हो सकते हैं। ऐसी स्थितिमें उनसे वार्षिक मूल्य ४) रु० न लेकर वर्ष-समाप्ति (आषाढ़) तकके शेष अङ्कोंका मूल्य ही लिया जायगा। 'नववर्षाङ्क' के बिना तीन अङ्कों या नौ मासका मूल्य ३) रु० और एक अङ्क का मूल्य १) रु० मनीआर्डर द्वारा पेशगी आना चाहिए। वी० पी० मंगवानेमें उक्त मूल्यमें छः आने रजिस्ट्री खर्च के अधिक बढ़ जायेंगे। वर्षारम्भसे स्थायी ग्राहक बन कर पूरी फाइल मंगवानेमें ही ग्राहकोंको विशेष लाभ है।

मूल्य भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर अपना नाम तथा पूरा पता और ग्राहकसंख्या स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिए। यदि ग्राहक संख्या स्मरण न हो और पुराने ग्राहक हों तो मनीआर्डरके कूपन पर 'पुराना' शब्द और नये ग्राहक हों तो 'नया' शब्द नामके साथ अवश्य लिख देना चाहिए। वार्षिक मूल्य या एक अङ्कके मूल्यका नोट या टिकट लिफाफेमें कदापि न भेजें।

'श्रीस्वाध्याय' का नमूना बिना मूल्य किसी को नहीं भेजा जाता। जिन सज्जनोंके जवाबी पत्र या उत्तरके लिए टिकट आवेंगे, उन्हींको तत्काल उत्तर दिया जावेगा। 'श्रीस्वाध्याय' प्रकाशित होनेकी तिथि (शुक्ला दशमी) को प्रत्येक ग्राहकके नाम बड़ी सावधानीसे भेज दिया जाता है। यदि किसी ग्राहकके पास कोई अङ्क न पहुंचे तो उसके प्रकाशित होनेकी तिथिसे १५ दिनके अन्दर हमें सूचना देनी चाहिए। बादकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—

श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)

श्रीस्वाध्याय

[शरदङ्क]

स्वराष्ट्रशिर्षा गृह्णीयाच्चिकीर्षुः स्वां समुन्नतिम् ।
दूरदृष्टिर्यया भूत्वा न कदाऽपि विषीदति ॥ [राष्ट्रालोक]

वर्ष ११ | सोलन, आश्विन शु० १० बुधवार सं० २००८ वि० | संख्या १

वसुन्धराद्रं मानवानां व्यवस्थां शोभासम्पच्छालिनीमार्यरीत्या ।
प्रेम्णा लोके स्थापयंस्तत्त्वदर्शी श्रीस्वाध्यायः कल्पतां विश्वभूत्यै ॥

—अ० वा० आचार्य

निवेदन

[श्री १०८ आचार्य अमृतवाग्भवजी महाराज]

ससारं वाऽसारं जगदवितथं वाऽस्ति वितथं,
सदा येषामेवं तुदति हृदयं संशयगणः ।
भजन्तां निःशङ्कं कृतिशतसमीड्यं जगति ते,
जनाः श्रीस्वाध्यायं सपदि परमं निर्णयपदम् ॥१॥

समर्घं स्यादन्नं जगति नु महर्घं तदथवा,
कदैवं जिज्ञासा वसति हृदि येषां बलवती ।
कृते तेषां क्लेशप्रशमनचणं धन्यमतुलं,
विहाय स्वाध्यायं न किमपि परं साधनमिदं ॥२॥

ग्यारहवें वर्ष में पदार्पण

श्री भगवती जगज्जननी महामायाकी अपार अनुकम्पासे श्रीस्वाध्याय अपने जीवनके दश वर्ष पूर्ण कर ग्यारहवें वर्षमें पदार्पण कर रहा है। श्रीस्वाध्यायका हिन्दी साहित्यमें कैसा सम्मानप्र स्थान बनगया और इसने भारतीय जनताको किस प्रकार अपनी ओर आकृष्ट कर लिया, यह प्रिय पाठकोंसे छिपा हुआ नहीं। राष्ट्रकी सांस्कृतिक, सामाजिक धार्मिक व साहित्यिक चेतनाको उद्बुद्ध करनेमें इस पत्रका कितना बड़ा हाथ रहा है, यह भी सर्वजन विदित ही है। इस भयंकर महर्घताके युगमें अनेकानेक विघ्न बाधाओंके झंझाके झोकोंको सहता हुआ यह पत्र अपनी स्थितिको उत्तरोत्तर दृढ़ करता हुआ अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें अग्रसर हो रहा है और प्रिय पाठकोंका मार्ग प्रदर्शन करता जा रहा है, इसका समग्र श्रेय श्रीस्वाध्यायके संस्थापक, संरक्षक, सहायक, ग्राहक, लेखक, व पाठक वर्गको ही है। पत्रके संस्थापक प्रातः स्मरणीय श्रीमदाचार्य चरण अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराजका वरद हस्त और अपार अनुग्रह श्रीस्वाध्याय पर सदा बना रहता है। आपके शुभाशीर्वादोंका ही यह प्रताप है कि विगत दस वर्षोंसे जब कि भारतके अनेक प्रमुख प्रतिष्ठित पत्रोंको अपना प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ा, यह पत्र निरन्तर जनता जनार्दनकी सेवा करता आ रहा है। पत्रके संरक्षक बघाट नरेश श्री १०८ मान् दुर्गासिंह जी बहादुर सी० आई० ई० महोदय आरम्भसे ही अपनी छत्र छायामें इस पत्रको संवर्धित करते आ रहे हैं। श्रीमान् राजा साहबकी विद्वत्ता, विद्या-व्यसन उदारता, व धर्मनिष्ठा ही का यह प्रभाव और सुपरिणाम है कि श्रीस्वाध्याय सरीखा उच्चकोटिका सांस्कृतिक पत्र उत्तरोत्तर बद्धमूल होता हुआ फलता फूलता जा रहा है।

श्रीयुत सेठ शिवचरणदास जी सदस्य परामर्शदातृ समिति हिमाचल प्रदेशने भी गत वर्षसे पत्रका संरक्षकत्व स्वीकार कर अपनी गुण ग्राहकताका परिचय दिया है, इनके अतिरिक्त आयुर्वेद महोपाध्याय श्री पं० गोवर्धन शर्मा जी छांगाणी सीताबर्डी नागपुर श्रीमान् बा० भगीरथ लाल जी मिश्र आनर (लहरागागा) श्रीमान् लाला अमरनाथजी रईस (दिल्ली) श्रीमान् ला० श्यामलाल जी मित्तल अनूप शहर, श्रीमान् सेठ गयाप्रसाद जी खण्डेलवाल सिरचर श्रीमान् स्व० पं० चतुर्भुज जी राजपुरोहित ताल्लुकेदार भरतपुर आदि सभी सहायक गण पत्रको अपना समझ कर इसकी सहायतामें सदा तत्पर रहते हैं। इनके अनुपम आर्थिक और अन्य सभी प्रकारके सहयोगसे भी पत्र दिनोदिन प्रगति पथ पर अग्रसर होनेमें समर्थ हो रहा है। श्री प्रिन्सिपल हरिश्चन्द्र जी शास्त्री एम० ए० महोदयके सत्परामर्श और सहयोग भी महत्वपूर्ण हैं।

ग्राहक अनुग्राहक महोदयोंके आधार पर पत्र चल ही रहा है। कोई भी पत्र अपने पैरों खड़ा नहीं रह सकता यदि उसके पर्याप्त संख्यामें ग्राहक न हों। और ग्राहकोंकी संख्या-वृद्धि सुन्दर उपयोगी महत्वपूर्ण पाठ्य सामग्री पर निर्भर करती है। इसके लिये विद्वान् लेखकोंका हार्दिक सहयोग हमें सदा प्राप्त होता रहा है। अतः हम अपने उक्त सभी संस्थापक, संरक्षक सहायक, ग्राहक व लेखक वर्गका हृदयसे धन्यवाद करते हुए उनके लिए परम प्रभुसे मंगल कामना करते हैं, ताकि भविष्यमें भी इन सबका सहयोग यथापूर्व प्राप्त होता रहे।

यह अङ्क विलम्बसे क्यों ?

श्रीस्वाध्याय सदा नियत समय पर अपने पाठकोंके हाथोंमें पहुँच जाता है। इसके किसी भी अङ्कके एक दिन भी विलम्बसे मिलने पर पाठकोंके धैर्यका बाँध टूट जाता है और कार्यालयमें शिकायती पत्रोंका ढेर लग जाता है। अतः सदा यही प्रयत्न रहता है कि निश्चित तिथिसे भी एक दिन पूर्व ही अङ्क पाठकोंके पास पहुँच जाए। इस बार भी ऐसा ही प्रबन्ध किया गया था। किन्तु बीच ही में पत्रके प्रधान सम्पादक पूज्य पितृव्यपाद श्री पं० हरदेवजी शर्मा त्रिवेदी ज्वराक्रान्त होकर टाईफाइड ज्वरसे पीड़ित हो गये। परिणाम स्वरूप पत्र प्रकाशनके कार्यमें आकस्मिक रूपसे व्यवधान पड़ गया। इस अप्रत्याशित दैवी विपत्तिके कारण ही पत्रके प्रकाशनमें इतना अवांछनीय विलम्ब हुआ।

आशा है उक्त परिस्थितिजन्य हमारी विवशताको देखते हुए ग्राहक अनुग्राहक व पाठक महोदय विलम्बके लिए क्षमा करेंगे।

श्री पितृव्यपादकी रुग्णावस्थामें बघाट नरेश श्री १०८ मान् राजा साहब दुर्गासिंह जी बहादुर महोदय ने जिस आत्मीयताके साथ सर्वविध सहायता कर आदर्श अनुकरणीय सहयोग दिया, तदर्थ श्रीमान् राजा साहबके लिए सधन्यवाद प्रभुसे मंगल कामना है। श्री डी. आर. अन्तानी (फर्स्ट क्लास मेजिस्ट्रेट सोलन) तथा श्री ज्योतिप्रसाद जी एम. बी. बी. एस. (चीफ-मेडीकल आफीसर सोलन) इन दोनों महोदयोंने भी जिस प्रकार रात दिन एक कर शीघ्र स्वास्थ्य लाभके लिए प्रयत्न किया उसके लिए इन दोनों महानुभावोंको जितने भी धन्यवाद दिये जाय थोड़े हैं। वास्तवमें श्रीमन् श्री राजा साहब, श्री चीफ मेडीकल आफिसर महोदय व श्रीमान् अन्तानी साहबके सतत प्रयत्न व श्री जगज्जननी मातेश्वरी महामाया अन्नपूर्णा भगवतीके अनन्त कृपा कटाक्षोंसे ही श्री पूज्य पितृव्यपाद इस भयंकर रोगसे इतना शीघ्र स्वास्थ्यलाभ कर सकनेमें समर्थ हो सके।

यद्यपि उक्त विवशताके कारण यह अङ्क जैसा चाहिए वैसा नहीं बन पड़ा, फिर भी जैसा भी बना है पाठकोंकी सेवामें उपस्थित है और आशा है कि इस अङ्कको इस रूपमें पाकर भी हमारे प्रिय पाठकगण प्रसन्न होंगे।

———

वी० पी० किसीको भी नही भेजी जायेगी

यह नववर्षाङ्क किसी भी ग्राहकको वी० पी० द्वारा नहीं भेजा जायेगा। क्योंकि नये डाक नियमानुसार 'श्रीस्वाध्याय'के वर्षाङ्ककी V. P. P. वी० पी० पर ।≡)। सवा सात आनेका मार्ग व्यय (टिकट) लगेगा। कुछ भले मानुष तो वी० पी० मंगवाकर भी लौटा देते हैं और किसीके समय पर न छुड़ानेसे लौट आती है, अतः कार्यालयको व्यर्थ हानि उठानी पड़ती है, इसलिए हमने अब वी० पी० न भेजनेका निश्चय किया है। अतः अब कोई ग्राहक वी० पी० द्वारा 'श्रीस्वाध्याय' पानेकी आशा न रखें। पहिले वार्षिक मूल्य ४) भेज देनेसे ग्राहकोंको आठ आनेकी बचत है और अङ्क छपते ही उन्हें मिल जाता है। वी० पी० ४॥) में पड़ती है और सब ग्राहकोंको भेजनेके बाद विलम्बसे भी मिलती है इस दृष्टिसे भी पहले मूल्य भेजनेमें ही ग्राहकोंको विशेष लाभ है। जिन ग्राहकोंको अङ्क सुरक्षित न पहुँचने या डाकमें गुम होनेका भय हो वे वार्षिक मूल्यके साथ ।≈) अधिक भेजें तो उन्हें 'नववर्षाङ्क' रजिष्ट्रीसे भेजा जा सकेगा। चारों अङ्क भी रजिष्ट्रीसे भेजे जा सकेंगे। चारों अङ्क रजिष्ट्रीसे मंगानेके लिए १≈) अधिक भेजना चाहिए।

———

सम्पादकीय विचार:—

कांग्रेसमें पुनः प्राणप्रतिष्ठाके प्रयत्न

पिछले दिनों कांग्रेसके शरीरमें पर्याप्त भले-बुरे परिवर्तन हो गये। इन परिवर्तनोंने विशेषतः कांग्रेस और सामान्यतः भारतके समग्र राजनैतिक वातावरणमें अनेक प्रकारकी क्रिया और प्रतिक्रियाएं आरम्भ हो गई हैं। राष्ट्रके भविष्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़नेकी संभावना है। इस नाटकीय परिवर्तनके सम्भावित परिणामों पर विचार करनेसे पूर्व हमें इसकी पृष्ठभूमि पर विचार करना होगा। यह देखना होगा कि कौनसे कारणोंसे प्रेरित होकर श्री नेहरूजीने श्री टण्डनजीको कांग्रेसके अध्यक्षपदसे त्यागपत्रके लिए बाध्य किया और स्वयं अध्यक्ष बननेको प्रस्तुत हो गये।

आजकलकी कांग्रेसके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारका कोई भी विचार व्यक्त करनेसे पूर्व सदा इस तथ्यको भलीभांति ध्यानमें रखना चाहिये कि आजके कांग्रेसजनोंके पारस्परिक मतभेद किन्हीं सिद्धान्त-विशेषोंके कारण न होकर शुद्ध रूपसे वैयक्तिक स्वार्थ पर आधारित हैं। स्पष्ट बात तो यह है कि कांग्रेस जीवित भी है या नहीं, अभी तो यही निश्चित नहीं हो पाया, कांग्रेस के सभी बड़े-बड़े नेता और प्रमुख पत्र बार २ यह कहते और लिखते नहीं थकते कि कांग्रेसमें पुनः प्राणोंका संचार करना आवश्यक है। अभी उस दिन कांग्रेस के प्रमुख पत्र 'हिन्दुस्तान'ने सर्वप्रथम यही शीर्षक दिया था कि—

'कांग्रेसमें पुनः प्राण-प्रतिष्ठाके प्रयत्न'

इससे तो स्पष्ट होता है कि कांग्रेस जो वास्तवमें मर चुकी है, उसे फिरसे जीवित करनेके प्रयत्न किये जाने लगे हैं। वह जीवित भी हो सकेगी या नहीं? यह तो भविष्य की बात है। पर सामान्य प्रकृतिके नियमोंको माननेवाला तो कोई भी समझदार व्यक्ति कभी यह नहीं स्वीकार करेगा कि मर कर भी कोई किसीके भौतिक प्रयत्नोंसे जीवित हो उठे। आध्यात्मिक उपायों या दैवी शक्ति की बात दूसरी है।

इस प्रकार जो संस्था मरी हुई है, उसके भला सिद्धांत हो ही कैसे सकते हैं। उस निष्प्राण या कबंधमात्र संस्थाको चाहे कोई कितने ही जोरसे हिलाये, धक्के दे, पर वह भी चैतन्य-शक्ति को प्राप्त कर नहीं सकती। जब कांग्रेसमें न प्राण है न उसका कोई सिद्धांत है, तो सिद्धांतोंके कारण मतभेदकी बात ही असम्भव है। यहां तो शुद्ध रूपसे वैयक्तिक स्वार्थ ही इन उथल-पुथलोंके कारण हैं। कांग्रेसके इन परिवर्तनों पर विचार करते हुए हम बहुत पीछे न जाकर किदवई कांडसे ही प्रारम्भ करते हैं। श्री टण्डनजीके साथ विरोध होनेके कारण श्री रफी अहमद किदवई और श्री अजितप्रसाद जैनने केन्द्रीय मन्त्रिमंडलसे त्यागपत्र दे दिया और इस सम्बन्धमें एक वक्तव्य देकर श्री टण्डनजीको जी भर कर कोसा। इस पर श्री नेहरूजीने मना कर श्री किदवई और श्री जैनको पुनः मंत्रिमंडलमें ले लिया। इस समय भी इन दोनोंने फिरसे कांग्रेस तथा उसके अध्यक्ष पर खूब कीचड़ उछाला और कहा कि मन्त्रिमण्डलमें रह कर भी हम कांग्रेसकी कटु आलोचना करनेमें स्वतन्त्र हैं। इस पर श्री टण्डनजीने अनुशासनकी दुहाई दी और कहा कि अनुशासन पालनके नाते श्री किदवईको मन्त्रिमण्डलमें रहते हुए कांग्रेसकी आलोचना करनेका अधिकार नहीं है। फलतः श्री किदवईने पुनः मन्त्रिमण्डल और कांग्रेस दोनोंसे त्यागपत्र दे दिया।

किन्तु श्री नेहरूजी राष्ट्रके सबसे बड़े हितका बलिदान करके भी किसी भी मूल्य पर श्री किदवईको अपनेसे दूर नहीं करना चाहते थे। इसलिए श्री किदवईके पीछे श्री नेहरूजीने भी कांग्रेस कार्यकारिणी समितिसे त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र देते समय वे भलीभांति जानते थे कि उनका त्यागपत्र तो स्वीकार होगा नहीं और श्री टण्डनजीको त्यागपत्र देना पड़ जायगा। उसके पश्चात् मैं स्वयं कांग्रेस अध्यक्ष बन कर श्री रफी अहमद किदवईको

सम्पादकीय विचारः—

कांग्रेसमें पुनः प्राणप्रतिष्ठाके प्रयत्न

पिछले दिनों कांग्रेसके शरीरमें पर्याप्त भले-बुरे परिवर्तन हो गये। इन परिवर्तनोंने विशेषतः कांग्रेस और सामान्यतः भारतके समग्र राजनैतिक वातावरणमें अनेक प्रकारकी क्रिया और प्रतिक्रियाएं आरम्भ हो गई हैं। राष्ट्रके भविष्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़नेकी संभावना है। इस नाटकीय परिवर्तनके सम्भावित परिणामों पर विचार करनेसे पूर्व हमें इसकी पृष्ठभूमि पर विचार करना होगा। यह देखना होगा कि कौनसे कारणोंसे प्रेरित होकर श्री नेहरूजीने श्री टण्डनजीको कांग्रेसके अध्यक्षपदसे त्यागपत्रके लिए बाध्य किया और स्वयं अध्यक्ष बननेको प्रस्तुत हो गये।

आजकलकी कांग्रेसके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारका कोई भी विचार व्यक्त करनेसे पूर्व सदा इस तथ्यको भलीभांति ध्यानमें रखना चाहिये कि आजके कांग्रेसजनोंके पारस्परिक मतभेद किन्हीं सिद्धान्त-विशेषोंके कारण न होकर शुद्ध रूपसे वैयक्तिक स्वार्थ पर आधारित हैं। स्पष्ट बात तो यह है कि कांग्रेस जीवित भी है या नहीं, अभी तो यही निश्चित नहीं हो पाया, कांग्रेस के सभी बड़े-बड़े नेता और प्रमुख पत्र बार २ यह कहते और लिखते नहीं थकते कि कांग्रेसमें पुनः प्राणोंका संचार करना आवश्यक है। अभी उस दिन कांग्रेस के प्रमुख पत्र 'हिन्दुस्तान'ने सर्वप्रथम यही शीर्षक दिया था कि—

'कांग्रेसमें पुनः प्राण-प्रतिष्ठाके प्रयत्न'

इससे तो स्पष्ट होता है कि कांग्रेस जो वास्तवमें मर चुकी है, उसे फिरसे जीवित करनेके प्रयत्न किये जाने लगे हैं। वह जीवित भी हो सकेगी या नहीं? यह तो भविष्य की बात है। पर सामान्य प्रकृतिके नियमोंको मानने वाला तो कोई भी समझदार व्यक्ति कभी यह नहीं स्वीकार करेगा कि मर कर भी कोई किसीके भौतिक प्रयत्नोंसे जीवित हो उठे। आध्यात्मिक उपायों या दैवी शक्ति की बात दूसरी है।

इस प्रकार जो संस्था मरी हुई है, उसके भला सिद्धांत हो ही कैसे सकते हैं। उस निष्प्राण या कबंधमात्र संस्था को चाहे कोई कितने ही जोरसे हिलाये, धक्के दे, पर वह चैतन्य-शक्ति को प्राप्त कर नहीं सकती। जब कांग्रेसमें न प्राण है न उसका कोई सिद्धांत है, तो सिद्धांतोंके कारण मतभेदकी बात ही असम्भव है। यहां तो शुद्ध रूपसे वैयक्तिक स्वार्थ ही इन उथल-पुथलोंके कारण हैं। कांग्रेसके इन परिवर्तनों पर विचार करते हुए हम बहुत पीछे न जाकर किदवई कांडसे ही प्रारम्भ करते हैं। श्री टण्डनजीके साथ विरोध होनेके कारण श्री रफी अहमद किदवई और श्री अजितप्रसाद जैनने केन्द्रीय मन्त्रिमंडलसे त्यागपत्र दे दिया और इस सम्बन्धमें एक वक्तव्य देकर श्री टण्डनजीको जी भर कर कोसा। इस पर श्री नेहरूजीने मना कर श्री किदवई और श्री जैनको पुनः मंत्रिमंडलमें ले लिया। इस समय भी इन दोनोंने फिरसे कांग्रेस तथा उसके अध्यक्ष पर खूब कीचड़ उछाला और कहा कि मन्त्रिमण्डलमें रह कर भी हम कांग्रेसकी कटु आलोचना करनेमें स्वतन्त्र हैं। इस पर श्री टण्डनजीने अनुशासनकी दुहाई दी और कहा कि अनुशासन पालनके नाते श्री किदवईको मन्त्रिमण्डलमें रहते हुए कांग्रेसकी आलोचना करनेका अधिकार नहीं है। फलतः श्री किदवईने पुनः मन्त्रिमण्डल और कांग्रेस दोनोंसे त्यागपत्र दे दिया।

किन्तु श्री नेहरूजी राष्ट्रके सबसे बड़े हितका बलिदान करके भी किसी भी मूल्य पर श्री किदवईको अपनेसे दूर नहीं करना चाहते थे। इसलिए श्री किदवईके पीछे श्री नेहरूजीने भी कांग्रेस कार्यकारिणी समितिसे त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र देते समय वे भलीभांति जानते थे कि उनका त्यागपत्र तो स्वीकार होगा नहीं और श्री टण्डनजीको त्यागपत्र देना पड़ जायगा। उसके पश्चात् मैं स्वयं कांग्रेस अध्यक्ष बन कर श्री रफी अहमद किदवईको

फिरसे अपने साथ बुला लूंगा। तदनुसार वैसे ही हुआ। टण्डनजीने कांग्रेसके अध्यक्षपदसे त्यागपत्र दे दिया श्री नेहरूजी अध्यक्ष बन गये और श्री रफी अहमद किदवई कांग्रेसमें श्री नेहरूजीके साथ आ मिले।

श्री रफीअहमद किदवईके पास ऐसी कौन-सी शक्ति है, जिसके कारण श्री नेहरू उन्हें सारे राष्ट्रका अहित करके भी अपने साथ चिपटाये रखना चाहते हैं, यह तो वे ही जानें, किन्तु यह तो सारा राष्ट्र कहता है कि श्री नेहरूने कांग्रेसको ऐसा प्रबल धक्का देकर उसे इतने जोरसे हिला कर—झकझोर कर उसे सचेष्ट करनेकी अपेक्षा सदाके लिए निश्चेष्ट कर दिया है।

प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओंकी सदस्यताके लोलुप कुछ कांग्रेस-कर्मियों और श्री रफी-अहमद किदवईके अनुयायियोंके सिवा आज कांग्रेसके प्रति जन सामान्यके हृदयमें किंचित मात्र भी निष्ठा नहीं रह गई। इस घटनासे जनता भलीभांति समझ गई कि कांग्रेसमें प्रजातन्त्रका कोई स्थान नहीं है। वहां तो व्यक्ति तन्त्रकी ही पूर्ण विजय-दुन्दुभी बज रही है।

श्री सरदार पटेलके निधन पर आजसे दस मास पूर्व हमने जिस आशंकाको श्रीस्वाध्यायके पृष्ठोंमें व्यक्त किया था, वह आज साकार रूपमें उपस्थित हो गई। हमने लिखा था कि—'सरदारके रहते मन्त्रिमण्डल या कांग्रेस में कोई भी व्यक्ति या पार्टी इतना अधिक बल नहीं पकड़ सकती थी कि दूसरे पक्षकी सर्वथा उपेक्षा कर दे। उनके रहते वास्तविक अर्थोंमें कोई भारतका 'डिक्टेटर' नहीं बन सकता था। पर अब उनके हटते ही यह संतुलन बिगड़ गया। राज्यके बागडोरकी संचालक प्रमुख शक्ति परसे एक मधुर अंकुश उठ-सा गया।'

देखिये दस मास पूर्वकी हमारी उक्त आशंका कितनी स्पष्ट रूपमें प्रत्यक्ष उपस्थित हुई है। इस राज्यकी प्रमुख शक्ति श्री नेहरू पर कोई अंकुश न होनेके कारण राष्ट्रमें व्यक्ति-तन्त्र या 'नेहरूशाही'का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

इन सब तथ्यों पर आरम्भसे अंत तक भली-भांति विचार करने पर हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि आजकी परिवर्तित परिस्थितिमें कांग्रेसके निष्प्राण शरीर में प्राणोंका संचार करना व्यक्तिवाद या नेहरूशाहीको ही सबल बनाना है।

वे क्या कहते हैं:—

कांग्रेसके चुनाव प्रौपेगण्डेके सम्बन्धमें आयोजित विभिन्न संस्थाओंमें भाषण देते हुए श्री नेहरूजी इधर अप्रत्याशित और निर्मूल विचार व्यक्त कर रहे हैं, उन्हें देख कर भारी संभ्रम उत्पन्न हो रहा है।

भारतीय संसद व प्रांतीय धारासभाओंके प्रथम निर्वाचन ज्यूं ज्यूं निकट आते जा रहे हैं कांग्रेसके नवीन अध्यक्ष श्री नेहरूजी की झुंझलाहट त्यूं त्यूं बढ़ती जा रही है। निर्वाचनके आगामी द्वन्द्व युद्धमें उनका और उनकी पार्टी कांग्रेसका संघर्ष मुख्य रूपसे धर्मप्राण भारतीय संस्कृतिकी अनुयायी जनतासे होगा। इसलिये श्री नेहरूजी अपने चुनाव आन्दोलनोंके भाषणोंमें अन्य किसी पार्टी या संस्थाका उल्लेख न कर जनसंघ आदि संस्कृति प्रधान संस्थाओंपर बरस पड़ते हैं। और उनके दमन तक की धमकी देने लगते हैं। इन्ही भाषणों में वे लगे हाथों भारतीय संस्कृतिके प्रतीक स्वरूप प्रत्येक कार्य व्यवहार या सिद्धान्तका अत्यन्त तीव्र और कटु शब्दोंमें खंडन करने लगते हैं। जैसे कि एक स्थानपर उन्होंने ज्योतिष शास्त्र और ज्योतिषियों को भरपेट कोसा है तो, दूसरी बार उनका वार तिलकधारियोंपर हुआ है। कहीं वे हिन्दीके समर्थकों को बुरी तरह फटकारते हैं तो कभी हिन्दूकोडके विरोधियोंको ललकारने लगते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि जनसंघ, रामराज्य परिषद् व हिन्दू-महासभा जैसी सांस्कृतिक संस्थाओंकी प्रतिद्वन्द्विता में उन्हें कांग्रेसकी पराजय सुनिश्चित दिखाई दे रही है, इसीलिये वे असंतुलित विचार व्यक्त करने लग पड़े हैं। अस्तु कारण कुछ भी हो श्री नेहरूजीने हिन्दूसंस्कृतिके विभिन्न तत्वों के सम्बन्ध में इन दिनों जैसे विचार व्यक्त किए हैं, उनसे देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक क्षोभकी व्यापक लहर उठ खड़ी है। उन्होंने ज्योतिषियोंपर जो आक्षेप

किए हैं, उनका खंडन इस अंकमें श्री पं० सूर्यनारायणजी व्यासके लेखमें विस्तार पूर्वक किया गया है। हम यहां इतना और कहना चाहते हैं कि श्री नेहरूजीके स्वीकार करने या न करनेसे ज्योतिःशास्त्रकी महत्तामें कुछ अन्तर नहीं आता। सत्य तो स्वतः प्रकाशित होता है।

ज्योतिषियोंकी निन्दाके बाद उन्होंने पंजाबके हिन्दी समर्थकों को देखिये 'उदू' अपनानेके लिए कैसी अनोखी सीख दी है। वे कहते हैं कि—

'मुझे तो बड़ी हैरानी हुई जब मैंने पंजाबियोंको हिन्दी उर्दू के स्थानपर जारी करनेकी बात कहते हुए सुना। उर्दू भाषा भी हमारी दौलत है। वह दिल्ली आगरा अलीगढ़ व लखनऊ की जबान है'।

उर्दू की वकालत कैसी अटपटी युक्तियोंसे कररहे हैं। एक ओर तो वे यह कहते हैं कि उर्दू लखनऊ अलीगढ़के जबान है और साथ ही यह भी कह जाते हैं कि पंजाबियों को उर्दू के स्थानपर हिन्दी जारी करने की बात कहते सुनकर उन्हें दुःख होता है। अलीगढ़ और लखनऊकी जबानको पंजाबी क्यों अपनाए रहें? यदि वह उनकी भाषा होती तब तो बात थी। कैसी उल्टी बात है कि उर्दू लखनऊकी भाषा है इसलिये पंजाबियोंको चाहिए कि वे उसे ही पकड़े रहें और उसके स्थानपर हिन्दीको जारी करनेकी बात मुंहसे न निकालें।

ऐसी अनोखी युक्तियोंसे उर्दूकी रक्षाकी बात तो शायद किसी मौलानाके मुंहसे भी न निकलती। पर श्री नेहरूजी तो किसी न किसी प्रान्तमें उर्दूको जबरदस्ती जमाए रखनेके लिये कमर कसे बैठे हैं। हमें तो भय है कि उर्दू का यह समर्थन केवल मुसलमानोंको सन्तुष्ट कर चुनाव में उनसे वोट लेनेके लिए किया गया है। कांग्रेस और श्री नेहरूजीकी मुस्लिम नवाज नीतिका भयंकर कुफल देशके विभाजनके रूपमें हम एक बार देख चुके हैं। और यदि मुसलमानों को इसी प्रकार अनुचित रूपसे साम्प्रदायिकताके लिये प्रोत्साहन दिया जाता रहा तो निकट भविष्यमें उसका परिणाम राष्ट्र के लिए महान् घातक सिद्ध हो सकता है। देखिये श्री नेहरूजी मुसलमानोंकी साम्प्रदायिकता को किस प्रकार प्रोत्साहन देते हैं। वे कहते हैं कि—

'जहां तक मुसलमानोंका ताल्लुक है, उनकी फिरकेपरस्ती अगर उनमें है तो हिन्दुस्तानको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकती।'

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मुसलमान कितनी ही कट्टर साम्प्रदायिकताका प्रचार करें उन्हें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि उनकी साम्प्रदायिकता हिन्दुस्तान का कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

पर हम कहते हैं कि यदि ८ करोड़ मुसलमान कांग्रेसकी उदारतासे भारतमें पाकिस्तानका निर्माणकर सकते हैं तो चार करोड़ मुसलमान भी एक दिन वही आंदोलन करेंगे और जिनकी साम्प्रदायिकताको श्री नेहरूजी भारतके लिये हानिकारक नहीं समझते वही एक दिन ऐसा रंग लायेगी कि स्थिति संभाले न संभलेगी।

इसप्रकार श्री नेहरूजी चुनाव जीतनेके लिये आजकल जो कुछ कह रहे हैं उसका प्रभाव अनुकूल नहीं होगा यह निर्विवाद है।

क्या आगामी निर्वाचन निष्पक्ष हो सकेंगे?

यह है वह प्रश्न जो आज प्रत्येक शिक्षित भारतीयके मस्तिष्क में चक्कर काट रहा है। प्रजातन्त्रकी सबसे बड़ी कसौटी यही है कि उसके चुनाव सर्वथा निष्पक्ष हों। निर्वाचनोंके निष्पक्ष होनेका एक मात्र प्रमाण यही होता है कि सत्ताधिरूढ शासक दल किसी प्रकार जनता को प्रभावित न कर पावे। किन्तु भारतमें यह नहीं होता दिखाई देता। यहां प्रधानमन्त्रीसे लेकर छोटेसे छोटा राजकर्मचारी तक अपने अधीनस्थ व्यक्तियोंको धमका रहा है 'कि खबरदार कांग्रेसके सिवा किसी दूसरेको वोट मत देना नहीं तो तुम्हारी खैर नहीं है।' अभी उस दिन श्री नेहरूजीने अपने भाषणमें स्पष्ट रूपसे जागीरदारों व राजाओंको कहा कि यदि वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ-जनसंघ आदि का समर्थन करेंगे तो उनकी पेन्शनें बन्दकर दी

किए हैं, उनका खंडन इस अंकमें श्री पं० सूर्यनारायणजी व्यासके लेखमें विस्तार पूर्वक किया गया है। हम यहां इतना और कहना चाहते हैं कि श्री नेहरूजीके स्वीकार करने या न करनेसे ज्योतिःशास्त्रकी महत्तामें कुछ अन्तर नहीं आता। सत्य तो स्वतः प्रकाशित होता है।

ज्योतिषियोंकी निन्दाके बाद उन्होंने पंजाबके हिन्दी समर्थकों को देखिये 'उर्दू' अपनानेके लिए कैसी अनोखी सीख दी है। वे कहते हैं कि—

'मुझे तो बड़ी हैरानी हुई जब मैंने पंजाबियोंको हिन्दी उर्दूके स्थानपर जारी करनेकी बात कहते हुए सुना उर्दू भाषा भी हमारी दौलत है। वह दिल्ली आगरा अलीगढ़ व लखनऊ की जबान है'।

उर्दू की वकालत कैसी अटपटी युक्तियोंसे कररहे हैं। एक ओर तो वे यह कहते हैं कि उर्दू लखनऊ अलीगढ़के जबान है और साथ ही यह भी कह जाते हैं कि पंजाबियों को उर्दूके स्थानपर हिन्दी जारी करने की बात कहते सुनकर उन्हें दुःख होता है। अलीगढ़ और लखनऊकी जबानको पंजाबी क्यों अपनाए रहें? यदि वह उनकी भाषा होती तब तो बात थी। कैसी उल्टी बात है कि उर्दू लखनऊकी भाषा है इसलिये पंजाबियोंको चाहिए कि वे उसे ही पकड़े रहें और उसके स्थानपर हिन्दीको जारी करनेकी बात मुंहसे न निकालें।

ऐसी अनोखी युक्तियोंसे उर्दूकी रक्षाकी बात तो शायद किसी मौलानाके मुंहसे भी न निकलती। पर श्री नेहरूजी तो किसी न किसी प्रान्तमें उर्दूको जबरदस्ती जमाए रखनेके लिये कमर कसे बैठे हैं। हमें तो भय है कि उर्दू का यह समर्थन केवल मुसलमानोंको सन्तुष्ट कर चुनाव में उनसे वोट लेनेके लिए किया गया है। कांग्रेस और श्री नेहरूजीकी मुस्लिम नवाज नीतिका भयंकर कुफल देशके विभजनके रूपमें हम एक बार देख चुके हैं। और यदि मुसलमानों को इसी प्रकार अनुचित रूपसे साम्प्रदायिकताके लिये प्रोत्साहन दिया जाता रहा तो निकट भविष्यमें उसका परिणाम राष्ट्र के लिए महान् घातक सिद्ध हो सकता है। देखिये श्री नेहरूजी मुसलमानोंकी साम्प्रदायिकता को किस प्रकार प्रोत्साहन दे रहे हैं। वे कहते हैं कि—

'जहां तक मुसलमानोंका ताल्लुक है, उनकी फिरकापरस्ती अगर उनमें है तो हिन्दुस्तानको कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती।'

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मुसलमान जितनी चाहें कट्टर साम्प्रदायिकताका प्रचार करें उन्हें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि उनकी साम्प्रदायिकता हिन्दुस्तान का कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

पर हम कहते हैं कि यदि ८ करोड़ मुसलमान कांग्रेसकी उदारतासे भारतमें पाकिस्तानका निर्माणकर सकते हैं तो चार करोड़ मुसलमान भी एक दिन वही आंदोलन करेंगे और जिनकी साम्प्रदायिकताको श्री नेहरूजी भारतके लिये हानिकारक नहीं समझते वही एक दिन ऐसा रंग लायेगी कि स्थिति संभाले न संभलेगी।

इसप्रकार श्री नेहरूजी चुनाव जीतनेके लिये आजकल जो कुछ कह रहे हैं उसका प्रभाव अनुकूल नहीं होगा यह निर्विवाद है।

क्या आगामी निर्वाचन निष्पक्ष हो सकेंगे?

यह है वह प्रश्न जो आज प्रत्येक शिक्षित भारतीयके मस्तिष्क में चक्कर काट रहा है। प्रजातन्त्रकी सबसे बड़ी कसौटी यही है कि उसके चुनाव सर्वथा निष्पक्ष हों। निर्वाचनोंके निष्पक्ष होनेका एक मात्र प्रमाण यही होता है कि सत्ताधिरूढ़ शासक दल किसी प्रकार जनता को प्रभावित न कर पावे। किन्तु भारतमें यह नहीं होता दिखाई देता। यहां प्रधानमन्त्रीसे लेकर छोटे से छोटे राजकर्मचारी तक अपने अधीनस्थ व्यक्तियोंको धमका रहा है 'कि खबरदार कांग्रेसके सिवा किसी दूसरेको वोट मत देना नहीं तो तुम्हारी खैर नहीं है।' अभी उस दिन श्री नेहरूजीने अपने भाषणमें स्पष्ट रूपसे जागीरदारों व राजाओंको कहा कि यदि वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ-जनसंघ आदि का समर्थन करेंगे तो उनकी पेन्शनें बन्दकर दी

जायगी। इससे अधिक दूसरेको और कैसे प्रभावित किया जा सकता है। प्रधानमन्त्रीजी तथा दूसरे मन्त्री सरकारी खर्चपर कांग्रेसके पक्षमें चुनाव प्रचार करने में जुटे हुए हैं यह भी सर्वविदित ही है।

ऐसी अवस्थामें यह आशा रखना कि स्वतन्त्र भारत के प्रथम निर्वाचन सर्वथा निष्पक्ष हो सकेंगे एक दुराशामात्र है।

अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलन

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागके कार्यालय पर सरकारी ताला लग जानेसे सारे हिन्दी जगत् को क्षोभ हुआ है। कोटा अधिवेशनमें ही इसके लक्षण दिखाई दे गये थे। धड़ेबन्दीका कुफल और हो ही क्या सकता है। अब यह रोग इतना बढ़ गया है कि जब तक इसका समूलोच्छेद न कर दिया जायगा सम्मेलन कभी पनप नहीं सकता। इसके लिए निम्न दो उपाय आवश्यक हैं।

(१) परीक्षा विभागको सम्मेलनसे सर्वथा पृथक् कर सरकारी नियन्त्रण में चलाया जाय। जैसे बनारसमें सरकारकी ओर से संस्कृत विश्वविद्यालय बन रहा है, वैसे ही हिन्दी विश्वविद्यालयका भी सरकार स्वयं कार्य भार संभाल ले।

परीक्षाओंसे होनेवाली पुष्कल आयके कारण ही यह सब उपद्रव और धड़ेबाजियां हैं।

(२) सम्मेलन का कार्यालय स्थायी रूपसे इलाहबाद में न रखकर सम्मेलनका जहां जहां अधिवेशन हो एक वर्षके लिये वहीं रहने दिया जाय। ताकि किसी एक प्रान्त या नगरका उसपर प्रभुत्व न रहे।

इसके सिवा इस असाध्य रोग का और कुछ उपचार हमें तो दिखाई देता नहीं।



अहंकार

लेखक :—

श्री सम्पूर्णादत्त मिश्र

वैसे तो कदाचित् ही कोई ऐसा विषय हो जिसमें मनुष्य अपना कुछ कहने को न रखता हो पर कुछ बातों की चर्चा कुछ अधिक होती है। मूर्ख और पण्डित—सब अहंकार के विरुद्ध बोलते पाये जाते हैं। इसका अर्थ यह तो नहीं कि यहां अहंकार के अनुकूल बोलने की भूमिका बांधी जा रही हो परन्तु इसकी उपादेयता और ग्राह्यरूप का विवेचन आवश्यक है।

हम यह मानकर चलते हैं कि अहंकार सहज है : उसका स्वभावमें स्थान है। तब उसका कोई ग्राह्यरूप भी होना चाहिये जो शिक्षा और ज्ञानसे अर्जित किया जा सकता है। ज्ञानियोंमें यह शाणोल्लीढ मणिके समान मनोहर लगता होगा और अज्ञोंमें बेडौल पत्थर। कदाचित् इस बेडौल पत्थरके समान अहंकारकी ही लोकनिन्दा सुनी जाती है और यदि दुर्भाग्यवश अहंकारका यही रूप महापुरुषोंमें पाया जाय तो भी यह इस लोक की अस्वाभाविकता नहीं है। हां, पत्थरपर टांकी चलाने से, अधिकसे अधिक दोषोंको निकालकर गुणोंकी वृद्धि करने से सर्वाङ्गसुन्दर बननेका मार्ग छोटा होता चला जाता हैं और मनुष्य यदि देवता बनना चाहे तो यह बुरा नहीं।

यह सच है कि अहंकार एक दोष है। इसीलिये महाकवि पीयूषवर्षने लिखा है—'या वस्तुः सौम्यता एवं सुधांशोरकलंकता।' पर सोनेमें सुगन्ध और निष्कलंक चन्द्रकी कल्पनासे दूर सृष्टिगत गुणदोषोंके आधान की लौकिक उपयोगिताका तारतम्य कुछ कुछ देशकाल पर भी निर्भर है। युगके प्रभावसे कभी कभी लोक अच्छे गुणोंका भी निरादर करने लग जाते हैं और कालवश बुरे सावन भी अच्छे समझे जाते हैं। गुणदोषोंकी उपेक्षा देखता समयका मुंह ताकतीसी लगती है। यही आदर्श पुरुषकी कठिनाई का रहस्य है।

अनेक गुणोंको ऐसे दिव्यरूपमें प्रतिष्ठित किया जाता रहा है कि जीवनको सुगम बनानेमें उनका बलिदान हीनताका द्योतक माना जाता है। समन्वयके प्रकाण्ड समर्थक केवल इसी आधारपर क्षत्रिय जातिके उज्ज्वल रत्नोंको तिरस्कृत करनेकी चतुरता कर सकते हैं कि उन्होंने समय देखकर काम नहीं किया। दिव्यगुणोंके समर्थनमें प्राणोंकी बाजी लगा देने वाले सदाचारी वीरोंकी जीवन शैलीको कोसते हुए समन्वयवादियोंकी आंखोंमें ठोढीपर अंगुली रखकर केवल झांका जा सकता है, उनके तर्कोंका उत्तर तो दूरकी बात है। इसका अर्थ यह है कि इस लोक में सर्वथा निर्दोष महापुरुषोंका जीवन दुर्लभ होता है। परन्तु उनकी इस अयोग्यताका जो सज्जन तिरस्कार करते हैं वे वस्तुतः उन लोकोंकी नीचताको ही ध्वनित करते हैं जिन्होंने उन्हें जीने नहीं दिया।

हां, समन्वयवादी देरतक जी सकता है। परन्तु देर तक जीनेकी क्षमता ही केवल महत्ताका लक्षण नहीं है। जीवनके लिए कुछ गर्व चाहिए और गन्धहीन पुष्पका महत्व कितना है यह छुपा नहीं है। चूंकि गन्धहीन पुष्प भी होते हैं इसलिये श्रेष्ठ पुरुषोंकी महत्ता साधारण पुरुषोंकी सत्ताका स्वाभाविक फल है। यदि मनुष्य सुखके लोभ में बुराईसे भी समझौता करनेका अभ्यास बनाले तो वह गिर जाता है। प्रायः ऐसे ही मनुष्य मानी पुरुषोंको दम्भी बताते पाये जाते हैं।

अपनेको सबसे अच्छा समझना मनुष्यका स्वाभाविक गुण है। यह अहंकारका एकरूप है। यही अहंकार निष्ठावान पुरुषको महत्ताकी ओर ले जाता है। पर एक बात

है। जब कोई निष्ठावान महत्ताकी ओर जा रहा होता है तो सबसे बड़ी कठिनाई उसके मार्गमें यह आती है कि संसारके प्रतिष्ठित पुरुष भी उसके चरित्रमें दम्भका आरोप करते हैं। साधकको यह असह्य अवश्य होता है परन्तु उसे हताश न होना चाहिए। उसे आत्मपरिष्कारक दृष्टिसे अन्तमुंखी होकर स्वच्छन्द विचरण करना चाहिए उसे जान लेना चाहिए कि कितने समर्थ व्यक्ति अभीसे घबराने लग हैं या ईर्ष्या करने लगे हैं जबकि उसके व्यक्तित्वका पूरा निर्माण भी नहीं हुआ है। यदि वे उसके दम्भकी शिकायत करते हैं तो यह ठीक वैसा ही है जैसे कि एक नैगेटिव पोल दूसरे नैगेटिव पोलके पास नहीं रह सकता और उसे अपनी पूरी शक्तिसे धकेल देता है। यह सब साधककी कठिनाई है। अभी उसे अपने अहंकारको संस्कृत करना है। सिद्धिशक्ति प्राप्त होनेपर यही अहंकार दृढ़ता, साहस, उत्साह, स्वाभिमान आदि अनेक गुणोंमें झलकेगा। सद्गुणी पुरुषमें भी लोक तब तक किसी न किसी कमीकी कल्पना करता ही रहता है जब तक कि वह शक्तिशाली नहीं बन जाता। जो शक्ति बुरेमें भी भले का आभास करा सकती है वह भलेको कहां जाकर बैठा देगी यह सोचनेकी बात है। शक्ति कल्याणका स्रोत है। 'समरथको नहीं दोष गोसांई, रवि पावक सुरसरिकी नांई'।

शक्ति कई प्रकारकी होती है। धन, जन, विद्या, बुद्धि, ज्ञान ये सब शक्तियोंके रूप हैं। एक साधक एक शक्ति प्राप्तकर सकता है, अनेक भी। जैसे एक दुर्गुण आनेपर अनेक दुर्गुणोंके समावेशका डर रहता है वैसे ही एक शक्तिसे अनेक शक्तियोंमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। फिर भी सर्वशक्तिमान परमात्माका विशेषण होनेके कारण निःशेष शक्तियोंका विकास मनुष्यमें नहीं होता। यहींसे समन्वयकी आवश्यकता प्रारम्भ होती है। संकटसे बचने को अन्धा लंगड़ेको तभी कंधेपर रखकर भाग सकता है जब वे दोनों लोकहितैषी समाजिक व्यवहारके महत्वको समझें। अशक्तिजन्य कठिनाईसे बचनेके लिए पारस्परिक नम्रताकी आवश्यकता होती है और राम राम श्याम २ भी करनी पड़ती है। जो व्यक्ति अशक्त होते हुए दूसरों को प्रणाम नहीं करते और विशेषकर उनको जो उनके जीवनको अनिष्ट दिशामें मौड़नेकी सामर्थ्य रखते हैं (यद्यपि यह सब भगवानपर निर्भर है) या अन्य इसी भांतिके सामाजिक व्यवहारोंकी अवहेलना करते हैं वे प्रायः टकरा जाते हैं। अमुक व्यक्ति दुष्ट है और इसलिए हमारे प्रणाम पानेके पात्र नहीं— यह सोचकर जो साधक साधारण लोकाचारकी साभिप्राय अवहेलना करते हैं उनकी भी लोकमें निन्दा सुनी जाती है और यदि वे संन्यासी नहीं हैं तो उन्हें अपना मन मारकर भी व्यवहार बदलना पड़जाता है। ऐसे गृहस्थ साधकोंको यह सोचकर सन्तोषकर लेना पड़ता है कि नीच पुरुषोंको किये गये हमारे लम्बे प्रणाम उनके प्रति श्रद्धाके फल नहीं अपितु व्यवहार कौशलकी कलापूर्ण घड़ियां हैं। यद्यपि यह व्यवहार मन; वाणी और कर्ममें सामंजस्य रखनेके आदर्शपर एक चोट है परन्तु क्या करें सांसारिक सफलताके साधनोंका अनुभव रखनेकी व्यंजना मन्द मन्द सिर हिलाकर करने वाले वयोवृद्ध शिक्षक क्रान्तिकारी युवकोंको हतोत्साह करनेके लिये या अपनासा बनानेके लिये कुछ उठा नहीं रखते। दार्शनिक भाषासे खिलवाड़ करते हुए अहंकारकी छटा उनमें देखनेको मिलती है। अपनेसे शक्तिशाली पुरुषमें जब वे अपनी प्रकृति एवं अनुभवोंके कारणका आग्रह करते हैं तो चतुर साधकको यह भावना कितना सरल होता है कि उन्हें अपनी कमियोंका पश्चात्ताप है, और उनकी ईर्ष्या किस ढंगसे सामने आरही है। हो पहोलिन मो सी।

महापुरुषोंकी उदासीनता भी किन्हींको अहंकार प्रतीत होती है। यह अहंकारके कारण हो सकती है पर यह गौरव उनके स्वभावके साथ है। 'खुदा जब हुस्न देता है, नजाकत आ ही जाती है।' गुरुओंके जीवनमें जो गन्ध होती है वह कुछ लोकोंको असह्य होती है और इसके विरोधमें वे लोक और वेद दोनोंको खड़ाकर सकते हैं। 'A devil can cite scripture for his purpose.' यह पहले कहा जा चुका है कि विशेष पुरुषोंको समर्थ बननेसे पहले अपने निर्माणकालमें विरोध सहना पड़ता है। यह कठिनाई सामर्थ्यमें दूर हो जाती है। वैसे सज्जन और दुर्जनके अहंकार तथा नम्रता भी एक अर्थ नहीं रखते। सज्जनके दोष भी दुर्जनके गुणोंसे अच्छे हैं। फिर भी सज्जन अहंकारके आग्रहरूपका प्रतिपादन नहीं कर सकते क्योंकि निरहंकार इस अनन्त विश्व के कलाकारकी आराधनाका प्रथमसोपान है और जो सुख यहां है वह अन्यत्र कहां?

★★

भगवान् की ओरः—

विचित्र विधान

[लेखकः— श्री १०८ मान् अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज]

[द्वैत माया है, अद्वैत मायावी। द्वैत छाया है, अद्वैत छायावान्। द्वैत मेधा है, अद्वैत मेधावी द्वैत प्रकाश है, अद्वैत प्रकाशवान्। साधारणतया संक्षेपमें कह सकते हैं—यच्च यावत् कल्पित द्वैत है और अद्वैत अकल्पित। कल्पितकी ओर प्रवृत्ति दुःखका कारण है और उधरसे निवृत्ति सुखका कारण। अकल्पित सनातन है। कल्पित क्षणिक। 'भगवान्की ओर चलना'का वास्तविक अर्थ है, कल्पितसे मुख मोड़ना। क्षणिक सभी दुःख है, चाहे फिर वह ब्रह्मलोक ही क्यों न हो। सापेक्ष सुख वस्तुतः सुख नहीं। वस्तुत: सुख सनातन महानन्द है। निरपेक्षताकी पराकाष्ठा हुए बिना महानन्दका रस अनुभूत नहीं होता। कल्पितकी ओर उन्मुख होना बहिर्मुखता है और उधरसे निवृत्ति अन्तर्मुखता। जितनी अधिक अन्तर्मुखता होगी, उतना अधिक आत्मानन्दकी प्राप्ति होगी। भगवान्की प्राप्ति उसीका दूसरा नाम है। और इसीको तत्वदर्शी भगवदनुग्रह कहते हैं। शेष सभी निग्रह है। जहां निग्रहकी अनेक घटनाएं हैं, वहां अनुग्रहकी भी बहुत घटनाएं हैं। अनुग्रह-प्रधान सच्ची घटनाओंके आधार पर हमने कुछ कथानिकाएं (कहानियां) लेखबद्ध की हुई हैं, उनको 'श्रीस्वाध्याय'के प्रेमी पाठकोंके आग्रहसे प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है प्रेमी पाठकोंको इन कहानियोंके पढ़नेसे भगवदनुग्रह प्राप्त करनेमें सहायता अवश्य मिलेगी।

—अ० वा० आचार्य]

"क्या देख रहे हो?" उन्होंने पूछा।

मैंने कहा—"आपको ही देख रहा हूं"।

उनके ओष्ठ मन्दस्मितकी लीलास्थली हो रहे थे। मेरे लोचन उनको एड़ीसे चोटी तक निहारने में संलग्न थे और मेरी दृष्टि आश्चर्यसिंधुमें गोते लगा रही थी किन्तु निमेष दृष्टिका साथ छोड़ बैठे थे। वे एक महात्मा थे, जिनकी ओर मैं निहार रहा था।

भागीरथी श्रीगङ्गाजी उच्चावच विषम पर्वत प्रांत में अनेक प्रकारकी लीला करनेके पश्चात् वे अपना पितृगृह हिमालयका अन्तिम प्रदेश भी छोड़ कर यहांसे समतल प्रान्तमें बहने लगती हैं। यहां उनकी चालमें वेग पूरा है, किन्तु उन्होंने मौन धारण किया है। बोलती भी हैं तो थोड़ा और मधुर। बड़े-बड़े पतितों को पावन करने के लिए यहांसे बहुत दूर उन्हें जाना है। उत्तर दक्षिणकी ओर आत्मानन्द निर्भर हो यहां से आगे चल जा रहीं हैं। यहां उनके दोनों तट बड़े ही रमणीय हैं हम दोनों श्री गङ्गाजीके बांए तट पर थे।

यहीं तट पर दो तीन पुरातन शिवमंदिर तटकी पवित्रताको और भी अधिक बढ़ा रहे थे। यहां का जीर्ण-शीर्ण घाट, जगज्जननि श्रीजान्हवीकी उसने की हुई अपनी पुरानी सेवाओंकी मौन भावसे साक्षी दे रहा था। मन्दिर तथा मण्डपके ऊपर यत्र-तत्र पीपल पाकर वट औदुम्बर आदि बाल पादप अपनी बाललीला दिखा रहे थे। मानो वृद्ध पितामहके शरीर पर उसके अपने शिशु पौत्र

खेल रहे हों। कुट्टिमस्थलके हृदयको चीर कर निकली हुई अस्त-व्यस्त जरठतृणावली किसी गौर वर्ण-वृद्धकी घनरोमश वक्षःस्थलीकी स्मृतिको नूतन कर रही थी। शिवमंदिरके आस-पास पर्याप्त सघन वन था। यहां की नितांत एकान्तता तथा परम पवित्रतामें मंद सुगन्ध और शीतल समीरण अपने चतुर्दिक पावन सञ्चारसे चार चांद चढ़ा रहा था।

सघन वनमें लोगोंके निरन्तर इधर आने जाने से घाट तक एक अच्छी पगडंडी बन गयी थी। प्रातःकालिक शौचस्नानादि निपटनेके लिये इधर अच्छा रहेगा, ऐसा समझ कर पहले पहलही इस ओर आ निकला था। गाड़ीसे उतर कर रेलवे स्टेशनसे सीधा पूर्वकी ओर चलता हुआ अनायास यहां आ पहुँचा था। मन्दिरके जगमोहनमें अपना चोला झोला रक्खा, वस्त्र उतारे, जलकरक भर शौचके लिए जंगलकी ओर चला गया। जंगलसे आकर घाट पर हाथ पैर धो, दंतुअन कुल्ला करके, ज्यों ही स्नानके लिए विचार कर रहा था इतने हीमें एक संन्यासी महात्मा वहां आए, और आते ही वे अपना चोला उतार कर नहानेके लिए घाट पर नीचे तक उतर आये। मन्दिरसे सात आठ सीढ़ियां ही नीचे श्री गङ्गाजी का प्रवाह यहां चल रहा था। अंतिम निचली सीढ़ी पर वे खड़े हो गये। अकस्मात् उनकी कृपाभरी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। अब कुछ समय तक वे मेरी ओर मैं उनकी ओर देख रहे थे।

तेजस्वि मुखमण्डल, विस्तीर्ण ललाट, ऊंची लम्बी नासिका, अरुण नलिन पुष्पके समान सुन्दर लोचन, स्निग्ध भ्रमरवर्ण आंखों की तारिकाएं, सघन पलकें, स्नेह भरी शांत दृष्टि, छत्राकार बड़ा मस्तक, बड़े-बड़े कान, उन्नत कन्धे, परिपुष्ट ग्रीवा, सुदीर्घ और पीन-बाहुदण्ड सूक्ष्म-रोमांचित विशाल वक्षस्थल, कसा हुआ पेट, कूर्माकार पैर, अरुण वर्ण हथेलियां, सुघटित जानु ऊरु और जङ्घा, सभी अवयव उनके देव शरीरोचित थे। दांत उनके वस्तुतः मोतियोंकी पंक्तियां ही दिखाई देती थीं, ओष्ठ मन्दस्मितका आलिङ्गन कर रहे थे। अर्धगौर कुछ सांवलापन लिये हुए अरुणवर्ण उनकी शरीर कांति थी। चार साढ़े चार हाथ से ऊंची उनकी लम्बाई न होगी। उनकी ओर देखनेसे ऐसा निश्चित जान पड़ता था कि ब्रह्मदेवने उनके शरीरका निर्माण करते समय मनको बहुतही एकाग्र किया था। उनका शरीर अपूर्व सुन्दर था। वे मानव रूपमें आये हुए इन्द्र वरुण आदिमेंसे कोई देवताविशेष ही लगते थे। किन्तु उनकी सनिमेष दृष्टि और सच्छाय शरीर बता रहे थे कि वे भी भूलोकके ही निवासी हैं और मानव जातीय ही हैं। उनके शिरके काले केशोंमें एक भी विजातीयको स्थान नहीं मिला था। सबके सब भ्रमर वर्णका आलिंगन किये बैठे थे। महीना डेढ़ महीना पहले उन्होंने मुंडन कराया हो ऐसा लगता था। दाढ़ी मूछोंका वर्ण भी सर्वथा सघन कृष्ण था। उनकी वय चालीस पैंतालीससे अधिक कोई नहीं आंक सकता था। वे अब हंसे और सस्नेह गम्भीर हो कहने लगे, 'क्या देख रहे हो?' मैंने भी 'आपको ही देख रहा हूँ कि आपका यह शरीर इतना सुन्दर कैसे बन गया है' यों उत्तर दिया। अबकी बार वे सशब्द हंस पड़े फिर बोले—'अच्छा बताओ मेरी वय क्या होगी?' मैंने कहा—"स्वामीजी महाराजमैं कैसे जान सकता हूँ" उन्होंने कहा—"तुमको जो जंचती हो सो कहो" मैंने सोचा ये महात्मा हैं वय कुछ अधिक ही हो और कह दिया "पचपन-साठ होगी।" अब कुछ अधिक गम्भीर मन्दहास्य करते हुए वे बोले—"क्या तुमको सचमुच साठ की वय जंचती है?" मैंने कहा—"महाराज मैं कैसे ठीक ठीक कह सकता हूँ। अभी संसार का अननुभवी अज्ञ बालक हूँ।" उनके होठों पर मन्द स्मित पहरा दे रहा था। मुख को भावभङ्गी अपने साथ गाढ़ गम्भीरता को प्रकट करना चाहती थी। उनकी आंखोंमें स्निग्ध वत्सलता उछल रही थी। बछड़े को देखकर गायके थनोंमें दूध भर आता है। वे अपने पूर्ववृत्त को शीघ्रसे शीघ्र हमको बतलाना चाहते थे। वे वहीं निचली सीढ़ी पर पैर लटका कर ऊपरली सीढ़ी पर बैठ गए। कौपीन मात्र पहने हुए वे मूर्तिमान वैराग्य अथवा शरीरधारी शांत रस प्रतीत हो रहे थे। इस समय उनकी शांत प्रसन्न गम्भी[illegible] मुख मुद्रा बहुतही दर्शनीय हो

रही थी। वे प्रसन्न गम्भीर वाणी से बोले —"लो तुम भी बैठ जाओ। यह एक विचित्र कथा है। अब तुमको सुना ही देता हूँ। स्नान पीछे कर लेंगे।" उनकी आज्ञा से मैं भी उनके पास सीढ़ी पर बैठ गया। स्नान सन्ध्या आदि की कोई चिंता नहीं थी मेरे हृदय में बारंबार

"अलं प्रायश्चित्तैरलमलमथो दानयजनैः
सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति भवती।"

पण्डित राजजगन्नाथ की सूक्ति का यह पद्यार्ध प्रस्फुरित हो रहा था। सूर्यकी सुवर्ण वर्ण किरणें वनराजी, शाद्वल गङ्गाके तट तथा स्फटिकसे भी निर्मल गङ्गाजल पर किलोलें कर रही थीं, और हम दोनोंके ऊपर भी अपनी आभा बिखेरना चाहती थीं। अब वे महात्मा जी गम्भीर भावसे अपना वृत्तांत सुनाने लगे।

"हमारे प्राचीन महर्षिगण जो कि महान् ज्ञान सम्पन्न तथा असाधारण विज्ञानसे मण्डित थे उनसे लेकर आज पर्यन्तके सभी ज्ञानविज्ञानसम्पन्न महानुभावोंकी दृष्टि में पृथ्वीकी पीठपर भारतवर्ष जैसा पवित्र मनोहर तथा विलक्षण प्रदेश भारतवर्ष ही है। मनुष्य लोकमें जैसे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है वैसे ही भूतलपर यह भारतवर्ष। यहां अनेक जनपद और नगर हैं। इनमें 'पाटलिपुत्र' एक बहुत प्राचीन नगर है। आजकल इसको 'पटना' कहते हैं। श्रीभागीरथी गङ्गाजीने अपने संसर्गसे इसको बहुत पवित्र और रमणीय बनाया है। भारतीय सार्वभौमसत्ताकी यह नगर राजधानी रह चुका है। महासम्राट् नन्द, मौर्य सम्राट महान् चन्द्रगुप्त, महाराजाधिराज अशोक, आदि बड़े बड़े महाराजाधिराज यहांके राजसिंहासनको विभूषित कर चुके हैं। अद्वितीय राजनीतिज्ञ आर्य चाणक्य विष्णुशर्माने अपनी कूटनीतिके चमत्कारोंसे इसी नगरमें रहकर संसारको चकित किया था। वर्ष तथा उपवर्ष जैसे बड़े २ अद्वितीय विद्वान् यहीं के कुलपति थे। यहां के विश्वविद्यालयमें समस्त जनपदों के कोने कोनेसे छात्रगण विद्याध्ययन करनेके लिये आया करते थे। सभी शास्त्रोंमें प्रतिवर्ष यहां परीक्षाएँ हुआ करती थीं। व्याडि, इन्द्रदत्त, कात्यायन वररुचि, पाणिनि आदि संसारके असाधारण विद्वान् यहीं पढ़कर विश्वविख्यात कीर्ति हुए थे।

आद्य शंकराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्य का "तदाह भगवानुपवर्षः" इस प्रकार आर्यों से नामोल्लेख किया है। इसी मगध देशके में एक ब्राह्मण दम्पतीसे मेरा जन्म हुआ था।

ब्राह्मण दम्पती बड़े ही सरल स्वभाव माताजी पढ़ी लिखी नहीं थीं, किन्तु कितनी ही वार्ताएं उन्हें योंही ज्ञात थीं। घरके कामकाज ही प्रवीण थीं। स्वभाव बड़ा ही कोमल और साधु सन्तोंमें बड़ी श्रद्धा थी। घरमें कोई भी बिना कुछ खिलाये पिलाये वे जाने नहीं देती।

भाई बन्धु अड़ोसी पड़ोसी सभी उनपर थे। रसोई तो उनके हाथकी अमृत ही बनती।

मेरे पिताजी लम्बे चौड़े सुपुष्ट डीलडौल के थे, पढ़े-लिखे विशेष नहीं थे। चरितार्थके से अच्छी आय थी। वे अपनी आयका लेखा ही ठीक रख सकते थे। हमारा परिवार और अतिथि जन हमारी आयसे पर्याप्त अन्न-वस्त्र था। दूध, दही, घी सब कुछ घरका था। दो भी थे। सवारीके लिए घोड़ा तथा बैलगाड़ी थी। पन्द्रह बीस मनुष्योंके परिवारके रहने के मंजिला पक्का अपना घर था। छोटी-सी फु अपनी थी। साथ ही हमारा अपना एक छोटा मन्दिर भी था। शिवजीकी पूजाके लिए एक पुजारी भी रखा गया था, जिसको बारह मन और बारह रुपया प्रतिवर्ष दिया था। पिताजी गां गङ्गा स्नानको जाते थे और वहांसे आकर पूजा करते, फिर तुलसीकृत रामायणका पाठ को महिम्नस्तोत्र पढ़ते, आरती करते और थे। वे भोजन एक ही जून करते थे। मक्खन खाना उन्हें बहुत प्रिय था। चौपाल वे शतरंज बहुत खेलते थे। यह चौपाल भी जीने आये गये लोगोंके ठहरनेके लिए धर्मशाला बनवाया था। साधु-सन्त, ब्राह्मण-पण्डित प्रायः प्रतिदिन उनके अतिथि रहते ही थे। गायत्रीके परम उपासक थे। एक सहस्र गायत्री

रही थी। वे प्रसन्न गम्भीरवाणी से बोले —"लो तुम भी बैठ जाओ। यह एक विचित्र कथा है। अब तुमको सुना ही देता हूँ। स्नान पीछे कर लेंगे।" उनकी आज्ञा से मैं भी उनके पास सीढ़ी पर बैठ गया। स्नान सन्ध्या आदि की कोई चिंता नहीं थी मेरे हृदय में बारंबार

"अलं प्रायश्चित्तैरलमलमथो दानयजनैः
सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति भवती।"

पण्डित राजजगन्नाथ की सूक्ति का यह पद्यार्ध प्रस्फुरित हो रहा था। सूर्यकी सुवर्ण वर्ण किरणें वनराजी, शाद्वल गङ्गाके तट तथा स्फटिकसे भी निर्मल गङ्गाजल पर किलोलें कर रही थीं, और हम दोनोंके ऊपर भी अपनी आभा बिखेरना चाहती थीं। अब वे महात्मा जी गम्भीर भावसे अपना वृत्तांत सुनाने लगे।

"हमारे प्राचीन महर्षिगण जो कि महान् ज्ञान सम्पन्न तथा असाधारण विज्ञानसे मण्डित थे उनसे लेकर आज पर्यन्तके सभी ज्ञानविज्ञानसम्पन्न महानुभावोंकी दृष्टि में पृथ्वीकी पीठपर भारतवर्ष जैसा पवित्र मनोहर तथा विलक्षण प्रदेश भारतवर्ष ही है। मनुष्य लोकमें जैसे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है वैसे ही भूतलपर यह भारतवर्ष। यहां अनेक जनपद और नगर हैं। इनमें 'पाटलिपुत्र' एक बहुत प्राचीन नगर है। आजकल इसको 'पटना' कहते हैं। श्रीभागीरथी गङ्गाजीने अपने संसर्गसे इसको बहुत पवित्र और रमणीय बनाया है। भारतीय सार्वभौमसत्ताकी यह नगर राजधानी रह चुका है। महासम्राट् नन्द, मौर्य सम्राट महान् चन्द्रगुप्त, महाराजाधिराज अशोक, आदि बड़े बड़े महाराजाधिराज यहांके राजसिंहासनको विभूषित कर चुके हैं। अद्वितीय राजनीतिज्ञ आर्य चाणक्य विष्णुशर्माने अपनी कूटनीतिके चमत्कारोंसे इसी नगरमें रहकर संसारको चकित किया था। वर्ष तथा उपवर्ष जैसे बड़े २ अद्वितीय विद्वान् यहीं के कुलपति थे। यहां के विश्वविद्यालयमें समस्त जनपदों के कोने कोनेसे छात्रगण विद्याध्ययन करनेके लिये आया करते थे। सभी शास्त्रोंमें प्रतिवर्ष यहां परीक्षाएँ हुआ करती थीं। व्याडि, इन्द्रदत्त, कात्यायन वररुचि, पाणिनि आदि संसारके असाधारण विद्वान् यहीं पढ़कर विश्वविख्यात कीर्ति हुए थे। आद्य शंकराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्य का "तदाह भगवानुपवर्षः" इस प्रकार अत्यधि से नामोल्लेख किया है। उसी मगध देशके में एक ब्राह्मण दम्पतीसे मेरा जन्म हुआ था।

ब्राह्मण दम्पती बड़े ही सरल स्वभावके माताजी पढ़ी लिखी नहीं थीं, किन्तु कितनी ही वार्ताएं उन्हें योंही ज्ञात थीं। घरके कामकाज ही प्रवीण थीं। स्वभाव बड़ा ही कोमल और साधु सन्तोंमें बड़ी श्रद्धा थी। घरमें कोई भी बिना कुछ खिलाये पिलाये वे जाने नहीं देती

भाई बन्धु अड़ोसी पड़ोसी सभी उनपर थे। रसोई तो उनके हाथकी अमृत ही बनती।

मेरे पिताजी लम्बे चौड़े सुपुष्ट डीलडौल के थे, पढ़े-लिखे विशेष नहीं थे। से अच्छी आय थी। वे अपनी आयका लेखा ठीक रख सकते थे। हमारा परिवार और अतिथि जन हमारी आयसे पर्याप्त अन्न-वस्त्र था। दूध, दही, घी सब कुछ घरका था। दो भी थे। सवारीके लिए घोड़ा तथा बैलगाड़ी थी। पन्द्रह बीस मनुष्योंके परिवारके रहने के मंजिला पक्का अपना घर था। छोटी-सी फुल अपनी थी। साथ ही हमारा अपना एक छोटा मन्दिर भी था। शिवजीकी पूजाके लिए एक पुजारी भी रखा गया था, जिसको बारह मन और बारह रुपया प्रतिवर्ष दिया था। पिताजी गङ्गा स्नानको जाते थे और वहांसे आकर पूजा करते, फिर तुलसीकृत रामायणका पाठ को महिम्नस्तोत्र पढ़ते, आरती करते और फिर थे। वे भोजन एक ही जून करते थे। मक्खन खाना उन्हें बहुत प्रिय था। चौपाल पर वे शतरंज बहुत खेलते थे। यह चौपाल जीने आये गये लोगोंके ठहरनेके लिए बनवाया था। साधु-सन्त, ब्राह्मण-पण्डित प्रायः प्रतिदिन उनके अतिथि रहते ही थे। गायत्रीके परम उपासक थे। एक सहस्र गायत्री

होता था। कुल उनकी दिनचर्या बड़ी नियमित
पी-सादी थी। वे भगवद् भक्त, साधु-सन्तोंके
द-शास्त्रोंके परम विश्वासी सदाचारी और सरल-
ष थे। वे अपने माता-पिताके इकलौते पुत्र थे।
नका इकलौता लाड़ला पुत्र था। मेरे माता-पिता
वस्थाके हो गये थे, तब मैं उन्हें प्राप्त हुआ था। किसी
आदेशसे बालमीकि रामायणके सुन्दर काण्डके
ही सम्पुटित पाठ ब्राह्मणोंसे करवाये गये थे,
लस्वरूप उनके घर मैं उत्पन्न हुआ था, ऐसा मैं
ना करता था। मेरा पालन-पोषण बड़े प्यारसे
ा। इसी प्यारके कारण मैं पढ़ा-लिखा विशेष
साधारण चिट्ठी-पत्री लिखना, अपना आय-व्यय
रामायण पढ़ना, गीता भागवत मूल पाठ पढ़ना
ना ही हमको आया।

कालिक प्रथाके अनुसार अभी चौदह वष वय पूर्ण
थी कि मेरा विवाह भी हो गया था। गृहणी भी
की कृपासे साधु स्वभावकी सुशिक्षित तथा सदा-
ही मिली थी।

ताजीकी शिक्षा तथा दीक्षाके अनुकूल मैं भी गङ्गा-
गायत्रीजप, शिवपूजा, तुलसीरामायणपाठ
थावत् किया करता था और उन्हींकी देखादेखी
एक भी अच्छा खेलने लग गया था। हां, वे हुक्का
ा करते थे और शिवजीकी बूटी भांग तथा एक-
ी गांजेकी चिलम भी पी लिया करते थे। किन्तु
शिके निषेधसे इनका सेवन नहीं किया। हां, शिव-
होली आदि पर्वों पर पिताजीकी आज्ञासे ही भांग
दू पीता था।

मारी चतुष्पाठी (चौपाल) पर एक विरक्त पण्डित
दिनोंसे रहा करते थे। वे कहीं सुदूर दक्षिण देशके
ा सुना था। वे अपना परिचय नहीं देते थे।
खण्ड और बदरिकाश्रमकी बड़ी बातें सुनाया करते
एक बहुत बड़े गणितज्ञ थे। हमारे आस-पासके
और मेरे पिताजी भी उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे।
चारों धाम, सातों पुरियों तथा बारहों ज्योति-
लिंगोंकी यात्रा पैदल ही की थी। भारतवर्षका उन्होंने
कोना-कोना देखा है, ऐसा लोग कहा करते थे। वे एक
बड़े ही तपस्वी, तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस सम्पन्न पुरुष
थे। दुर्गापाठ प्रतिदिन वे किया करते थे। लोग कहते थे
कि उनको श्रीदुर्गा भगवतीका साक्षात् दर्शन हुआ है।
उन्हींकी कृपासे मुझे गणितमें प्रवीणता प्राप्त हुई थी।
कई लोगोंकी ऐसी मान्यता थी कि 'वे शाप और वर देने
में भी सिद्धि प्राप्त किये हुए हैं। किन्तु वैराग्यवश किसीको
भी शाप अथवा वर नहीं देते।' अक्षर शिक्षासे लेकर सारी
शिक्षा जितनी भी मुझे मिली है, वह सब उन्हींसे प्राप्त हुई
है। मैं और कहीं लिखने-पढ़ने नहीं गया। हां, थोड़ी-सी
गायनकला और तन्तुवाद्य तथा जलतरंग, मृदंग आदि
बजाना मैंने मुकुरजी महाशयसे सीखा था। ये महाशय
ढाकाके रहने वाले थे, परन्तु दो पीढ़ीसे ये पटनाके ही
बाशिन्दा हो चुके थे। मेरे जन्मसे कुछ पहलेसे ही मेरे
पिताजी निरामिषभोजी बन गये थे। माताजीको जन्म
से ही आमिष भोजन पसन्द न था, इसी कारण हमारा
परिवार पूरा शाकाहारी था। मेरा जीवन बड़े सन्तोष
और सुखसे बीत रहा था। अब मैं उन्नीस वर्षका हो
चुका था और बीसवां चौमासा अभी पूरा बीता नहीं था
कि मेरे घर पुत्र जन्म हुआ। मेरे माता-पिताने बड़ा उत्सव
मनाया। मैं भी अपनेको बहुत सुखी और भाग्यवान्
समझने लगा था। मुझे किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं थी।

श्रीमहात्माजी अपना जीवन वृतान्त सुनाये जा रहे
थे। उनकी गम्भीर और वात्सल्य पूर्ण मुखमुद्रा और
नितान्त एकाग्रताने मुझे अत्यधिक आकर्षित कर लिया
था। आगेसे आगे कथा सुननेकी उत्कण्ठा बढ़ती जा रही
थी। साथ ही एकाग्रता इतनी बढ़ी थी कि सूर्य कितना
ऊपर आया, समय कितना बीता इनकी चिन्ता या स्मरण
हमारे पास फटक नहीं पा रहा था। वे सुना रहे थे—

"जब मैं इक्कीस वर्षका हुआ मेरे घर एक कन्या
रत्नने जन्म लिया। कृषि आदिका काम-काज तथा उसकी
सभी देख भाल अब मैं ही करता था। माता-पिता वृद्ध
हो गये थे। घरवालीने घरका सभी काम काज सम्भाल
लिया था निश्चिन्त जीवनकी पराकाष्ठा हो गई थी। परि-

वर्तन होते चिर नहीं लगता। मेरे इकीस वर्ष एक क्षणमें ही बीत गये। एकाएक माताजीकी मृत्यु हो गई। मुझे बड़ा ही दुःख हुआ। अभी तीन मास भी पूरे नहीं बीते थे कि पूज्य पिताजीका भी शरीर छूट गया। उनको केवल तीन दिन साधारणसा ज्वर मात्र हुआ था। अब तो दुःखका पहाड़ ही मानों मेरे सिर पर टूट पड़ा था। मैं इस दुःखके समुद्रमें गोते खाने लगा ही था, किन्तु मेरे विद्या-गुरु वे विरक्त ब्राह्मण तथा गायन कलाके गुरु मुकरजी महाशय दुःखको हटानेके लिए अनेक प्रयत्न करते थे। जाति बिरादरी बन्धु बान्धव दूर-दूरके सगे सम्बन्धी अड़ोसी पड़ोसी सभी हितैषियोंने मेरे घर आकर लोका-चारानुसार मेरे दुःखमें सहानुभूति प्रकटकी थी। मैं अपने दोनों गुरुओंके उपदेशसे दुःखावेगको धीरे-धीरे सहता हुआ घर गृहस्थीके काम करने लग पड़ा। अपने माता पिताके सभी और्ध्वदैहिक कृत्य यथाशास्त्र और यथाशक्ति अधिकसे अधिक धन व्यय करके सम्पन्न किये। बन्धु-बान्धव तथा जाति वाले भी मेरे व्यवहारसे प्रसन्न थे। मातापिताकी बरसी भी यथाशास्त्र सम्पन्न हो गई। घरकी सभी चिन्ताएं अब मुझे ही करनी पड़तीं थीं। फिर भी भगवानकी कृपा थी कि अन्न वस्त्रकी चिन्ता नहीं थी। संसारकी असारताको समझता हुआ मातृ-पितृवियोगदुःख भूलता गया। अब पढ़ना लिखना आदि सब छूट गया। शतरंज जब तब खेल लेता था। कुछ गाना बजाना भी प्रति दिन चलता था। इससे चित्तका उद्वेग शांत हो जाया करता था। अब मैं लग-भग अठाईस वर्षका हो चला था। मेरे दोनों गुरुओंने भी शरीर छोड़ दिए। इससे मुझे महान् कष्ट हुआ। मैं अपनेको अनाथ अनुभव करने लगा। माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् उन दोनों महानुभावोंने मुझे अनाथ नहीं होने दिया था, पर भगवान्की इच्छाको कौन टाल सकता है। अब वह सुखमय जीवन स्वप्न हो गया। गाना बजाना भी कम हो गया। अब गङ्गास्नान, दोनों समय शिवपूजन, गायत्रीजप, रामायणपाठ तथा कृषिका प्रबन्ध इसीमें प्रायः समय बीतता था। मित्रोंके आग्रहसे कभी-कभी शतरंज थोड़ा खेल लेता था। दुःसंग किसीका नहीं लगने पाया। यद्यपि कुछ महदय तुग्य नी कि अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ किया था और 'धनसम्पत्तिः प्रभुत्व'' ये तीनों बातें भी थी, घरव.ली सुशिक्षित था बुद्धिमती थी और पैसा सारा उसीके हाथ था इस कारण तथा भगवान्की और माता-पिता तथा गुरुजनोंके उपदेशसे प्राप्त विवेक पूरा साथ दे रहे थे, इस कारण भी उन दुर्मित्रोंके प्रभा नहीं आया। कभी कुलीनताका विचार बचा लेता कभी लोकलज्जाका भय भी रक्षा कर देता था। तात्पर्य प्रत्येक प्रकारसे मेरी रक्षा होती रहती थी। इसी प्र वयके चालीस वर्ष बीत गये। और इसीके मध्य पुत्र और कन्याके विवाह भी हो गये थे। अपनी शक्ति अनुसार दोनोंके विवाह बड़ी धूमधामसे मैंने किये थे कन्याके अङ्कको एक शिशु रत्नने सुशोभित कर दिया था इसप्रकार मैं मातामह पद पर आरूढ हो चुका था। वह अपने घर सुख समृद्धिसे सानन्द रह रही थी। समय पलट गया था। विदेशी गौरकाय जातियोंका शा सशक्त हो रहा था। नित्य नये नियम बन रहे थे। प्र पर करभार बढ़ रहा था। वस्तुएं महंगी होती रही थीं। इस कारण भविष्यत् की चिन्ता हृदयको घेर लग पड़ी थी। लड़का पढ़ लिख कर योग्य हो गया था और घरका काम-काज भी भली प्रकार देखने लग गया। भगवान्की कृपासे मुझे दो ही सन्तानें हुईं और उनकी ओरसे भी कोई दुःख न था। थोड़े समयके अनन्तर मुझे पितामह कहलानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। तिरतालीसवां वर्ष मुझे लग रहा था। पौत्र जन्मसे हम सभी बड़े भाग्यवान् समझे जाने लगे हमने बड़ा उत्सव मनाया था दो बीघे भूमि अपने पुरो हितको हमने दान दी और दो बीघे शिव मन्दिरके नाम कर दी। बाजारकी दो दुकाने भी शिव मन्दिरके नाम चढ़ा दीं। दोनों दुकानोंका सात रुपया महीना भा आता था।"

[शेष पृष्ठ ८१ पर]

आधुनिक विज्ञान और सनातनधर्म

[श्री १०८ शङ्कराचार्य श्री सदानन्दगिरिजी महाराज]

आर्य-धर्मशास्त्र तथा अन्य ग्रन्थोंमें विज्ञान शब्दके अनेक लक्षण और अर्थ बताये गये हैं । कोषकार अमरसिंहने—

'मोक्षे धीर्ज्ञानमित्याहुर्विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः'

कहकर वर्तमान शिल्पशास्त्र और पश्चिमीय साइंसको ही विज्ञान नामसे पुकारा है । परन्तु उपनिषदादि ग्रन्थोंमें अनुभवगम्य विद्या तथा पराविद्याके अर्थमें 'विज्ञान' शब्दका प्रयोग देखनेमें आता है । यथा—

'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (बृहदारण्यकोपनिषद्)
'विज्ञान सारथिर्यस्तु, मनः प्रग्रहवान्नरः।(कठो०)
'विज्ञान प्रज्ञानं।' (ऐतरेय आरण्यक)
'विज्ञानेन वा ऋग्वेदं बिजाना।' (छान्दोग्योपनि०)
'अज्ञानेनावृतं लोकं विज्ञानं तेन मुह्यते ।'
'विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम् ।'
(कूर्मपुराण)

पूर्वोक्त वाक्य-प्रमाणोंमें विज्ञान शब्दका अर्थ आत्मोपलब्धिमूलक ज्ञान,प्रपंचातीत शुद्ध निर्विकल्प ज्ञानके रूप में ही प्रतिपादित किया गया है ।

'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।'

कह कर भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अनुभवात्मक ज्ञानको ही विज्ञान कहा है । अतः यह निश्चित हुआ कि स्थूल और सूक्ष्म—दोनों अर्थोंमें ही विज्ञान शब्दका प्रयोग होता है, तथापि 'आधुनिक विज्ञान' कहनेसे आजकल लोग प्रायः अमरकोषके लक्षणानुसार आधिभौतिक विज्ञान, पश्चिमीय विज्ञान, स्थूल शिल्प-चमत्कार इत्यादि भावोंसे ही इस विज्ञान—शब्दका ग्रहण करते हैं । अतः प्रस्तुत लेखमें भी 'विज्ञान' शब्दका प्रयोग स्थूल अर्थमें ही किया जायेगा ।

इस प्रकार आधुनिक विज्ञानका धर्मके साथ क्या सम्बन्ध या भेदभाव है, इसीका तत्त्व निर्णय करना प्रस्तुत प्रबन्धका आलोच्य विषय है । अर्थात् वस्तुका सम्भावयुक्त केवल आंशिक, अपूर्ण ज्ञान सायन्सके द्वारा होता है, किन्तु उसका पूर्ण ज्ञान कराने वाला दर्शनशास्त्र ही है । सायन्स (विज्ञान) की वास्तविक गति वस्तुज्ञानके विषयमें कितनी है । अर्थात् प्रकृति-राज्यके कुछ व्यापारों का प्रकटीकरण विज्ञान कर सकता है, किन्तु उसके आद्यन्त का पता लगानेमें समर्थ नहीं । सूर्यका जन्मदाता कौन है ? सूर्य कैसे उत्पन्न हुआ ? उसके किरणोंमें असीम शक्ति किसने भर दी ? अणु परमाणुओंका निर्माता कौन है ? उन्हें अद्भुत और असीम कार्य-शक्ति किसने दी ? आदि विषयोंका कुछ भी रहस्य-ज्ञान विज्ञानको नहीं है । विज्ञानने इस ओर हाथ बढ़ाये, किन्तु वह असमर्थ रहा । अर्थात् धर्म और विज्ञान दोनोंकी एकता करनी हो, तो यह निश्चित मत होना चाहिये कि समस्त विश्व में गूढ़ रूपसे निहित, समस्त विश्वमें प्रकाशमान, समस्त विश्वके हेतुभूत कारण शक्तिको हम जान ही नहीं सकते। अर्थात् उस कारण शक्तिको जानना विज्ञानकी शक्तिसे बाहर है । अतः इस विराट् शक्तिको छोड़े बिना धर्म और विज्ञानकी एकता कदापि सम्भव नहीं ।

वस्तु निर्णयमें ऐन्द्रियिक अनुभूति—जो विज्ञानका विषय है—केवल असम्पूर्ण प्रमाणमात्र है और ऐसे प्रमाण पर विशेष विश्वास करना ही नहीं चाहिये । बहिरिन्द्रियका पथ बन्द कर देने पर ही अन्तरेन्द्रियका मार्ग खुलता है । पूर्वोक्त विचारोंसे सिद्ध हुआ कि अतीन्द्रिय सूक्ष्म अनुभव ऐन्द्रियिक स्थूल अनुभवकी अपेक्षा अधिक व्यापक- तीव्र तथा निर्भर करने योग्य है । इन सब प्रमाणोंके अनुसार तत्त्वनिर्णय राज्यमें आधुनिक विज्ञानकी

पहुँच कहां तक है, यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है। आज समस्त संसारमें विज्ञानकी भरमार है। प्रकृतिके अनेक चमत्कारोंका प्रकाशन करनेसे विज्ञानका आदर बहुत बढ़ गया है। यह विज्ञान 'कैसे' (How) तो बता सकता है, किन्तु 'क्यों' (Why) को बतानेमें समर्थ नहीं। प्रकृतिके नियम विश्व-जगत्में उत्ताप, आलोक, सौदामिनी रूपसे या कठिन, तरल, वायु सम्बन्धी वस्तु आदिके भेदसे कैसे काम करते हैं, इसीका चमत्कार बताना विज्ञानका काम है। इस प्रकारके चमत्कार क्यों होते हैं? कौन अदृश्य अलौकिक शक्ति कारणरूपसे अन्तरमें रह कर प्रकृति माताकी ऐसी मनोहारिणी मूर्तिको जग-जनोंकी नयनरंजिनी रूपमें प्रकट करती है—इसका पता विज्ञान अब तक लगानेमें समर्थ नहीं हुआ। इसका पता अध्यात्म-शास्त्रको भली भांति प्राप्त है।

स्थूल-सूक्ष्म प्रकृतिकी लीलाको विज्ञान और कारण प्रकृतिके अलौकिक रहस्यको अध्यात्मविद्या प्रकट करती है। पश्चिमीय देशोंमें अभी तक विज्ञानका ही विशेष प्रचार हुआ है, अध्यात्मका नहीं। प्राचीन ऋषि-मुनियोंने विज्ञान और अध्यात्म—दोनोंसे काम लिया था। इसी कारण आर्यशास्त्रोंमें लौकिक प्रकृति राज्य तथा अलौकिक कृति राज्य—दोनोंका तत्व-निरूपण उत्तम तथा पूर्णरूपसे किया जा सका है। वास्तवमें सनातनधर्म ही पूर्ण विज्ञानानुकूल धर्म है, क्योंकि यह कोई दस-बीस नियमों से जकड़ा हुआ मजहब नहीं है। इसके अनन्त नियम हैं। जीव-जगत्में जन्म लेकर परमात्मामें लय होने तक क्रमो-न्नतिके पथपर चलनेके लिए अनेक जन्मोंमें जीव स्वभावतः जिन नियमोंका आश्रय लेता है; उन सभोकी समष्टि सनातनधर्म है। ये नियम प्रकृतिके निम्न स्तरमें कुछ और होते हैं और उच्च, उच्चतर एवं उच्चतम स्तरीय कुछ विशेष ही होते हैं—ये सब प्रकृतिके नियम हैं और विज्ञान भी प्रकृतिके नियमोंको ही व्यक्त करता है; अतः सनातनधर्म विज्ञानानुमोदित धर्म है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज विज्ञान-जगत्में जितनी उन्नति हो रही है और जो नये-नये आविष्कार हो रहे हैं, वे भी सनातनधर्मान्त-र्वर्ती विषयोंकी सत्य प्रमाणित कर रहे हैं।

आत्मा तथा प्राण मनुष्येतर जड़ जगत्में भी है. इसको विज्ञानाचार्य श्री जगदीशचन्द्र वसुने स्पष्ट णित कर दिया है। असवर्ण विवाहसे क्या-क्या होते हैं? इसको अमेरिकाके विज्ञानवेत्ता पंडितोंने द्वारा रक्त-परीक्षा करके पूर्ण रूपसे दिखा दिया है। म की भांति वृक्ष भी किस प्रकार सोते, जागते और दे सुनते हैं, इसके भी भूरि प्रमाण वसु महाशयने संसा समक्ष रखे हैं। गङ्गा-जलमें किस प्रकार विष तथा रो गुणनाशिनी अद्भुत शक्ति है; इसको इंजीनियर हैंकि महोदयने यन्त्रोंकी सहायता से दिखा दिया है। हमस साहबने पूर्ण रूपसे प्रमाणित कर दिया है कि स्त्रीके विवाहसे कुलमें किस प्रकार उपदंशादि दुरारोग्य रो फैल जाते हैं। ये सब सनातनधर्मके वही गूढ़ तत्त्व जिन्हें हमारे अतीन्द्रियदर्शी ऋषि-महर्षियोंने योग-दृ द्वारा प्रकट किया था। उनकी सत्यता तथा चमत्कारि आज विज्ञानकी उन्नतिके साथ-साथ निखिल विश्व व्याप्त हो रही है। इन सब विषयोंका विशद वर्णन क्रमश किया जायेगा। उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट प्रमाणित हो है कि विज्ञान हमारे सनातनधर्मसे भिन्न या विपरी वस्तु नहीं, बल्कि उसके एक अंशका प्रकाशमात्र है।

प्रकृतिके स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय ये चा विभाग होते हैं। इनमेंसे स्थूलका विशेष और सूक्ष्मक आंशिक प्रकाशन विज्ञानने किया है। शेष सूक्ष्म कारण और तुरीय—इन तीनों पर प्रकाश डालने वाला अध्यात्म शास्त्र है। जहां प्रकृति पुरुषमें विलीन है और पुरुष उसकी भिन्नता प्रतीत नहीं होती, उसकी तुरीयावस्था है। जब प्रकृति पुरुषकी शक्ति पाकर ब्रह्मा-विष्णु-रु एवं क्रमसे अनन्त विश्वकी जननी बनती है, तब उसक कारणावस्थाका प्रस्फुटन होता है। सूक्ष्म दशामें विवि दैवी-शक्ति, विद्युत शक्ति आदिके कार्यका पता विज्ञान लगाया है, अर्थात् विद्युत्की कार्य-पद्धतिका निरूप विज्ञान कर सकता है, किन्तु प्रकृति किस अचिन्त्य मौलिक शक्तिके प्रभावसे और क्यों ऐसे कार्य करती है इसका पता अभी विज्ञान लगा नहीं सका है। यही आधुनिक विज्ञान तथा अध्यात्म विद्यामें पार्थक्य है, इस

पहुँच कहां तक है, यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है। आज समस्त संसारमें विज्ञानकी भरमार है। प्रकृतिके अनेक चमत्कारोंका प्रकाशन करनेसे विज्ञानका आदर बहुत बढ़ गया है। यह विज्ञान 'कैसे' (How) तो बता सकता है, किन्तु 'क्यों' (Why) को बतानेमें समर्थ नहीं। प्रकृतिके नियम विश्व-जगत्में उत्ताप, आलोक, सौदामिनी रूपसे या कठिन, तरल, वायु सम्बन्धी वस्तु आदिके भेदसे कैसे काम करते हैं, इसीका चमत्कार बताना विज्ञानका काम है। इस प्रकारके चमत्कार क्यों होते हैं ? कौन अदृश्य अलौकिक शक्ति कारणरूपसे अन्तरमें रह कर प्रकृति माताकी ऐसी मनोहारिणी मूर्तिको जग-जनोंकी नयनरंजिनी रूपमें प्रकट करती है—इसका पता विज्ञान अब तक लगानेमें समर्थ नहीं हुआ। इसका पता अध्यात्म-शास्त्रको भली भांति प्राप्त है।

स्थूल-सूक्ष्म प्रकृतिकी लीलाको विज्ञान और कारण प्रकृतिके अलौकिक रहस्यको अध्यात्मविद्या प्रकट करती है। पश्चिमीय देशोंमें अभी तक विज्ञानका ही विशेष प्रचार हुआ है, अध्यात्मका नहीं। प्राचीन ऋषि-मुनियोंने विज्ञान और अध्यात्म—दोनोंसे काम लिया था। इसी कारण आर्यशास्त्रोंमें लौकिक प्रकृति राज्य तथा अलौकिक कृति राज्य—दोनोंका तत्व-निरूपण उत्तम तथा पूर्णरूपसे किया जा सका है। वास्तवमें सनातनधर्म ही पूर्ण विज्ञानानुकूल धर्म है, क्योंकि यह कोई दस-बीस नियमोंसे जकड़ा हुआ मजहब नहीं है। इसके अनन्त नियम हैं। जीव-जगत्में जन्म लेकर परमात्मामें लय होने तक क्रमोन्नतिके पथपर चलनेके लिए अनेक जन्मोंमें जीव स्वभावतः जिन नियमोंका आश्रय लेता हैं; उन सभीकी समष्टि सनातनधर्म है। ये नियम प्रकृतिके निम्न स्तरमें कुछ और होते हैं और उच्च, उच्चतर एवं उच्चतम स्तरीय कुछ विशेष ही होते हैं—ये सब प्रकृतिके नियम हैं और विज्ञान भी प्रकृतिके नियमोंको ही व्यक्त करता है; अतः सनातनधर्म विज्ञानानुमोदित धर्म है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज विज्ञान-जगत्में जितनी उन्नति हो रही है और जो नये-नये आविष्कार हो रहे हैं, वे भी सनातनधर्मान्तर्वर्ती विषयोंकी सत्य प्रमाणित कर रहे हैं।

आत्मा तथा प्राण मनुष्येतर जड़ जगत्में भी है. इसको विज्ञानाचार्य श्री जगदीशचन्द्र वसुने स्पष्ट प्र-णित कर दिया है। असवर्ण विवाहसे क्या-क्या होते हैं ? इसको अमेरिकाके विज्ञानवेत्ता पंडितोंने द्वारा रक्त-परीक्षा करके पूर्ण रूपसे दिखा दिया है। मनु की भांति वृक्ष भी किस प्रकार सोते, जागते और देख सुनते हैं, इसके भी भूरि प्रमाण वसु महाशयने संसा समक्ष रखे हैं। गङ्गा-जलमें किस प्रकार विष तथा रो गुणाशिनी अद्भुत् शक्ति है; इसको इंजीनियर हैकि महोदयने यन्त्रोंकी सहायता से दिखा दिया है। हमस साहबने पूर्ण रूपसे प्रमाणित कर दिया है कि स्त्रीके स विवाहसे कुलमें किस प्रकार उपदंशादि दुरारोग्य रो फैल जाते हैं। ये सब सनातनधर्मके वही गूढ़ तत्व जिन्हें हमारे अतीन्द्रियदर्शी ऋषि-महर्षियोंने योग-दृ द्वारा प्रकट किया था। उनकी सत्यता तथा चमत्कारि आज विज्ञानकी उन्नतिके साथ-साथ निखिल विश्व व्याप्त हो रही है। इन सब विषयोंका विशद वर्णन क्रमश किया जायेगा। उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट प्रमाणित हो है कि विज्ञान हमारे सनातनधर्मसे भिन्न या विपरी वस्तु नहीं, बल्कि उसके एक अंशका प्रकाशमात्र है।

प्रकृतिके स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय ये चा विभाग होते हैं। इनमेंसे स्थूलका विशेष और सूक्ष्मक आंशिक प्रकाशन विज्ञानने किया है। शेष सूक्ष्म कारण और तुरीय—इन तीनों पर प्रकाश डालने वाला अध्यात्म शास्त्र है। जहां प्रकृति पुरुषमें विलीन है और पुरुष उसकी भिन्नता प्रतीत नहीं होती, उसकी तुरीयावस्थ है। जब प्रकृति पुरुषकी शक्ति पाकर ब्रह्मा-विष्णु-रु एवं क्रमसे अनन्त विश्वकी जननी बनती है, तब उसक कारणावस्थाका प्रस्फुटन होता है। सूक्ष्म दशामें विवि दैवी-शक्ति, विद्युत शक्ति आदिके कार्यका पता विज्ञान लगाया है, अर्थात् विद्युत्की कार्य-पद्धतिका निरूपण विज्ञान कर सकता है, किन्तु प्रकृति किस अचिन्त्य मौलिक शक्तिके प्रभावसे और क्यों ऐसे कार्य करती है इसका पता अभी विज्ञान लगा नहीं सका है। यही आधुनिक विज्ञान तथा अध्यात्म विद्यामें पार्थक्य है, इसी

कारण कहा जाता है कि सनातनधर्म आधुनिक विज्ञानसे विपरीत वस्तु नहीं है। आधुनिक विज्ञान उसके एक अंश का प्रतिपादक है। शेष तीन अंशों और प्रकृतिके परे विराजमान सत्-चित्-आनन्दरूप परमात्माका प्रतिपादक पथदर्शक श्रीसनातनधर्म है। इस प्रकार यहां आधुनिक विज्ञान और सनातनधर्मका चिरंतन सम्बन्ध सिद्ध किया है। इस तथ्यको पश्चिमके कतिपय विद्वानोंने स्वीकार भी किया है।

अस्तु। धर्म और विज्ञानमें आवश्यक सम्बन्ध विद्यमान है। वे यथाक्रम ऐसी ही अनुभूतिके उपाय रूपमें रहते हैं, जिनका पृथक्करण असम्भव है। विज्ञान धर्मके एक अंगका प्रतिपादक है। वेवर साहबका कथन है कि ज्योतिष और चिकित्सा-विज्ञानका उत्पत्ति-निदान धार्मिक पूजामें व्याप्त है। ध्वनि-विज्ञानकी उत्पत्तिका कारण ही यह है कि यज्ञमें वेदमन्त्र उच्चारण अशुद्ध हो गया था। व्याकरणादि शब्दशास्त्र धार्मिक ग्रंथोंके यथार्थ परिज्ञान के लिए ही विरचित किये गये हैं। यज्ञ-वेदिका निर्माणके नियमों के आधार पर ही ज्यामिति नामक विज्ञान उन्नत हुआ। धार्मिक उपासनाकी व्यवस्थाका लक्ष्य करके ही वेबिलोनियन जातिने ज्योतिषका ज्ञान लाभ किया था। मिश्र-देशमें विज्ञानविषयक जितनी पुस्तकें हैं, वे प्रायः सभी देवी-देवता मुखोद्भूत पवित्र ग्रन्थोंके नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार पश्चिमीय तथा एतद्देशीय विद्वानोंने धर्म, विज्ञान तथा अध्यात्मशास्त्रका पृथक्-पृथक् स्थान निर्देशन कर इन तीनोंके परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्धका निरूपण किया है। अब आगे (अगले अंकमें) यह तत्वनिर्णय किया जायेगा कि धर्म क्या वस्तु है ?



राज्य है, पर राज्य लक्ष्मी कहां है ?

[लेखकः—आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ]

विदेशी तथा विधर्मी शासन-चक्रके समयमें सात समुद्र पार गयी हुई राज्यलक्ष्मी अभी तक भारतवर्षमें नहीं लौटी; ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। नहीं तो स्वराज्य आ गया और राज्यलक्ष्मी नहीं आयी; इसका क्या अर्थ है। हमारे शासन-चक्रमें कहां त्रुटि रह गयी है कि राज्यलक्ष्मी आनेसे झिझक रही है। जबसे शासन-सूत्र हमारे हाथोंमें आये हैं, तबसे हमने कितनी ही बड़ी-बड़ी योजनायें बनायीं; किन्तु राज्यलक्ष्मीके अभावमें उन सब योजनाओंको अनिश्चित कालके लिये स्थगित करना पड़ा। देशमें जो पर्याप्त अन्न-सामग्रीका अभाव चला आ रहा है, वह राज्यलक्ष्मीके न होनेके कारण ही है। स्वराज्यके होते हुए भी, दासताके दिनोंसे भी अधिक दुर्दशा हो रही है; यह राज्यलक्ष्मीके अभावके कारण ही है। इस दीपावलीके अवसर पर जबकि लक्ष्मी-पूजनकी धूम मचायी जाती है—इस बात पर विचार करना आवश्यक हो गया है कि राज्य है और राज्यलक्ष्मी नहीं है; इसका क्या अर्थ है ? इसका क्या कारण है ?

स्मृति-ग्रन्थोंके देखनेसे स्पष्ट है कि शाश्वती दण्ड-नीतिको धर्मका प्रधान अङ्ग माना गया है। यही नहीं, धर्मका प्रधान साधन होनेसे, स्मृति कहती है कि—दण्ड ही धर्म है।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥
(मनुः)

दण्ड ही यथार्थरूपमें प्रजाकी रक्षा करता है, प्रजाको अनुशासनमें चलाता है, प्रजाको मर्यादामें चलाता है। जब सब सो जाते हैं; कर्त्तव्याकर्त्तव्य भूल जाते हैं; अपनी मर्यादामें नहीं रहते; तब दण्ड ही तो जागता रहता है। इसीलिये तो दण्डको धर्म ही कहते हैं।

विचारणीय विषय है कि क्या हमारी दण्डनीति जाग रही है? जैसी स्थिति अथवा परिस्थिति है, उसको देखकर निःसंकोच कहना पड़ेगा कि हमारी दण्डनीति यथार्थ रूपमें अपना कार्य नहीं कर रही है, न भीतर ही, न बाहर ही।

भीतर ही देखिये

भीतर प्रजामें ही देखिये, क्या हो रहा है। दण्डनीति यथार्थरूपमें प्रचलित रहती, तो क्या देशके वाणिज्यकी यह दुर्दशा रहती? तो क्या देशके उद्योगोंकी यह हीनता होती? प्रजाको न पेट भर अन्न मिलता है, न वस्त्र मिलता है, न कोई जीवन-शक्तिके साधन मिलते हैं और न इसमें जीवनके लक्षण ही हैं। प्रजा न तो धर्म-मर्यादाओंका पालन कर रही है और न शास्य और शासकोंका वह पिता-पुत्रका-सा सम्बन्ध ही है। अब भी प्रजा उच्छृङ्खल है। ऊपर-ऊपरसे शान्ति प्रतीत हो रही है; किन्तु भीतर ही भीतर असन्तोषकी अग्नि धधक रही है—

अब बाहर देखिये

भारतका नैतिक प्रभाव तो बहुत है; भारतका मान संसारमें बहुत है; पर दण्डनीतिकी हीनता तथा दुर्बलताके कारण पड़ौसी पाकिस्तान किसी विषयमें भी हमारी परवाह नहीं कर रहा है; वह भारत-सरकारकी मृदुनीतिका लाभ उठा रहा है—जैसाकि श्री नेहरूजीने अब स्पष्ट रूपमें माना है कि "हमारी प्रत्येक भलाईका उलटा ही परिणाम हो रहा है। आक्रामक हमारे तुल्य होनेका दावा कर रहा है। यू० एन० ओ०ने अब तक यह भी को[illegible] हिम्मत नहीं की कि काश्मीर काण्डमें आक्रामक [illegible]स्तान है"—इत्यादि। हमारी दण्डनीति उग्र [illegible] तो यह दशा क्यों होती? उधर उत्तर कोरियाको एन० ओ०ने आक्रामक कहकर उस पर आक्रमण [illegible] भी आज्ञा दी और वहां युद्ध चल ही रहा है। [illegible] काश्मीर-काण्ड अभी तक समाप्त नहीं हुआ और न [illegible] कब तक चले। इधर प्रजा भलीभांति जानती है कि [illegible] शासकोंकी दण्ड-नीति दुर्बल है; इसलिए प्रजामें [illegible] मर्यादा स्थित नहीं है। बाहर अन्य राष्ट्र और पड़ौ[illegible] जानते हैं कि भारतके भीतर ही दण्डनीति यथार्थ रू[illegible] नहीं चलती; बाहर ही यह क्या कर सकेंगे। इसलिए [illegible] भी परवाह नहीं कर रहे हैं—भारतकी दुर्बलताओं[illegible] लाभ उठा रहे हैं। भारतकी क्षमाशील नीतिका [illegible] प्रभाव है कि—

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥

क्षमा वालोंका एक ही दोष है; दूसरा नहीं [illegible] सकता। वह यह कि जब एक सिरेसे क्षमा ही क्षमा [illegible] चलती है, दण्ड नीति अपना चमत्कार नहीं दिखलाती है, तब लोग उस क्षमाशीलको अशक्त, दुर्बल समझकर उसकी अवहेलना करने लगते हैं।

भारतमें तो दुहरी मार है। एक तो गांधीजीके अनुयायी होनेके कारण उनके बतलाये हुए सिद्धान्तोंका सत्य, अहिंसा आदिका किसी अंशमें पालन, दूसरी ओर दण्ड-नीतिकी दुर्बलता—इन दो पद्धतिके सम्मिश्रणके कारण न हममें गांधीजीकी उच्च अहिंसाका ही तेज है और न उग्र दण्ड-नीतिका तप ही है। इसलिए भारत निस्तेज-सा हो रहा है और पड़ौसी और अन्य राष्ट्र जहां इससे डरते हैं, जहां इसका सम्मान करते हैं, वहां इसका तिरस्कार भी कर रहे हैं। जो कुछ सम्मान है वह भी मतलबका है, जो थोड़ा बहुत भय माना जा रहा है; वह इस भारतकी किसी प्रकार जीवित क्षात्र-शक्तिका है, जिसने दासताके दिनोंमें भी संसारमें चमत्कार दिखलाया

और इसकी वीरताको देखकर संसार मुग्ध रह गया तथा अब स्वराज्य हो जानेपर, अंग्रेजोंकी छत्रच्छायासे निकल जाने पर भी भारतीय क्षात्र-शक्तिने काश्मीर-काण्डमें अपनी विशुद्ध क्षात्र-वीरता तथा रण-कौशल दिखलाकर संसारको चकित कर दिया। यही क्षात्रशक्ति अंग्रेजोंके अधीन रहकर अंग्रेजी सत्ताको इतने काल तक हमारे सिर पर बैठा रखनेका कारण हुई थी।

इसीलिए मैं कहता हूँ, स्पष्ट कहता हूँ, और निःसंकोच लिखता हूँ कि हमारी दण्ड-नीति निकम्मी है। न वह भीतर ही काम दे रही है, और न बाहर ही पूरा-पूरा प्रभाव डाल रही है। इसीलिये हमारा अपना स्वराज्य होने पर भी राज्यलक्ष्मी भारतमें आनेसे झिझक रही है।

दूसरा कारण भारतमें राज्यलक्ष्मीके न आनेका यह है कि यह हमारा राज्य है, पर राज्य-पद्धति सर्वथा विदेशी है, जिसका भारतीय धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है। भारतीय शासन-विधान एक विदेशी झमेला है, जिसके कारण भारतवर्षमें रहे-सहे धर्म-भाव, धार्मिक श्रद्धा, संस्कृतिके मिट जानेकी भी सम्भावना है। इन उपर्युक्त कारणोंसे राज्य है, पर राज्यलक्ष्मी नहीं है। राज्यलक्ष्मीके बिना राज्य तेजस्वी नहीं रह सकता। तेजस्वी राज्यके बिना पड़ौसी तथा अल्प राष्ट्र हमारी अवहेलना ही करते रहेंगे, चाहे हम महात्मा गांधीके उन उच्च सिद्धान्तोंका—सत्य-अहिंसा आदिका कितना ही वर्णन (बखान) करते रहें। राज्यचक्र राज्यतन्त्रके ढंगसे ही चलेगा। राज्यतन्त्र कोई सन्तोंका अखाड़ा नहीं है, जो दुर्बलताके कारण क्षमाशील होकर अड़ौसी-पड़ौसी अथवा अन्य राष्ट्रोंका अपमान सहता रहे और संसारके तिरस्कारका पात्र हो जाये। जो राजा, शासक, शासकवर्ग दण्डनीय दुष्टोंको दण्ड नहीं देता और जिसकी दण्ड-नीतिसे अदण्डनीय भी दण्डनीय हो जाते हैं अथवा दण्ड पाते हैं, वह राज्य कब तक चलेगा? दण्डनीय जो है वह चाहे भीतरी राष्ट्रका व्यक्ति हो, समुदाय हो, चाहे बाहरका व्यक्ति, समुदाय या राष्ट्र हो; उसको दण्ड मिलना ही चाहिये। ऐसा न होगा तो पहले तो अपना राज्य होने पर भी राज्यलक्ष्मी नहीं आ सकती। यदि भूलसे आ भी गयी तो टिक नहीं सकती। इस सत्यको मानना ही पड़ेगा। अबकी समस्या अब तक न सुलझ सकी। इसीलिए कि दण्ड-नीति ठीक-ठीक काम नहीं कर रही है और रिश्वत, भ्रष्टाचार, (व्यापक अर्थोंमें) कभीके मिट गये होते, यदि हमारी दण्डनीति ठीक समय पर ठीक ढंग पर चलती। स्यात् हमारी दण्डनीति इसलिए भी ढीली है कि जब चहुँ ओर संसारमें अशान्ति मच रही है; तब भीतर भी उग्र दण्डनीति वर्तकर भीतर भी अशान्ति क्योंकर लें। सम्भव है इसलिए दण्ड ढीला है कि शासनसूत्र तो हमारे हाथों में है, किन्तु शासन के अङ्ग (शासन-चक्र चलानेके कल-पुर्जे) सब वे ही विदेशी ढंगके हैं। यदि शासन चक्र दण्डनीति द्वारा तेजीसे अपने ढंगके अनुरूप चलानेकी चेष्टा की जाय, तो कल-पुर्जे टूट-टूट कर पृथक् जा पड़ेंगे और कहीं शासनचक्र ही बन्द न हो जाय। चाहे जो कारण हो; दुर्बल दण्डनीति के कारण ही स्वराज्य हो जानेपर भी स्वराज्य-सा नहीं लग रहा है। पूर्ण स्वतन्त्र होने पर भी ऐसा आभास हो रहा है कि अभी हम पराधीन ही हैं, पराधीन से भी पराधीन हैं। राष्ट्रके पुरोहित जागें, सोचें कि इस शासन-चक्रमें क्या त्रुटि है, यह चक्र यथार्थ गति क्यों नहीं ले रहा है? चक्र फिर रहा है सही; पर ढीला। चक्र फिर रहा है सहीं; कभी उलटा भी। चक्र फिर रहा है सही; किन्तु कभी आवश्यकतासे तेज; कभी तेजीके समय ढीला; कभी ढिलाईके समय तेज; यह क्या हो रहा है?

यह धर्मशून्य राज्यपद्धति कितनी देर चलेगी और भारतवर्षको क्या बनायेगी; पता नहीं; किन्तु यदि भारतीय ढंगका शासन होकर भारतीय राज-नीतिकी दण्ड-नीति प्रचलित न होगी, तो इस नवीन सोलह आने धर्मशून्य विधान द्वारा हमारा भारत भी विदेशी स्वतन्त्र राष्ट्र-जैसा एक विदेशी पद्धतिका राष्ट्र रह कर पाश्चात्य राष्ट्रों-जैसा ही एक अशान्त राष्ट्र बन जायगा, जिसमें स्वधर्म, संस्कृति, स्वसभ्यता, और स्वशिक्षाको पनपने

अवतारवाद रहस्य

[लेखकः—श्री पं० दीनानाथ जी शर्मा शास्त्री सारस्वत, विद्यावागीश विद्याभूषण विद्यानिधि]

गत वर्षके अन्तिम अङ्क में 'मूर्तिपूजारहस्य' उपस्थित किया जा चुका है। अब यह 'अवतारवाद रहस्य' 'श्रीस्वाध्याय'के पाठकोंके समक्ष उपस्थित किया जाता है। अवधान प्रार्थनीय है । परमात्मा यद्यपि निराकार और सर्वव्यापक होता हैं, तथापि प्रयोजनवश अपनी सर्वशक्तिमत्तासे साकार भी हो जाता है। यहां पर यह कहा जाता है कि 'निराकारत्व और साकारत्व परस्पर-विरुद्ध धर्म है, वे एकमें कैसे रह सकते हैं ?' इस पर यह जानना चाहिए कि एक वस्तुमें परस्पर विरुद्धता न होना यह लोकका विषय है, लोकोत्तरका नहीं। अलौकिक, लोकोत्तर अथवा सर्वशक्तिमान्‌नें परस्पर विरुद्ध धर्मवाला होना तो स्वाभाविक हुआ करता है। प्रत्युत ऐसा होना उसका दूषण नहीं, अपितु भूषण होता है। परमात्मा भी अलौकिक, सर्वशक्तिमान् एवं लोकोत्तरधर्मा है, अतः उसमें परस्परविरुद्धधर्मवत्ता भी स्वतःसिद्ध है। साहित्यमें रस अलौकिक माना गया है, इसी कारण उसमें विरुद्ध धर्म भी माने जाते हैं। पाठकगण देखें—

रसका 'कार्य' होना खण्डित करके फिर उसे सिद्ध किया जाता है, उसका 'ज्ञाप्यत्व' निराकृत फिर उसे 'ज्ञाप्य' सिद्ध किया जाता है। रसको भी नहीं माना जाता, अपरोक्ष भी नहीं। उसे 'नि ल्पकज्ञानग्राह्य' भी नहीं माना जाता, 'सविकल्पक ग्राह्य' भी नहीं। फिर उसे वैसा (सविकल्पकज्ञान तथा निर्विकल्पकज्ञानग्राह्य) माना भी जाता है। 'भविष्यत्' भी नहीं माना जाता, 'वर्तमान' भी माना जाता। फिर उभयाभाव-स्वरूप रसको उभय भी माना जाता है।

इस पर वादीका प्रश्न होता है कि वह परस्पर विरुद्ध क्यों होता है ? और वह स्वयं है क्या? उस पर साहित्यकार कहते हैं—

का कोई स्थान नहीं रहेगा। एक धर्म-शून्य, अध्यात्म-शून्य भौतिक राज्य रहेगा, जिसमें भारतीयोंके भौतिक शरीर भले ही सुखपूर्वक वाह्य आमोद-प्रमोदोंमें वृद्धि पा सकें; किन्तु स्वधर्म, स्व-संस्कृति, स्व सभ्यता अर्थात् स्व-आध्यात्मिकताके बिना प्राचीन भव्य भारतका अवशेष भी नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। प्राचीन आध्यात्मिक भावोंके बिना भारत तड़प-तड़प कर ही मर जायगा, फिर उसके स्थानपर यह नया भारत नए ढंगपर भले ही श्वास-प्रश्वास लेता रहे। भारतीय दण्डनीतिके बिना भारतीय अर्थनीति विकसित नहीं हो सकती, अर्थनीतिके सित हुए बिना भारतीय सभ्यता पनप नहीं स भारतीय सभ्यता शून्य भारत संसारमें उच्च नहीं सकता। सदा परमुखापेक्षी (दूसरोंके मुखको ताकने वा पराधीन-सा ही रहेगा—वैसा कहनेके लिए स्वा भले ही रहे—आकाशवाणी कहती है—"निराश ह स्थान नहीं, निराश होनेका स्थान नहीं" वे दि आयेंगे, पर अभी प्रतीक्षा करनी होगी।

—✿—

'तस्माद् अलौकिक, सत्यं वेद्यः सहृदयैरयम्'
('साहित्यदर्पण' तृतीय परिच्छेद)

अर्थात्—रस अलौकिक-लोकोत्तर है। इसे सहृदय ही जान सकते हैं।

फिर वादीका प्रश्न होता है कि वस्तुकी परस्पर विरुद्धता तो दूषण हुआ करती है, इस (रस)में वह कैसे है? इसी अभिप्रायसे 'काव्यप्रकाश'में शङ्का की गई है कि—

'कारकज्ञापकाभ्यामन्यत् क्व दृष्टम्?'

अर्थात्—इस संसारमें वस्तु या तो कारक होती है या ज्ञापक, पर यह रस कारक वा ज्ञापक दोनोंसे भिन्न कैसे है? इस पर वहां सिद्धान्ती द्वारा उत्तर दिया गया है कि—

'न क्वचिद् दृष्टम्'-इति अलौकिकत्वसिद्धे भूषणमेतद् न दूषणम्! ··उभयाभावस्वरूपस्य च उभयात्मकत्वमपि पूर्ववल्लोकोत्तरतां गमयति, न तु विरोधम्'। (चतुर्थ उल्लास, रसनिरूपण)

तात्पर्य यह है कि इस संसारमें कारक और ज्ञापकसे भिन्न वस्तु कोई भी नहीं देखी गई। पर यह रस उनसे भिन्न देखा गया है अतः यह स्पष्ट है कि रस संसारी लौकिक वस्तु नहीं, किन्तु अलौकिक-लोकोत्तर वस्तु है। लोकोत्तरतामें परस्पर-विरुद्धता स्वाभाविक हुआ करती है। उभयाभावस्वरूप होकर भी उभयात्मक होना—यह अलौकिकताका आभूषण है, दूषण नहीं। यही परस्पर-विरुद्धता ही वस्तुकी लोकोत्तरताकी परिचायिका है।

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि परस्पर विरुद्धधर्मवत्ता वस्तुकी अलौकिकता बताती है। रस अलौकिक है, अतः उसमें परस्पर-विरुद्धधर्म होना भी स्वाभाविक है। इसी प्रकार परमात्माको 'रसो वै सः' (तैत्तिरीयोपनिषत्, ब्रह्मानन्द वल्ली २ सप्तम अनुवाक, अथवा तैत्तिरीयारण्यक ८।२।७) इस प्रकार रस-स्वरूप माना जाता है। परमात्माको अलौकिक तथा सर्वशक्तिमान् सभी मानते हैं। इसीलिए उस परमात्मामें निराकार-साकार रूपमें परस्पर-विरुद्धधर्मवत्ता उसकी अलौकिकताकी सिद्धिमें अमोघ अस्त्र ही है। इस प्रकार परमात्मा अलौकिक तथा सर्वशक्तिमान् होनेसे निराकार भी होता है और साकार भी। वह अपनी सर्वशक्तिमत्तासे प्रयोज्याशक्तिको आविष्कृत करता है, अयोज्याशक्तिको नहीं।

वस्तुतः परमात्माको जो कि निराकार कहा जाता है---वहां उसके आकारका निषेध इष्ट नहीं होता। आकारका परमात्मामें सर्वथा निषेध इष्ट होने पर तो उसमें शून्यतापत्ति प्रसक्त होगी। अतः वहां पर 'निराकार' शब्दका 'अनिर्वचनीय आकार वाला' इस अर्थमें तात्पर्य हुआ करता है। जैसे कि किसीने पूछा कि वहां पर कितने पुरुष थे? दूसरेने उत्तर दिया कि असंख्य। यहां पर 'असंख्य' कहनेसे उक्त पुरुषोंका संख्याराहित्य अभिप्रेत नहीं होता, क्योंकि उनकी कोई न कोई संख्या तो हुआ ही करती है, किन्तु जैसे यहां पर अभावार्थक भी 'नञ्' संख्याकी अनिर्वचनीयताको बताया करता है, वैसे ही 'निराकार' शब्दमें भी 'निर्' शब्द आकारकी अनिर्वचनीयता-दिव्यताको बताता है। जैसे कि ईश्वरके विषयमें वेदोंमें 'नेति-नेति' (बृहदारण्यक ४६६। ४। २२) सुना जाता है। यहां पर पमात्माके निषेधमें तात्पर्य नहीं रहा करता, किन्तु उसकी अनिर्वचनीयतामें तात्पर्य हुआ है, वैसे 'निराकार' का 'निर्' शब्द भी आकारके निषेधमें तात्पर्यवान् नहीं, किन्तु उसके आकारकी अनिर्वचनीयतामें तात्पर्य रखता है।

उस निराकारत्वमें न तो परमात्माकी उपासना हो सकती है, न स्तुति, न कीर्तन। न उसका निराकारत्वमें ध्यान हो सकता है, न उसे हम जान सकते हैं। अगम्य एवं अचिंत्य होनेसे न हमारे जीवन पर उसका कुछ प्रभाव पड़ता है, न हम अपनी त्रुटियां पूरी करने और अपनेको उच्च अवस्थामें लानेके लिए उससे कुछ प्रार्थना कर सकते हैं, क्योंकि किसी मानुषी गुण प्रेम, दयालुता आदिका हम उस निराकारके साथ सम्बन्ध नहीं कर सकते, न किसी प्रकारसे उसकी पूजा कर सकते हैं। इस रूपमें वह हमारे ज्ञानका परम लक्ष्य तो हो सकता है, पर उपास्य नहीं। उपास्य वह अपने विशिष्ट रूपोंमें हीं--साकार रूपमें ही हुआ करता है।

पहले कहा जा चुका है कि परमात्मा लोकोत्तर होता है, अतः उसमें विरुद्ध धर्म होना स्वाभाविक है। अब उस (परमात्मा) में वेदादिशास्त्रानुसार परस्पर विरुद्ध धर्म देखें—

'अजायमानो बहुधा विजायते' (यजुर्वेद वा० सं० ३१।१९) यहां पर परमात्माको 'अजायमान' कहा है, इधर 'विजायते'से उसका विशेष जन्म कहा है, यह परस्पर विरुद्धता है 'स एव मृत्युः, सोऽमृतम्' (अथर्व शौ० सं० १३।४।३।२५) यहां पर उसे मृत्यु तथा अमृत कहा गया है। 'अनन्तमन्तवच्च' (ऋ० १०।८।१२) यहां पर उसे अनन्त और अन्त वाला कहा है। 'तदेजति-तन्नैजति, तद्दूरे-तद्वन्तिके।' तदन्तरस्य सर्वस्य, तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः' (यजुर्वेद वा० सं ४०।५) यहां उसे चलनक्रियाशील तथा चलन क्रियारहित, दूर और समीप, भीतर और बाहर बताया है। ये भी परस्पर विरुद्ध धर्म हैं। 'न सदासीद्, नो सदासीत्' (ऋ० शा० सं० १०-१२९।१) यहां पर उसे सत् अथवा असत् से भिन्न कहा है। 'अणोरणीयान्, महतो महीयान्' (श्वेताश्वतर-उपनिषत् ३।२०) सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्' (श्वेता० ३।१७, गीता १३।१४) 'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च पूर्वजाय च अपरजाय च' (यजुः वा० सं० १६।३२) यहां परमात्माको छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा इंद्रियसहित और इन्द्रिय रहित कहा है। जिन उपनिषदोंमें उसे 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता' (श्वेताश्व ३।१९) इस प्रकार निराकार कहा है, वहीं उसे 'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्' (श्वेता० ३।१६) विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्' (वा० यजु० सं० १७।१९) इस प्रकार साकार भी कहा है। तब परमात्मामें विरुद्ध धर्मता सिद्ध होनेसे उसमें अलौकिकता सिद्ध हुई। अलौकिकता होनेसे उसमें निराकारता-साकारता भी सिद्ध हुई। इस प्रकार उसे निर्गुण सगुण, न्यायकारी तथा दयालु भी लोकोत्तर होनेसे कहा जाता है। जब परमात्मा साकार भी सिद्ध हो गया। तब उसके अवतार होनेमें कोई बाधा न रही। जब कि वह ब्रह्माण्डके अणु-अणु और कण-कणमें व्याप्त है और उसकी शक्ति अग्नि जल आदिमें ओत-प्रोत है तब वह किसी विशिष्टि केन्द्रमें भी प्रकट हो [illegible] इसी विशेष केन्द्रमें प्रकट होनेकी परिभाषाको ही [illegible]तार' कहा जाता है।

एक स्थलमें उसकी प्रकटता हो जाने पर [illegible] अन्यत्र सत्ता नष्ट नहीं हो जाती, अथवा वह इस[illegible] देशी नहीं हो जाता। जोकि कहा जाता है कि—'[illegible] सच्चिदानन्द, निर्विकार, परिपूर्ण सर्वशक्तिमान् परमात्मा अवतार नहीं हो सकता, क्योंकि वह सबसे बड़ा [illegible] निराकार है, तब वह मनुष्य आदिके, छोटे छोटे [illegible] और बहुत छोटे छोटे गर्भाशयोंमें कैसे प्रवेश कर स[illegible] है? इस कारण उसका अवतार भी नहीं हो सकता— पर यह जानना चाहिये कि आकाश सबसे बड़ा है [illegible] निराकार है। परमात्माकी अपेक्षा महास्थूल है, क्यों[illegible] परमात्माके लिए 'सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतर विभा[illegible] कहा जाता है। इस प्रकार उसकी अपेक्षा स्थूल [illegible] आकाश घड़ा आदि छोटी-छोटी वस्तुओंमें अपनी [illegible]ताले प्रवेश करके घड़ेमें घटाकाश नामसे और महदादि[illegible] महाकाश आदि नामसे सिद्ध हो जाता है, घट आदि[illegible] नाशमें भी उसका नाश नहीं हो सकता, तो आकाशसे [illegible] महा सूक्ष्म परमात्मा यदि माताके गर्भाशयमें 'जन्मक[illegible] च मे दिव्यम्' (गीता ४।९) दिव्यरूपसे अवतीर्ण [illegible] जाता है, तो इस विषयमें आश्चर्यका अवकाश क्या?

जब भगवान् न होता हुआ भी निराकार जीव, देह[illegible] सम्बन्धसे विकार को प्राप्त नहीं होता, तब भगवान् सर्व-शक्तिमान्, स्वतन्त्र मायाका वशकर्ता परमात्मा अवतार लेनेमें भी विकारयुक्त नहीं होता। अग्नि और बिजली निराकार रूपमें सर्वव्यापक होते हैं, परन्तु घर्षणादि कारणवश ये कहीं-कहीं प्रकट भी हो जाते हैं। एक स्थलमें प्रकट होकर भी अन्य स्थानमें उनकी सत्ता नष्ट नहीं होती, और न कहीं उन्हें बन्धन ही होता है। बादलोंमें प्रत्यक्ष दीखती हुई भी विद्युत् वहांसे नीचे पृथ्वी पर गिर कर भी अन्य स्थलमें नष्ट नहीं हो जाती, उसकी सर्वव्यापकता फिर भी अक्षुण्ण रह जाती है। एक स्थानमें

प्रकट हो कर तथा बुझ कर भी अग्नि अन्यत्र अभाववान् नहीं हो जाती, और नाहीं वह मूलभूत महाग्निसे भिन्न ही होती है, वा भिन्न रहती है—'पूर्णस्य पूर्णमादाय-पूर्णमेवावशिष्यते' बृहदारण्यक ५।१।१)।

निराकार रूपमें भी यद्यपि अग्नि सर्वव्यापक रहती है, तथापि वह पुरुषोंके उपयोगमें नहीं आ सकती। कहीं प्रज्ज्वलित होने पर भी उसकी सर्वव्यापकतामें बाधा नहीं आती प्रज्ज्वलित अप्रज्ज्वलित अग्निमें कोई वास्तविक भेद नहीं हुआ करता, परन्तु प्रज्वलित होकर ही वह लौकिक पुरुषोंके उपयोगमें आती है। इस कारण उस समयमें वह उपास्य भी होती है। यही बात परमात्माके अवतार-विषय में भी समझनी चाहिये। उस समय परमात्माका श्रेष्ठोंके साथ स्नेह तथा अधमोंके प्रति क्रोध भी स्वाभाविक होता है। उस समय औपचारिकतासे उसका जातिविशेषसे सम्बन्ध तथा वर्ण-धर्मसे सम्बन्ध भी जनशिक्षार्थ हो जाता है। जैसे एक अग्निका एक देशके भी भिन्न-भिन्न स्थलोंमें प्राकट्य हो जाता है; वैसे दो अवतार भी राम परशुरामकी भांति एक देश तथा एक एक समयमें भी प्रकट हो जाते हैं। उस प्रज्वलित अवताराग्निके पृथ्वीसे तिरोभूत हो जाने पर भी उसकी शक्ति दिव्य होनेसे यहां भी अक्षुण्ण रह जाती है। उसे प्राणप्रतिष्ठोपेत तत्तत् पार्थिव मूर्तिमें केन्द्रीभूत करके दुहा जा सकता है। वही दुही हुई प्रज्वलित शक्ति भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करती है, अतः वह उसके अधिकारी पुरुषोंसे उपास्य भी हुआ करती है। यही मूर्तिका रहस्य है, अवतारवाद ही मूर्तिपूजाका प्राण हुआ करता है।

जिस समय कोई दो लकड़ियोंको घिसता है; वे उनके संघर्षसे, अथवा पत्थर-लोहेकी रगड़से अथवा दियासलाईसे वा आतिशी शीशेसे अग्निका प्राकट्य ही अग्निका अवतार है; वैसे ही जब आसुरी सम्पत्ति दैवी सम्पत्तिसे संघर्ष करती है उस समय निराकार परमात्मा साकार हो कर प्रकट हो जाया करता है, इसीको पारिभाषिक रूप में 'अवतार' कहा जाता है। जैसे 'अनुदरा कन्या' का यह अर्थ नहीं कि 'पेटसे रहित लड़की' क्योंकि पेटके बिना लड़की हो ही कैसे सकती है? तब 'अनुदरा कन्या' का अर्थ किया जाता है बहुत सूक्ष्म, छोटे पेट वाली लड़की। यह जैसे कि—'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' में आलङ्कारिक लोग नञ्का अभाव अर्थ 'अलङ्काररहित शब्दार्थ' न कह कर 'कहीं-कहीं अस्फुट अलङ्कार वाले शब्द और अर्थ' यह अर्थ किया करते हैं। चित्रकाव्यमें 'अव्यङ्ग्य' का 'व्यङ्ग्यसे रहित शब्दचित्र, अर्थचित्र' अर्थ न करके जैसे 'अस्फुट व्यङ्ग्य' यह अर्थ किया जाता है; वैसे ही 'निराकार' शब्दमें स्थित 'निर्' परमात्माके आकारका सर्वथा निषेधक नहीं। वेदमें परमात्माके लिए आया हुआ 'नेति नेति' (बृहदार० ४(६)।४।२२) शब्द परमात्माके अभावको नहीं बताता; किन्तु उसके आकारकी 'अनिर्वचनीयता' ही 'निर्' शब्दसे द्योतित होती है, अन्यथा 'निराकार' में 'निर्' शब्द सर्वथा अभाव अर्थ वाला माना जावे; तो परमात्मामें शून्यताकी प्रसक्ति हो जावेगी। पर यह इष्ट नहीं; अतः 'निराकार' का अर्थ 'अनिर्वचनीय' वा 'सर्वजनदुर्वेद्य आकार वाला' यही अर्थ है, 'साकार' का 'सर्ववेद्य, अथवा 'वचनीय आकार विशेष वाला' यह अर्थ है। तब इसमें उस परमात्माकी लोकोत्तरताके कारण कोई दोष वा विरोध नहीं पड़ता। निराकार भी जीवात्मा जब अल्प शक्ति वाला होता हुआ भी आकारको धारण कर लेता है; तब सर्वशक्तिमान् हो कर भी परमात्मा मायिक शरीर धारण करके साकार क्यों न बन सके?

जो यह कहा जाता है कि 'जीव तो कर्मबन्धनमें बद्ध हो कर ही शरीर धारण करता है; तो क्या परमात्मा भी बन्धन बद्ध है? जो कि शरीरधारणरूप अवतार ग्रहण करता है?' इस पर यह जानना चाहिये कि कैदी तो किसी कर्मके कारण--वे चाहे चोरी आदि दुष्कर्म हो, वा देश वा धर्मविशेषका हित विशेष रूप सुकर्म हो, जो राजा को प्रिय न हो—जेलखानेमें आता है और उसमें बन्धा रहता है; उस कर्ममें दण्डकी अवधि समाप्त होने पर राजाके द्वारा जेलखानेसे छूटता है; पर राजा

जेलखानेमें अपराधियों पर दया करनेके लिए स्वयं स्वतन्त्रतासे आता है।

अवतार होनेमें प्रमाणभूत —

'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर जायमानो बहुधा विजायते।' (वा० यजुर्वेद सं० ३१।१९)।

इत्यादि बहुतसे वेदमन्त्र हैं। 'विजायते' का अर्थ स्वा० दयानन्दजीने भी 'विशेषकर प्रकट होता है' यही किया है। 'विशेषकर प्रकट होना' ही तो 'अवतार' होता है; वैसे वह अप्रकट रूपमें तो सर्वत्र व्यापक रहता ही है। अस्तु, इसी मन्त्रका अविकल तथा स्फुट अनुवाद।

'अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य सम्भवाम्यात्ममायया॥' (४।६)

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत!
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।'

इत्यादि 'भगवद्गीता' के पद्य हैं।

'महाभाष्य'में कहा है—'एक इन्द्रोऽनेकस्मिन् क्रतुशते आहूतो युगपत् सर्वत्र भवति।' (१।२।६४) एक इन्द्र सैकड़ों यज्ञोंमें बुलाया जाने पर सब स्थलोंमें एक साथ प्रकट हो जाया करता है, यही बात अवतारमें भी समझनी चाहिये। 'वेदान्तदर्शन' का भाष्य करते हुए आचार्य श्री शङ्करस्वामीने भी १।२।२३ सूत्र के भाष्यावसरमें कहा है—

श्रुतिस्मृत्योश्च त्रैलोक्य शरीरस्य प्रजापतेर्जन्मादि निर्दिश्यमानमुपलभामहे—'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' (ऋ० १०।१२१।१) इति, समवर्तत—अजायत इत्यर्थः। 'स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते' यहां पर आचार्यने वेदानुसार परमात्माका अवतारग्रहण माना है।

कई लोग कहते हैं कि 'परमात्माके अवतारकी क्या आश्यकता है? क्या कंस रावणादिमें व्यापक होता हुआ वह वहीं उसका मर्म काट कर उन्हें नष्ट नहीं कर सकता?' इस पर जानना चाहिये कि जैसे गायके स्वास्थ्यार्थ माखनकी आवश्यकता आ पड़े; तो उसके लिए गायके सर्वशरीरमें व्यापक दूधका सूक्ष्म माखन उप नहीं होता। उसी गायका पृथक् साकार माखन अ होता है; वैसे ही कंस आदिके नाशार्थ परमात्माके प्रकट होनेकी आवश्यकता पड़ती; तभी लोगोंको फल स्पष्ट प्रतीत होता है; पाप न करने तथा करनेकी शिक्षा मिलती है, भक्तोंका मनोरथ भी हो जाता है। केवल कंस रावणादिको मारनेके उसका अवतार नहीं होता, जैसा कि आक्षेप जाता है। इसीलिए 'श्रीमद्भागवत'में कहा गया है—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं वि
कुतोन्यथा स्याद् रमतः स्व आत्मनि, सीता कृता
व्यसनानीश्वरस्य।' (५।१९।

अर्थात् परमात्माका मनुष्यावतार मनुष्योंकी शिक्षा हुआ करता है; केवल राक्षसोंके मारनेके लिए नहीं अन्यथा अपनी आत्मामें रमण करने वाले भगवान् सीताके वियोगसे भला दुःख क्यों हो? वह विलाप क्यों करे? यह मनुष्योंके शिक्षार्थ भी होता है।

अग्निरूपमें अवतीर्ण होकर वही तपता है, मेघ रू में अवतीर्ण होकर वर्षा करता है, अन्नरूपमें अवतीर्ण होकर हमें पुष्ट करता है, मृत्यु रूपमें अवतीर्ण होकर हमें मारता है। इस प्रकार वही परमात्मा धर्मको क्षीण होता हुआ देख कर जिस प्रकारसे धर्मकी रक्षा करना उचित समझता है; उसी प्रकारसे व्यक्त, अव्यक्त, देव, मनुष्य पशु आदि शरीरोंको धारण कर धर्मकी रक्षा करता है; अपने स्वरूपमें भी तदवस्थ रहता है। जैसे आकाश घड़ेमें अन्दर विद्यमान होकर घड़ेके आकारमें दिखाई देता है, घड़ेकी आकृति हट जाने पर वही घटाकाश अपने स्वरूप में हो जाता है; घटरूप उपाधिके योगमें भी उस आकाश में जैसे कोई विकार नहीं होता; वैसे परमात्माके अवतार के विषयमें भी जान लेना चाहिये।

जैसे गायके शरीरमें सर्वत्र व्यापक भी दूध उसके स्तनरूप केन्द्रके द्वारा प्रकट हो जाता है, वैसे ही सर्वव्यापक परमात्मा मूर्ति रूप केन्द्रसे सूक्ष्म रूपसे प्रकट हो जाता है; अथवा विशिष्ट माता-पिताको व विशिष्ट स्थल

की दूरीकृत करके भी अवतीर्ण हो जाता है। परमात्माने वेद द्विजोंको दे दिया। द्विजोंने वेदोक्त धर्मका प्रचार भी भारतीय संसारमें कर दिया। परन्तु श्रव्य काव्यका उतना प्रभाव जनतामें नहीं पड़ता, जितना दृश्यका। 'सत्यं वद' (तैत्तिरीय उपनिषद् १।११।१) इस प्रकार सत्य बोलने की आज्ञा वेदने दे दी, परन्तु श्रव्य काव्यकी इस आज्ञा का साधारण जनता पर प्रभाव क्या पड़ सकता है? जब यही बात दृश्य-काव्य (अभिनय, नाटक) द्वारा सत्य-हरिश्चन्द्र रूपमें दिखलायी जाय, तो उसका साधारण जनता पर खूब प्रभाव पड़ता है। तब जनता भी उस पर आचरण करनेके लिए उत्कण्ठित हो जाया करती है।

परमात्माने भी यही किया। हमें केवल अपना श्रव्य-काव्य (वेद) ही नहीं दीया, अपितु उसका अभिनय करके भी हमें दिखलाया। वेद द्वारा परमात्माने हमें 'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः' (अथ० अथर्व० ३।३०।२।३) 'मातृ माता न विद्यते' (वा० यजु० २३।४८) माता-पिताकी आज्ञाका पालन तथा गौ-पूजा आदि सिखलाई। वही बात परमात्माने राम-कृष्णादि रूपमें अवतीर्ण होकर हमें सिखलाई। यह मानव-शिक्षण ही अवतारका उद्देश्य हुआ करता है—यह पहले 'श्रीमद्भागवत'के प्रमाणसे बताया जा चुका है। यही "अवतारवादका रहस्य" है। यही वेदशास्त्र का सर्वतोभद्र 'स्वाध्याय' है। आशा है 'श्रीस्वाध्याय'के पाठकगण इस 'श्रीस्वाध्याय'से पुनः दिग्भ्रान्त करके भ्रम दूर कर लेंगे।

★

नवरात्रि और शक्ति उपासना

[लेखक—श्री पं० शिवनाथजी शास्त्री]

[प्राचीन कालसे हमारे देशमें शक्तिकी उपासना प्रचलित है। आज भी लाखों नर-नारी शक्ति उपासनामें पूर्ण विश्वासके साथ अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। यों तो शक्तिकी उपासना प्रत्येक दिन की जा सकती है किन्तु वर्षमें दो बार चैत्र तथा आश्विनकी नवरात्रिमें इस उपासनाका विशेष महत्व है। वैसे तो वर्षकी चार संधिकालमें चार नवरात्र होते हैं, परन्तु आषाढ़ और पौषके नवरात्रको सर्वसाधारण नहीं जानते, केवल कुछ उपासक ही इनका महत्व समझते हैं। इस विषयमें आजसे दशवर्ष पूर्व 'श्रीस्वाध्याय' प्रथम वर्षके चतुर्थ अङ्क (ग्रीष्माङ्क) में 'नवरात्र और शक्तिसञ्चय' शीर्षक लेखमें हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। जिज्ञासुजन उक्त अङ्कमें देख सकते हैं। इस लेखमें भी विद्वान् लेखकने शक्ति उपासनाका सुन्दर वर्णन किया है जो पठनीय तथा सामयिक है।
—सम्पादक]

भारतमें आदि कालसे शक्तिकी उपासना प्रचलित है। सनातन ब्रह्म एकल है। जब ब्रह्म सकलताको प्राप्त करता है तो उसकी इच्छाशक्ति ही प्रकृति और पुरुषका रूप धारण करती है और फिर सृष्टिका उद्भव होता है। प्रकृति और पुरुष ही परमेश्वर और परमेश्वरी हैं। दोनों वास्तवमें एक हैं और इनकी एकताका ज्ञान ही योगकी चरमसीमा है। प्रकृति देवी है, पुरुष शिव। दोनोंकी संयुक्त अवस्था ही अर्द्धनारीश्वरका रूप है। दोनोंका पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है जैसे वाणी और शब्दका महाकवि कालिदासने कहा है—

वागर्थाविवसम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

जब शिव और देवी सम्मुख होते हैं तो विश्वकी रचना होती है और उसका पालन होता है। जब ये विमुख हो जाते हैं तो सृष्टि लय हो जाती है। ब्रह्मकी वह शक्ति जो शिवाशिवका रूप धारण करती है और जिसके द्वारा विश्वकी रचना, पालन और लय होती है, शाक्तोंकी उपास्य देवी है। शाक्त इसको माताके रूपमें देखता है और इसी भावसे उसकी आराधना करता है। यही भुवनमोहिनी, जगज्जननी और महिमामयी महामाया है। इसके रूप अनेक हैं, इनमें काली, बगला, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातंगी, षोडशी, धूमावती, त्रिपुरसुन्दरी, तारा और भैरवी ये दश महाविद्याएं हैं। देवीके अनेक अवतार हैं। वह आज भी नाना रूपोंमें भारतके कोने-कोने और ग्राम-ग्राममें पूजी जाती हैं। परन्तु देवीके अनादि रूपको देवता भी नहीं जानते। यदि किसीने जाना तो एक सदाशिव त्रिलोचन अनंगांगहर शंकरने। जब सृष्टिका कार्य आरम्भ हुआ तो इसके उद्भवका भार ब्रह्माको मिला। परमेश्वरीने अपने एक अंशसे सावित्रीकी ब्रह्माकी शक्तिके रूपमें उत्पत्ति की। फिर विष्णुको पालनका भार मिला और लक्ष्मी उनकी शक्ति बनी। लयके लिये शिव आये और स्वयं जगदम्बा शिवकी शक्ति बनीं। परन्तु भुवनमोहिनीका अपना रूप क्या है इसे किसीने नहीं देखा। दुर्गा-सप्तशतीमें कहीं-कहीं संकेत मिलता है कि संभव है देवताओंने उसकी झलक देखी हो। वेद, पुराण और तन्त्र महामाया परमेश्वरी की वन्दना और ध्यान से भरे हैं। देवताओंने सदा परमेश्वरी की उपासना और वन्दना की है। यह कहीं नहीं मिलता कि जगदम्बाने किसी देवताकी आराधना की हो। जो समस्त ब्रह्माण्डकी वन्दनीया है, जिसकी शक्तिका न आदि है न अन्त है, उसी महाशक्तिका शाक्त उपासक है।

शक्तिकी उपासना भारतमें प्राचीन कालसे क्रमागत चली आ रही है। इसका क्रम वैदिक उपासनाके साथ-साथ विशेष साधनाके रूपमें चलता रहा है। धर्म वैदिक रहा; पर इसके साथ ही शक्ति-उपासना योगके रूपमें आदिकालसे बराबर विद्यमान रही। कालके ऋषियोंकी योगमयी तपस्याका जहां-जहां आया है उससे स्पष्ट होता है कि वे ऋषि थे। मन्त्र विद्या द्वारा ही शक्तिकी उपासना और यह साधना सनातनसे गुप्त धाराके रूपमें है। महाभारतकालके पश्चात् जब कलिकालका हुआ और जनमेजयके यज्ञमें अग्निके क्रियाकी सफलता ब्राह्मणोंकी शक्तिके परे ही प्रकट रूपसे तन्त्रोंका प्रतिपादन हुआ और उपासना प्रचलित हुई। आजकलके हिन्दूधर्म पर की पूरी छाप है। इन्हीं तन्त्रोंका एक प्रमुख अंग उपासना को निर्दिष्ट करता है।

शक्तिउपासनाका सामान्य रूप ही नगर-नगर ग्राम-ग्राममें प्रचलित है। भगवतीकी वन्दना कौन नहीं करता ?

स्थान-स्थान पर देवीके मन्दिर हैं; परन्तु उपासना सामान्य उपासना है, इससे आगेकी ही साधकको शाक्तोंकी प्रबल उपासना तक पहुँचा हैं। शाक्त मंत्र योग द्वारा परमेश्वरीका साक्षात्कार है. मन्त्र ही देवीकी सूक्ष्म देह है। इसे प्राप्त ही दुर्लभ है। ज्योति ही मन्त्रको जीवित और दीप्त करती है और यह ज्योति गुरु ही से प्राप्त होती है, गुरुके शक्ति उपासनामें अग्रसर होना और सफलता प्राप्त करना दुर्लभ ही नहीं असम्भव है। गुरु और शिष्यका सम्बन्ध ढकोसलोंके रूपमें प्रायः देखा जाता यह वास्तविक रूप कदापि नहीं है। गुरु पिता है और शिष्य पुत्र। दोनोंकी आत्माकी एकतासे ही यह सम्बन्ध स्थापित होता है। यह अति गहन विषय है और इसका रहस्य अनुभव ही से प्राप्त होता है। यह अवश्य है वह अति कोमल एवं दृढ़ बन्धन आज सामान्य गुरु और चेलोंकी लीलाओंसे हास्यास्पद बन रहा है।

जहां शक्ति उपासनाका अधिकार प्राप्त करना कठिन है वहां उसके साथ-साथ शक्ति उपासना द्वारा प्राप्त

हुई शक्तिका पाचन भी टेढ़ी खीर है। इस आराधनासे साधकमें शक्तिका संचार होता है। उसे बहुत कुछ करने-की क्षमता प्राप्त होती है। परन्तु शक्तिके दुरुपयोगसे साधककी हानि होती है और उसका लोक-परलोक बिगड़ सकता है। शक्ति उपासना शीघ्र फलदायक है। परन्तु इस पर चलना छत पर दौड़ना है। यदि गिरे तो हड्डी पसली टूटनेका भय है। शस्त्र पाकर उसका दुरुपयोग न करना, धन पाकर दुराचारी न बनना, ऐश्वर्य प्राप्त कर अधर्मकी ओर अग्रसर न होना, बल पाकर अत्या-चार न करना—यह सब संयमी ही कर सकते हैं, सब नहीं। इसी कारणसे शक्ति उपासना जोखमकी वस्तु बन जाती है। इसी लिए गुरु यह देखता है कि शिष्य इस अतिप्रबल उपासनाका अधिकारी है या नहीं। यदि साधक शक्तिके उल्लासका पाचन कर गया और देवीके प्रसन्नार्थ उपासना करता गया तो वह शिव बन जाता है, और पृथ्वी पर स्वयं देवता बन कर विचरता है। उपासनाके और और मार्ग या तो भोग प्रदान करते हैं या तो मोक्षकी ओर ले जाते हैं। केवल शक्ति उपासना ही भोग और मोक्ष दोनों साथ-साथ देकर कैवल्य तक पहुँचा देती है। शक्तिकी आराधना शीघ्र फल देती है। इसका अनुभव सरलतासे हो सकता है। हां, इसकी प्राप्तिका अधिकार कठिनाईसे मिलता है। उसके लिए चेष्टा करनी पड़ती है और मनमें भक्तिका भाव लाना पड़ता है। इसकी गोपनीयताका रहस्य ही यही है कि यदि यह प्रबल उपासना अनधिकारियोंके हाथमें पड़ेगी तो जहां वे अपने आपको सङ्कटमें डाल लेंगे वहां उसके साथ-साथ वे दूसरोंको भी महान् कष्ट दे सकते हैं।

नवरात्रि हिन्दुओंका महान् पर्व माना जाता है। इन दिनों घर-घरमें चंडीपाठ होता है। सामान्य रूपसे भारतके कोने-कोनेमें जगदम्बाकी आराधना होती है। नवरात्रि प्रायः ऋषियोंके परस्पर संध्याका काल है। इस समय महाशक्तिके उस वेगकी धारा जो सृष्टिके उद्भव और लयका कारण है, अधिक तीव्र हो जाती है और आराधनामें भुवनमोहिनीका आवाहन अधिक सुगम होता है। योगमें इसका अनुभव होता है। इस कालमें इड़ा और पिंगलामें वायुकी गति समानतामें रहती है और ऐसी अवस्थामें कुंडलिनीका जागरण और ऊर्ध्वगति सरल हो जाती है। इन्हीं कारणोंसे नवरात्रिके दिन महापर्वके हैं। प्रत्येक हिन्दू इन दिनों अपने आपको जगदम्बाके अधिक निकट समझता है और उसका स्मरण करता है।

यों चाहे व्यक्ति और समाज जगदम्बाको भूल जाए परन्तु जब-जब व्यक्ति और देश पर संकट पड़ा तब सदैव शक्ति ही का आवाहन हुआ। भारतका इतिहास इसका साक्षी है। भारतीय स्वतन्त्रताका युद्ध भी "वन्देमातरम्" के गानसे छिड़ा "वन्देमातरम्" की "माता" क्या महामहिमामयी महामायासे कोई भिन्न वस्तु है? "आनन्द-मठ" में सन्यासियोंने जिस "माता" की वन्दना की है वह जगदम्बा नहीं तो क्या है? आज जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो इस परमशक्तिशाली राष्ट्रगानका तिर-स्कार करना कहांकी बुद्धिमानी है? यह वैसा ही है जैसे उसी सीढ़ी को फेंकना जिसके सहारे कोई छत पर चढ़ा हो।

शास्त्रका संकेत है कि कलिकालका युगधर्म शक्ति उपासना ही है। "कलौ चंडीविनायकौ।" तन्त्र ग्रन्थोंमें स्पष्ट रूपसे लिखा हुआ है कि जब कलियुग प्रबल होगा तो एक मात्र शक्तिउपासना ही भवसागरके पार करानेका साधन होगी और उस समय शाक्तधर्मकी परम गोपनीय विद्या प्रकाशमें आ जायेगी। क्या वह समय अब आ गया?



आर्योंके संकल्पमें देश और काल

[लेखक—श्री पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकरजी]

—:★:—

वेद भगवान् आज्ञा करते हैं:—

"स्वाध्यायान्मा प्रमदः"

'स्वाध्यायमें प्रमाद न करो' यह आज्ञा उचित ही है। स्वाध्याय का अर्थ केवल वेदपाठ करना ही नहीं है, किन्तु इसमें ऐहिक और पारत्रिक समस्त ज्ञानराशिका समावेश हो जाता है। स्वाध्याय ज्ञान यज्ञ है। इसी को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। गीतामें श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं:—

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥
श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप !
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ! ज्ञाने परिसमाप्यते।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम !

अर्थात् शास्त्रोंमें द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्यायज्ञानयज्ञ आदि कितने ही प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं; परन्तु द्रव्य यज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अधिक कल्याण कर है। क्योंकि सभी कर्मोंकी ज्ञानमें परिसमाप्ति हो जाती है। जो स्वाध्यायरूपी ज्ञानयज्ञ नहीं करता, उसका इहलोक ही नहीं बनता, परलोककी तो बात ही क्या है। अतः गृहस्थोंके नित्य अवश्य करणीय कर्मों में पंच महायज्ञोंका विधान है और उनमें भी ब्रह्मयज्ञ प्रधान है। भगवान् फिर कहते हैं:—

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

यज्ञ, दान और तपका त्याग नहीं किया जा सकता, वे तो करना ही चाहिये। क्योंकि बुद्धिमानोंके लिये यज्ञ, दान और तप पवित्र माने गये हैं।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

ज्ञानसे बढ़कर पवित्र इस संसारमें कोई नहीं है। स्वाध्याय रूपी ज्ञानयज्ञमें यज्ञ, दान और ये तीनों बातें आ जाती हैं। स्वाध्यायरूपी ज्ञानयज्ञके द्वा भगवान्की पूजा तो होती ही है।

"ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।"

किन्तु विद्यादान (ब्रह्मदानका) भी साधन हो जा है और तपश्चर्या तो होती ही है। भगवान्ने इ वाङ्मय तप कहा है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितञ्च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनञ्चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

जिससे उद्वेग (मनोदुःख) न हो, ऐसे सत्य, प्रि और हितकारी वचन तथा स्वाध्यायको वाङ्मयतप कह हैं। यदि यही बात है, तो आइये, 'श्रीस्वाध्याय' - प वारके हम सब लोग मिलकर कुछ स्वाध्याय रूपी ज्ञा यज्ञ का क्रियात्मक (Practical) अनुष्ठान करें। स्वा ध्याय करते हुए हम सैद्धान्तिक ऊहापोह तो भरपूर कर हैं, परन्तु उन सिद्धान्तोंको व्यावहारिक रूपसे काम नहीं लाते। यह हमारे लिए लज्जाकी बात है,—क्रिय शून्य वाचालता मात्र है। यदि हम अल्पांशमें ही धर्मक आचरण करें, तो महान् विपत्तिसे पार पा सकते हैं:—

"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतोभयात्।"

श्री भगवान्ने प्रथम संकल्प किया कि मैं एकसे अने हो जाऊं, तब उन्होंने इच्छा मात्रसे अनन्त कोटि ब्रह्मां

की रचना कर डाली। सृष्टिके मूलमें संकल्प ही बीज स्वरूप है। इसीसे आर्योंके प्रत्येक धर्मकार्यमें संकल्पकी प्रधानता है। संकल्पमें देश-कालका विचार रखना, उसकी सिद्धिके विचारसे, बहुत आवश्यक होनेसे प्रथम देश-कालका उल्लेख कर तब किसी धर्म कार्यका संकल्प किया जाता है।

देश और काल अनादि तथा अनन्त हैं। वे परमात्माके स्वरूप ही हैं। देशके विचारसे ब्रह्मशक्ति महामायाके अनादि अनन्त गर्भमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं। उनमेंसे एक हमारा यह ब्रह्माण्ड है। यह चौदह भागोंमें विभक्त है। ऊपरके भुवर्लोक, स्वर्गलोक, आदि छः और नीचेके अतल, वितल आदि सात लोकोंके बीचमें अपना यह भूर्लोक स्थित है। मनुष्यकी रीढ़की तरह दैवी सुमेरु पर्वत, जो सूक्ष्म शक्तिमय पर्वत है, ब्रह्माण्डको धारण किये हुए है। नीचेके सात लोक 'बिल-स्वर्ग' भी कहाते हैं, जिनमें असुर लोग वास करते हैं, जो एक प्रकारके देवता ही हैं।

इन सातों लोकोंका भोग इन्द्रिय भोगके सम्बन्धसे ऊपरके लोकोंके भोगोंसे कुछ विलक्षण है। उन्नत भोगकी इच्छा करने वाले आसुरी प्रकृतिके जीव इन आसुरी लोकोंमें जाकर भोग भोगते हैं। ऊपरके लोकोंमेंसे भूर्लोक और भुवर्लोक दोनों भौम स्वर्ग कहाते हैं। ये मध्यम श्रेणीके स्वर्गलोक हैं। इन्हींके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, नक्षत्र, पृथ्वी आदि सब स्थूल लोक हैं। इनके ऊपरके पांचलोक दिव्य स्वर्ग कहाते हैं। तीसरा स्वर्लोक माहेन्द्र स्वर्ग है, चौथा महर्लोक प्राजापत्य स्वर्ग है और पांचवा, छटा तथा सातवां जनलोक, तपोलोक, और सत्यलोक ब्राह्म स्वर्गके नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पांचों लोकोंमें सात्विक भोगकी अधिकता है और वहीं उन्नतसे उन्नत महदात्माएं निवास करती हैं। इसका वर्णन योग-दर्शन, विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

भूर्लोक सात भागोंमें विभक्त है, जो द्वीप कहाते हैं और प्रत्येक द्वीप वातावरण रूपी समुद्रसे घिरा हुआ है। इन सब द्वीपोंमेंसे एक हमारा जम्बु द्वीप है। जम्बु-द्वीपमें नौ खण्ड अर्थात् नौ वर्ष हैं, उनमेंसे एक हमारा भारतवर्ष है, जो मृत्युलोक कहाता है। बाकीके आठ वर्ष देवलोकके हैं। यहां ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि भूगोलके द्वारा जो पृथ्वी जानी जाती है, जिसको world या दुनिया कहते हैं, वही भारतवर्ष है और जो हिन्दु-स्थान कहाता है, वह आर्यावर्त, भरतखण्ड या भारत द्वीप है। सारांश यह है कि, ब्रह्माण्डके चौदह लोकोंमें से एक भूर्लोक है। उसके सात द्वीप हैं, जिनमेंसे एक जम्बुद्वीप है। जम्बुद्वीपके नौ वर्ष हैं जिनमेंसे एक हमारा भारतवर्ष (पृथ्वी) है। जम्बुद्वीपमें ही नरकलोक, पितृ लोक और प्रेतलोक स्थित हैं। अर्थात् एक ब्रह्माण्डका हमारा भारतवर्ष (पृथ्वी) ११७६ वाँ हिस्सा है। जम्बु द्वीपके नौ वर्ष और नरकादि तीन लोक मिलाकर बारह खण्ड होते हैं। वे सात द्वीपोंसे गुणा करनेपर ८४ होते हैं और उन्हें १४ लोकोंसे गुणा करनेसे उक्त संख्या निष्पन्न होती है। भारतवर्ष ही मनुष्य पिण्डके वासोपयोगी है, शेष सब अंश देव पिण्डके वासोपयोगी समझने चाहियें।

शास्त्रोंने यद्यपि देश और काल को ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति महामायाकी साक्षात् विभूति कहकर विस्तारमें अनादि और अनन्त माना है। तथापि सृष्टिके विशेष विशेष स्तरके अनुसार उनको सादि और सान्त भी माना जा सकता है। नौ वर्षोंमें इलावृत वर्ष बीचो बीच है और उसीमें सुमेरु पर्वत खड़ा है। भारतवर्ष दक्षिणकी ओर है। उसके भी नौ विभाग हैं। इस समय उनके नाम एशिया, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप आदि कुछ भी हों, प्राचीन कालमें उनके नाम थे— इन्द्रद्वीप, कशेरुमान, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, वारुणद्वीप और आर्यावर्त आर्यावर्तसे ही पूज्यपाद महर्षियोंने जगत्के पथप्रदर्शन का कार्य आरम्भ किया था। जब कि, पृथ्वी ही भारत वर्ष या मृत्युलोक है, तब आर्यावर्तको उसका शिरोभाग मानना उचित ही है। क्योंकि यहींसे मनुष्य जातिको ज्ञानकी ज्योति प्राप्त हुई थी। यहीं मानव पिण्ड उत्पन्न

होते और रहते हैं। क्योंकि उनका प्रधान उपादान पृथ्वीतत्व है। देव शरीर अनेक प्रकारके होने पर भी उनका उपादान तैजस है। इसीसे साधारण मनुष्य देव-शरीरोंका दर्शन नहीं कर सकते। मृत्युलोक ही कर्मभूमि है। यहीं मनुष्य शरीरमें कर्म भोगके साथ ही साथ सत्-असत् प्रारब्ध संग्रह करनेका उत्तम अवसर मिलता है।

मृत्युलोकके चारों ओर पृथ्वीसे लेकर अन्तरिक्षमें कुछ दूर तक प्रेतलोकका स्थान है। जो मृत्युके अनन्तर वासना जालमें फंसे रहते हैं, उनको वायवीय शरीर धारण कर प्रेत लोकमें जाना पड़ता है। नरकलोकका स्थान मृत्युलोकके नीचेकी ओर है। उसीके पास भगवान् यम धर्मराजकी राजधानी है, जिसको पितृलोक कहते हैं। नरकलोक यमराजके आधीन कारागार है, जहां असत् कर्मोंके भोग भोगने पड़ते हैं। ये भूर्लोकमें ही पितृलोकके पास है।

यद्यपि कोषोंमें विन्ध्याचल और हिमाचलके बीच की भूमिको ही 'आर्यावर्त' कहा है, तथापि पुराणों और इतिहाससे पता चलता है कि सारा भारत ही आर्यावर्त है। मुख्य आर्यावर्त विन्ध्य और हिमालयके बीचमें होने पर भी भारतका शेषांश तदन्तर्गत माना गया है। वहांके संकल्पोंमें भी 'आर्यावर्तान्तर्गत'.........देशे...... क्षेत्रे कहा जाता है। इस प्रकार संकल्पमें जहां बैठकर धर्म-कर्म किया जाता है, उस देशका उल्लेख करके तब कालका उल्लेख करनेकी रीति है। आर्यावर्तमें इस समय ११-१२ प्रान्त हैं। उनके प्राचीन नाम संकल्पमें लिये जाते हैं। जैसेः--- मगध (बिहार) बंग (बंगाल) विदेह (तिरहुत), उत्कल (उड़ीसा), अंग (भागलपुरके आसपासका प्रांत), विदर्भ (बरार) मालव (उज्जैन) सौराष्ट्र (काठियावाड़) आदि। भारत पुण्यभूमि इस कारण है कि, यहां सर्वत्र तीर्थ क्षेत्र होनेसे देवताओंका यहां सदा निवास रहता है। संकल्पमें क्षेत्रका भी उल्लेख करना पड़ता है।

आर्य महर्षियोंने कालकी गणना सूक्ष्मसे सूक्ष्म और महान्से महान् की है। उसकी तालिका इस प्रकार हैः---

१०० त्रुटिका १ पर, ३० पर का १ निमेष, १८ नि[illegible] १ काष्ठा, २० काष्ठाकी १ कला, ३० कलाकी १ [illegible] २ घटिकाका १ क्षण, और ३०क्षणका एक अहोरात्र [illegible] मनुष्यका पूरा दिन रात होता है। इस [illegible] १७२८००० मानव वर्षोंका सत्ययुग, १२९६००० [illegible] त्रेतायुग ८६४००० वर्षोंका द्वापरयुग और ४३[illegible] वर्षोंका कलियुग होता है। चारोंको मिलाकर एक [illegible] युग, ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर और चौदह म[illegible] रोंका एक कल्प होता है। यही ब्रह्माका अहोरात्र [illegible] उनके दिनमें सृष्टि क्रिया और रात्रिमें लयक्रिया [illegible] करती है। ब्रह्माके सहस्त्र दिनोंकी विष्णुकी १ [illegible] होती है। विष्णुकी १२ लाख घड़ियोंका शिव[illegible] आधा निमेष होता है और शिवजीके दस करोड़ नि[illegible] की श्री जगदम्बाकी एक त्रुटि होती है। शक्ति रह[illegible] इसका प्रमाण इस प्रकार दिया हैः---

चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते।
पितामहसहस्राणि विष्णोरेकाघटी मता ॥
विष्णोर्द्वादशलक्षाणि निमेषार्धं महेशितुः।
दशकोट्यो महेशानां श्रीमातुस्त्रुटिरूपकाः ॥

सृष्टि और प्रलयके सब कार्य जिस समयमें वह ब्रह्माण्डकी आयुका समय कहा जा सकता है [illegible] वह काल जगदम्बाकी एक त्रुटिका काल है। इसीसे त[illegible] में श्री जगदम्बाकी महिमा वर्णन करते हुए कहा [illegible] है।

"कल्पावसानसमये कृत ताण्डवस्य
देवस्य खण्डपरशोः परमेश्वरस्य।
पाशांकुशेक्षुकशरासन पुष्पबाण
सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका ॥"

इस समय श्वेतबाराहकल्पके वैवस्वत मन्वन्तरान्त[illegible] २८ वां कलियुग चल रहा है। इस कल्पके विक्रमीय [illegible] २००८ के अन्त तक १९७१९६१६२४ वर्ष ५ मास[illegible] दिन, १७ घड़ी और ८$\frac{४}{७}$ पल बीत जायंगे। यही म[illegible] सृष्टिके आरम्भका समय है। शेष वर्ष २३४८०३८३९३[illegible] ६, दिन २५ घड़ी ४२ और पल ५१$\frac{३}{७}$ बीत जाने [illegible]

महाप्रलय हो जायगा। एक चौकड़ी युग समाप्त होने पर मृत्युलोकका सारा कूड़ा-करकट साफ कर दिया जाता है, केवल सत्ययुगके उपयोगी मसाला बच रहता है। मन्वन्तरके अन्तमें जल-प्लावन जैसा खण्ड-प्रलय होता है और पुराना बीज रह जाता है। कल्पान्तमें यहांकी सृष्टिका पूरा प्रलय हो जाता है और नवीन सृष्टि होती है। प्रलयोंका परिवर्तन (सृष्टि स्थिति लय-क्रिया) ब्रह्मांडके त्रिलोक और महर्लोकमें हुआ करता है। युगोंका प्रभाव भी त्रिलोकमें ही पड़ता है। कल्पान्तमें भी ब्राह्म-स्वर्ग (ऊपरके अन्तिम तीन लोक) ज्योंका त्यों बना रहता है और यह सब चमत्कार श्री भुवनेश्वरी देखा करती हैं; क्योंकि उन्हींकी लीला-विस्तारका यह सब वैभव है।

देश और कालके साथ इतिहासका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इतिहास रचने वाले हमारे पूर्वज महर्षियोंने देश और कालका कितना सूक्ष्म विचार किया है, यह बात इस विवेचनसे ज्ञात हो सकती है। उन्होंने जो रीति चलाई, तदनुसार आर्यगण देश और कालको सदा अपनी दृष्टिके सामने रखते आये हैं और अब तक प्रतिदिनके धर्म कार्यमें संकल्पके समय उनका उल्लेख करते हैं। परमात्मा और उनकी प्रकृतिके रूपमें देश और कालका निरन्तर ध्यान करते रहनेसे उनका (परमात्माका) साथ सदा बना रहता है और मनुष्यका सर्वविध मङ्गल होता है। आजकल भी संकल्प बोला जाता है, परन्तु उसका स्वरूप विकृत हो गया है। अतः यहां महासंकल्पकी प्रतिलिपि धार्मिक सज्जनोंकी सहायताके लिए प्रकाशित कर देना उचित जान पड़ता है।

महा-सङ्कल्प

"ॐ तत्सत्। अस्य श्रीमन्महाभगवतः सच्चिदानन्द-स्वरूपस्य श्री आदिनारायणस्य अचिन्त्याऽप-रिमितशक्त्याश्रयमाणानां महाजलौघमध्ये परिभ्रममा-णानां अनेककोटिब्रह्माण्डानां एकतमे, अव्यक्तमहदहंकार पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाद्यावरणैरावृते, अस्मिन् महति ब्रह्मांड कटाहकरंडे, सकल जगद्धारकशक्ति कूर्मवराहान्तै-रावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकाष्ट-दिग्गजोपरिप्रतिष्ठितस्य अस्य अतलवितलसुतलतलातल रसातलमहातल पातालाख्य सप्तलोको-परिभागे, भूर्लोकस्वर्लोकमहर्लोकजनलोकतपोलोक सत्यलोकाख्य लोकषट्कस्य अधोभागे, भूर्लोक महर्लोकाय-मान फणिराजशेषसहस्रफणामंडलविधृते, दिग्दन्तिशुंडा-दंडस्तम्भिते, बहिरन्धतमसावृतेन अन्तः सूर्यप्रकाशितेन लोकालोकाचलेन वलयिते, लवणेक्षुसुरासर्पिदधिक्षीरस्वा-दूदकाख्यसदन समुद्र विराजिते, जम्बूप्लक्षशाककुश-क्रौञ्च शाल्मलपुष्कर द्वीपसहिते, भूमण्डले, तुहिनाचल-हेमकूटनिषधनीलश्वेतशृङ्गिगन्धमादन पारियात्राख्याष्ट-सीमाचलैर्विभक्ते, तन्मध्यवर्ति भारतकिम्पुरुषहरिवर्षे-लावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालाख्य नववर्ष शोभिते, जम्बुद्वीपे, इन्द्रद्वीपकशेरुमान् ताम्रपर्णी गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्यगान्धर्व वारुणार्यावर्तोपद्वीप सहिते, भारतवर्षे, नानावर्ण केसराचल शिखररत्नबीजा-श्रित भूसरोरुहकर्णिकायमानस्य मेरोर्दक्षिण दिग्भागे, दक्षिणोदधिहिमाचलयोर्मध्यप्रदेशे, निखिल वेदोदित कर्मफलासदन गङ्गासलिल वाहिनि, प्राचीन संन्यासि सम्पादित तपोराशि हुताशिनाशिनि, अन्तःस्थितात्यन्त सन्ताप सन्तति कृतान्त वेदान्त वृत्तांत श्रुति स्मृति पापश्रांत स्वान्त शांतिविधायिनि, वेदविन्मुनिगणचरण विहरणतपश्चरणामृत वर्षिणि, अस्मिन् पुण्ये भारतद्वीपे साम्यवर्ति कुरुक्षेत्रादि भूमध्यरेखायां अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची अवन्तिका द्वारावत्यादि मुक्ति क्षेत्र-वत्यां अस्यां कर्मभूमौ, भागीरथी विन्ध्याचलयोरुत्तर दिग्भागे श्रीशैले हेमकूट किष्किन्धा गरुडाचलव्यङ्कटाचल हस्तिगिरि प्रभृति-पुण्य शैलवति, सकल भूमंडल शिरोव-र्तिनि, गिरिजा गिरिजापति विराजिते आर्यावर्तैकदेशे, (अथवा आर्यावर्तान्तर्गत……देशे)……क्षेत्रे, (यहां अपने स्थानकी चतुः सीमाकी नदियों, पर्वतों और वनों का उच्चारण किया जाय)……पुण्य स्थाने, श्रीमदनेक-कोटि ब्रह्मांडघटनायाः सरोम विवरस्य विराड्रूपिणो भग-वतो महापुरुषस्य, शेषपर्यङ्कशायिनः श्री विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य, तन्नाभिस्थान - सरोरुहादुत्पन्नस्य, सकल वेदनिधेः जगत्स्रष्टुः परार्द्धद्वयजीविनो ब्रह्मणः प्रथम परा-

महाप्रलय हो जायगा। एक चौकड़ी युग समाप्त होने पर मृत्युलोकका सारा कूड़ा-करकट साफ कर दिया जाता है, केवल सत्ययुगके उपयोगी मसाला बच रहता है। मन्वन्तरके अन्तमें जल-प्लावन जैसा खण्ड-प्रलय होता है और पुराना बीज रह जाता है। कल्पान्तमें यहांकी सृष्टिका पूरा प्रलय हो जाता है और नवीन सृष्टि होती है। प्रलयोंका परिवर्तन (सृष्टि स्थिति लय-क्रिया) ब्रह्मांडके त्रिलोक और महर्लोकमें हुआ करता है। युगोंका प्रभाव भी त्रिलोकमें ही पड़ता है। कल्पान्तमें भी ब्राह्म-स्वर्ग (ऊपरके अन्तिम तीन लोक) ज्योंका त्यों बना रहता है और यह सब चमत्कार श्री भुवनेश्वरी देखा करती हैं; क्योंकि उन्हींकी लीला-विस्तारका यह सब वैभव है।

देश और कालके साथ इतिहासका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इतिहास रचने वाले हमारे पूर्वज महर्षियोंने देश और कालका कितना सूक्ष्म विचार किया है, यह बात इस विवेचनसे ज्ञात हो सकती है। उन्होंने जो रीति चलाई, तदनुसार आर्यगण देश और कालको सदा अपनी दृष्टिके सामने रखते आये हैं और अब तक प्रतिदिनके धर्म कार्यमें संकल्पके समय उनका उल्लेख करते हैं। परमात्मा और उनकी प्रकृतिके रूपमें देश और कालका निरन्तर ध्यान करते रहनेसे उनका (परमात्माका) साथ सदा बना रहता है और मनुष्यका सर्वविध मङ्गल होता है। आजकल भी संकल्प बोला जाता है, परन्तु उसका स्वरूप विकृत हो गया है। अतः यहां महासंकल्पकी प्रतिलिपि धार्मिक सज्जनोंकी सहायताके लिए प्रकाशित कर देना उचित जान पड़ता है।

महा-सङ्कल्प

"ॐ तत्सत्। अस्य श्रीमन्महाभगवतः सच्चिदानन्द-स्वरूपस्य श्री आदिनारायणस्य अचिन्त्याऽप-रिमितशक्त्याश्रयमाणानां महाजलौघमध्ये परिभ्रममा-णानां अनेककोटिब्रह्माण्डानां एकतमे, अव्यक्तमहदहंकार पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाद्यावरणैरावृते, अस्मिन् महति ब्रह्मांड कटाहकरंडे, सकल जगदाधारकशक्ति कूर्मवराहान्तै-रावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकाष्ट-दिग्गजोपरिप्रतिष्ठितस्य अस्य अतलवितलसुतलतलातल रसातलमहातल पातालाख्य सप्तलोको-परिभागे, भूर्लोकस्वर्लोकमहर्लोकजनलोकतपोलोक सत्यलोकाख्य लोकषट्कस्य अधोभागे, भूर्लोक महर्लोकाय-मान फणिराजशेषसहस्रफणामंडलविधृते, दिग्दन्तिशुंडा-दंडस्तम्भिते, बहिरन्धतमसावृतेन अन्तः सूर्यप्रकाशितेन लोकालोकाचलेन वलयिते, लवणेक्षुसुरासर्पिदधिक्षीरस्वा-दूदकाख्यसदन समुद्र विराजिते, जम्बूप्लक्षशाककुश-क्रौञ्च शाल्मलपुष्कर द्वीपसहिते, भूमण्डले, तुहिनाचल-हेमकूटनिषधनीलश्वेतशृङ्गिगन्धमादन पारियात्राख्याष्ट-सीमाचलैर्विभक्ते, तन्मध्यवर्ति भारतकिम्पुरुषहरिवर्षे-लावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालाख्य नववर्ष शोभिते, जम्बुद्वीपे, इन्द्रद्वीपकशेरुमान् ताम्रपर्णो गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्यगान्धर्व वारुणार्यावर्तोपद्वीप सहिते, भारतवर्षे, नानावर्ण केसराचल शिखररत्नबीजा-ञ्चित भूसरोरुहकर्णिकायमानस्य मेरोर्दक्षिण दिग्भागे, दक्षिणोदधिहिमाचलयोर्मध्यप्रदेशे, निखिल वेदोदित कर्मफलासदन गङ्गासलिल वाहिनि, प्राचीन संन्यासि सम्पादित तपोराशि हुताशिनाशिनि, अन्तःस्थितात्यन्त सन्ताप सन्तति कृतान्त वेदान्त वृत्तांत श्रुति स्मृति पापश्रांत स्वान्त शांतिविधायिनि, वेदविन्मुनिगणचरण विहरणतपश्चरणामृत वर्षिणि, अस्मिन् पुण्ये भारतद्वीपे साम्यवर्ति कुरुक्षेत्रादि भूमध्यरेखायां अयोध्या, मथुरा, माया, काशी काञ्ची अवन्तिका द्वारावत्यादि मुक्ति क्षेत्र-वत्यां अस्यां कर्मभूमौ, भागीरथी विन्ध्याचलयोरुत्तर दिग्भागे श्रीशैले हेमकूट किष्किन्धा गरुडाचलव्यङ्कटाचल हस्तिगिरि प्रभृति-पुण्य शैलवति, सकल भूमंडल शिरोव-र्तिनि, गिरिजा गिरिजापति विराजिते आर्यावर्तैकदेशे, (अथवा आर्यावर्तान्तर्गत……देशे)……क्षेत्रे, (यहां अपने स्थानकी चतुः सीमाकी नदियों, पर्वतों और वनों का उच्चारण किया जाय)……पुण्य स्थाने, श्रीमदनेक-कोटि ब्रह्मांडघटनायाः सरोम विवरस्य विराड्रूपिणो भग-वतो महापुरुषस्य, शेषपर्यङ्कशायिनः श्री विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य, तन्नाभिस्थान - सरोरुहादुत्पन्नस्य, सकल वेदनिधेः जगत्स्रष्टुः परार्द्धद्वयजीविनो ब्रह्मणः प्रथम परा-

द्ध पञ्चाशदतीतायां द्वितीय परार्द्धे, श्री श्वेतवाराहकल्पे, प्रथम वर्षे, प्रथम मासे, प्रथम पक्षे, प्रथम दिवसे, उदयादि त्रयोदशघटिकासु अतीतासु, स्वायम्भुवस्वारोचिषोत्तमतामसरैवतचाक्षुषाख्येषु षट्सु मनुषु व्यतीतेषु, उपरितन घटिकाया सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे, सप्तविंशति महायुगेषु गतेषु अष्टाविंशतितमे महायुगे, पुरुहूत नामेन्द्र समये, कृतत्रेताद्वापरेषु गतेषु वर्तमाने कलियुगे, बौद्धावतारे, विक्रमशके, ……नाम संवत्सरे,……अयने,……ऋतौ,…मासे,…पक्षे,……तिथौ,…वासरे,……नक्षत्रे,…… योगे,……करणे,……राशिस्थिते सूर्ये,……राशिस्थितेचन्द्रे……, राशिस्थिते भौमे,………राशिस्थिते बुधे,…राशिस्थिते देवगुरौ,…राशिस्थिते शुक्रे,…राशिस्थिते शनौ,…राशिस्थिते राहौ,…राशिस्थिते केतौ, एवं ग्रहगुण विशेषण विशिष्टायां शुभ पुण्य तिथौ…लग्ने,………शर्मा (अथवा वर्मा, गुप्त दासः)……पुरुषार्थ सिद्ध्यर्थे……देवता प्रसादार्थे……कर्म करिष्ये।"

जिस मौलिकताके न रहनेसे किसी वस्तुका अस्तित्व ही नहीं रह सकता, उसको 'धर्म' कहते हैं। जैसे—यदि अग्निमें दाहकता न रहे; तो उसका अस्तित्व नहीं रह सकता। वह उसकी मौलिकता है, उसका धर्म है। इसी प्रकार मनुष्यमें यदि मनुष्यत्व न रहे, तो वह मनुष्य नहीं माना जायगा। मनुष्यमें मनुष्यताका धर्म होना आवश्यक है। धर्म केवल विचारात्मक वस्तु नहीं, किन्तु आचारात्मक है। इसीसे कहा है—"आचारः प्रथमोधर्मः" अथवा "आचार प्रभवो धर्मः"। आर्योंके सोने-जागने, उठने-बैठने, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, लिखने-बोलने, यहां तक कि जीने-मरनेमें भी धर्मका विचार रखा गया है,

'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।'

धर्मकी उपेक्षासे समाज नष्ट होता और उसकी रक्षासे चिरजीवी होता है। हमारे प्रत्येक कार्यके साथ धर्मका सम्बन्ध है और वही हमें चिरजीवी बनाये हुए है। इसे व्यवहारमें लाना हमारा कर्तव्य है। हमारे धर्माचारों का महत्व और रहस्य अब तक जगत्के नव-शिक्षित विद्वान् समझ नहीं सके हैं और उन्हींकी शिक्षासे प्रभावित होकर हमारे यहांके युवक भी धर्मकी उपेक्षा ही न करते, किन्तु धर्मकी हंसी उड़ाया करते हैं। यह प्रा… घात है। इससे बचनेके लिए उन्हें आचारात्मक धर्म… ओर दृष्टिपात करना चाहिये। उन्हींको सहायता पहुँचा… विचारसे पहले संकल्पका दिग्दर्शन कराया गया है। यदि इससे युवक समाज कुछ लाभ उठावे, तो इसी प्रकार आर्योंके अन्य धार्मिक सदाचारों पर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की जायगी।

अन्नका पूजन

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जञ्च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्।
(मनुस्मृति अ० २-५४-५५)

धर्माचार्य श्री मनुमहाराज मनुष्यको उपदेश देते हैं, कि वह प्रतिदिन भोजनका पूजन करे अर्थात् परमात्मासे प्रार्थना करे कि यह भोजन उसके शरीरकी रक्षा करे, उसका बल बढ़ावे और उसे स्वस्थ रखे। रूखा सूखा या स्वादिष्ट जैसा भी अन्न सामने आये, उसकी निन्दा न करते हुए उसे प्रेमसे खाये और उसे देखकर हर्षित हो तथा प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करे तथा प्रभुसे प्रार्थना करे कि ऐसा भोजन उसे सदा प्राप्त होता रहे।

मनु महाराज कहते हैं कि पूजन किया हुआ भोजन सदा बल और वीर्य प्रदान करता है तथा बिना पूजन किये हुए खाया हुआ अन्न बल और वीर्यका नाश करता है। अतः प्रत्येक पुरुषका कर्तव्य है कि वह सदा अन्नकी प्रशंसा करते हुए भोजन करे।

गीता-ज्ञान

लेखक :—
श्री डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल

गीता-ज्ञान मनुष्यके लिये है। मनुष्यके जीवनकी समस्याओंको सुलझानेकी सामग्री गीतामें है, यही इसके नित्य-मूल्यका कारण है। आज भी वह जीवनके निकटकी वस्तु है, इसीलिए उसमें रस है। जीवनसे परे किसी अनजान स्वर्गकी टोहमें गीताकारने अपना प्रयत्न नहीं किया। नित्य प्रति जीवनमें जो समस्याओंका जमघट है, जिसे संघर्ष कहा जाता है, उसे बुद्धिकी सहायतासे सुलझाकर निर्मल मन और स्पष्ट कर्मके द्वारा जीवन यात्रामें अग्रसर होना इसी लक्ष्यके साथ गीताकार बार-बार हर सिद्धांतका सूत्र मिलाते हैं। यही उनका अविचल केन्द्र है, जिस पर व्यक्तिको खड़ा करके वे विश्वके साथ समता प्राप्त कराना चाहते हैं। यह दृष्टिकोण मानवी बुद्धिको ग्राह्य है। हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति इसे अपने लिए अपनाकर उसके साथ तन्मय हो सकता है। गीता न योगीके लिये है, न संसार छोड़कर वैराग्य साधने वालोंके लिये है, न कर्मकाण्डमें रुचि रखने वालोंके लिये है और न नाम जपने वाले भक्तोंके लिये है, वह इन सबके लिये एवं इनसे भी अधिक उन सब मानवोंके लिये है, जो जीवनके मार्ग पर कहीं-न-कहीं चल रहे हैं। उनमेंसे प्रत्येकके जीवनकी समस्या को तय करनेके लिये प्रकृतिके दिये हुए साधनोंमें हमारे पास मन, शरीर, इंद्रियां और बुद्धि है। इनसे ठीक प्रकार काम लेकर मनुष्य अपनी मानवोचित महिमाको प्राप्त करता है और जीवनमें कठिनाइयों पर विजय पाता है। यह प्रश्न लगभग वैज्ञानिक स्वरूप रखता है और गीता उसके समाधानका वैज्ञानिक कर्म-शास्त्र है।

गीताकारका दृष्टिकोण स्पष्ट निश्चित और सरस ढंगसे व्यक्त किया गया है, उसमें काव्यका सौन्दर्य है। मानवी जीवनमें भी एक छिपा हुआ सौन्दर्य है, जिसे प्रकट करना जीवनकी कला है। गीताकारने इस साहित्यिक शैलीको भली प्रकार समझा था, अतएव उन्होंने 'यह करो, 'यह न करो' के उपदेशोंकी लड़ी गूंथनेके बजाय जीवनकी सरसतासे भरा हुआ काव्य ही प्रस्तुत कर दिया है। गीताको प्राचीन परिभाषामें अमृत तुल्य दूध कहा गया है। यह दूध ज्ञानकी उन बड़ी-बड़ी वेदोपनिषद्रूपी दुधारू गौओंसे दुहा गया था, जिन्होंने सैकड़ों सहस्रों वर्षों तक भारतीय ज्ञान-कान्तारमें स्वच्छन्द विचरण और पोषण प्राप्त किया था। इस देशमें जो तत्व चिन्तन हुआ, वह वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् दर्शन आदि ग्रन्थोंमें और लोकके मनमें भरा हुआ था। उसके एकत्र स्पष्ट कथनकी आवश्यकता थी, जिससे यह ज्ञात हो सके कि परिभाषाओंके घटाटोपके मूलमें सच्चा अर्थ क्या है। गीता इस प्रकारके स्पष्ट निश्चित कथनका सर्वोत्तम रूप है जहां तक पूर्ववर्त्ती साहित्यका सम्बन्ध है गीताका दृष्टिकोण समन्वय प्रधान है। दार्शनिक उखाड़-पछाड़ में गीताकारको कोई रुचि नहीं है। उनकी एक ही दृष्टि है—वे ज्ञानको व्यवहारके निकटतम लाकर उसे सरस और जीवन के लिये अधिक उपयोगी बनानाचाहते हैं। इन सबकी कुंजी मन है, जो मन अपने आपसे जूझ रहा है, उसकी शक्ति बिखरी हुई है वह अशान्त है, वह समाधान नहीं, एक समस्या है। अतएव गीताकी दृष्टिमें पहली आवश्यकता मनमें पड़ी हुई गांठोंको सुलझाना है। प्रत्येक व्यक्ति पहले अपने मनका संस्कार करे, स्वयं अपना मित्र बने, तब वह दूसरोंके लिये उपयोगी बन सकता है।

प्रत्येक व्यक्तिको प्रकृतिने इंद्रियां, शरीर और मन

ये साधन प्रदान किए हैं। इन्द्रियोंके विषयमें श्रीकृष्णका दृष्टि-कोण एक शब्दमें यह हैं कि उन्हें 'युक्त' बनाना चाहिए, अर्थात् उचित मध्यम वृत्तिके अनुसार चलाना चाहिए। न तो त्रिकालसंयमका कनटोप चढ़ानेसे इन्द्रियां वशमें आती हैं और न एक दम ढील छोड़ देनेसे ही। बुद्धने भी यही अनुभव किया था। ठीक आहार, ठीक विहार, ठीक सोना, ठीक जागना, कार्योंमें ठीक प्रवृत्ति इस मार्गसे मनुष्य इन्द्रियों और विषयोंके बीचकी कशमकशको बहुत अंशोंमें सुलझा कर मन बुद्धिके तनावको कम कर सकता है।

शरीरके विषयमें श्रीकृष्णका मत है कि शरीर एक क्षेत्र है, इस क्षेत्रका जो पेचीदा ठाठ है, उसे ठीक तरहसे पहिचानना, यह प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। जो इस क्षेत्रको अच्छी तरह जानता है, उसे क्षेत्रज्ञ कहा है। अन्तः-करणका साक्षी अपना आत्मा प्रत्येक क्षेत्रका क्षेत्रज्ञ है। जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके पारस्परिक सम्बन्ध, बलाबल और महत्वको जान लेता है और व्यवहारमें उससे काम लेता है, वही सच्चा क्षेत्रज्ञ है। शरीरकी क्षेत्र संज्ञा पुरानी वैदिक परिभाषा थी। कहा है----

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैती क्षेत्रविदानुशिष्टः
[ऋ० १०।३२।७]

'जो क्षेत्रको नहीं जानता वह जानने वालेसे पूछता है और उसकी सीखके अनुसार काम करता है।'

बुद्धने भी आध्यात्मिक अर्थोंके लिये खेत, खेती और किसानके रूपकको स्वीकार करके कई तरहसे उसे पल्लवित किया था।

किन्तु श्रीकृष्णका जो सबसे महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है, वह मनसे सम्बन्ध रखता है। मनको ठीक करनेके लिये उन्होंने जो युक्तियुक्त दृष्टिकोण बताया है, वही गीता-ज्ञानका जगमगाता हुआ हीरा है। मन सबसे मूल्य-वान् तत्व है, मन सबके भीतर बैठा हुआ अपूर्व यक्ष है। मनको मित्र बनानेसे काम चल सकता है। यदि मनके नाम बाकी निकलती रही तो हलके होकर जीवन-यात्रा करना कठिन है। बुद्धने भी सब कर्मोंके मूलमें मनको ही श्रेष्ठ कहा है—

मनो पुब्बंगमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुःखमन्वेति चक्कं व वहतो पदम्॥
[धम्मपद]

सब धर्म या अवस्थाएं पहले मनमें उत्पन्न होती हैं, उनमें मन ही मुख्य है, वे मनोमय हैं। यदि हम दुष्ट मनसे बोलते या काम करते हैं, तो दुःख पीछे-पीछे चलता है, जैसे बैलके पीछे पहिया।

मनकी ठीक स्थिति प्राप्त करनेके लिए क्या करना चाहिए? इस विषयमें श्रीकृष्णका अभिमत संक्षेपमें यह है कि मन इच्छाओंकी भूमि है, कोई ही मन ऐसा होगा जो कामनाओंकी लीलाका क्षेत्र न हो। कामनाओंको लेकर हम जब कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, तो मन पर एक बोझ रहता है। वैज्ञानिक शब्दोंमें कहें तो कह सकते हैं कि कामनासे भरा हुआ मन तनावकी स्थितिमें हो जाता है। यह तनाव हटना आवश्यक है। तनावके कारण मन की धारा कुटिल हो जाती है। तनाव मनकी ऋजुगति को डांवाडोल कर देता है या दायें-बायें झुका देता है। मनको ऐसी तनावकी स्थितिसे बचाना आवश्यक है। तभी हम कर्मको परिशुद्ध बना सकते हैं, नहीं तो कर्म पर स्वार्थकी छाया पड़ जाती है और कर्म बहका हुआ हो जाता है। यह तनावकी स्थिति किस कारणसे उत्पन्न होती है, इसका उत्तर यह है कि कर्म करते समय मन जब फल पर जाकर अटकता है, तब कर्म परिशुद्ध नहीं रह जाता। कर्म करनेकी इच्छा या कामना होना बुरा नहीं, वह तो स्वाभाविक और आवश्यक है, किन्तु कर्म-क्षेत्रसे बाहर जाकर जब हम उसके फलकी लालसा मनमें ले आते हैं, तब मन पर बोझ पड़ जाता है और भय शंका लोभ स्वार्थ आदि प्रवृत्तियां हमारे समस्त व्यक्तित्व को तनावसे भर देती हैं। फलके लिए लोलुप न होना यही कर्म करनेका सच्चा ढंग है, इसीका सच्चा नाम निष्काम कर्म है। कर्म का त्याग करना कर्मसंन्यास नहीं,

कर्मके फलकी आशासे ऊपर उठकर कर्म करना यही कर्म-सन्यास है और यही सच्चा कर्म-योग है। कोई कर्म प्रारंभ ही न करे तो, क्या वह इतनेसे ही बड़ा निष्कर्मी बन जायगा ?

न कर्मणामनारम्भान्नेष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।

कोई क्षण भर तो बिना कर्मके रह नहीं सकता। जनक आदि राजर्षियोंकी लम्बी परम्परामें जिन्हें हम आदर्श मानते हैं, सभीने तो कर्म किया, फिर कर्मसे भिझक क्यों ? इत्यादि अनेक काव्यमय प्रश्न पूछ कर हर एक पहलूसे श्रीकृष्णने मूल प्रश्नको झकझोरा है। जीवन है तो कर्म भी साथ जुड़ा है। कर्म त्यागा जाय तो यह लोक ही ठप हो जाय। इससे ज्ञात होता है कि कर्म तो शरीरधारीको करना ही पड़ेगा। जब कर्मके बिना छुटकारा नहीं तो बुद्धि-पूर्वक उसका महत्व और उसकी युक्तिका निर्णय किया जाना चाहिये। इस दृष्टिसे गीता संसारके समस्त धार्मिक ग्रन्थोंमें अकेली है, वह कर्म का शास्त्र है। प्राचीन या अर्वाचीन, चाहे जिस कसौटी से कसें, कर्मकी आवश्यकता माननी पड़ती है, फिर उसके करनेका युक्ति-युक्त ढंग जानना भी जीवनका आवश्यक और अनिवार्य प्रश्न बन जाता है। गीता/ इस प्रश्नका उत्तर है।

कर्म अनन्त है। एक समय ऐसा था, जब यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म मानते थे। अशोकने धर्मानुशासनको श्रेष्ठ कर्म कहा (एस हि सेस्टे कम्मे य धंमानुसासनम्)। कर्म के प्रकार युगधर्मके अनुसार परिवर्तनशील हैं। देश, काल और व्यक्ति, के अनुसार कर्म अनेक प्रकारके हो सकते हैं और रहेंगे, किन्तु उन सबकी सामान्य विशेषता है, फलकी आशाके साथ करने वालेका सम्बन्ध। फलका महत्व कर्ताकी दृष्टिमें जहां बढ़ा, वहीं कर्मके शुद्ध रूपको ग्रहण लग जाता है। इस दृष्टिसे श्रीकृष्णके निष्काम कर्म-योगका जीवनके लिए बहुत मूल्य है।

प्रश्न यह है कि क्या मनुष्यके लिए इस प्रकार का निष्काम कर्म सम्भव है ? जैसा हमने आरम्भमें ही कहा है गीता ज्ञान मनुष्यके लिए है, अतएव इस प्रश्नका सच्चा उत्तर यही है कि कर्म करते हुए भी कर्मके तनाव और बोझसे बचनेके लिए गीताकारने जो निष्काम कर्म या कर्मफलमें लिप्त न होने की युक्ति बताई है, वह भी मनुष्यके लिए सम्भव है। सब उसे प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः जीवनमें जो कर्म उज्वल हैं, जो कर्म गुणवान् हैं, जो कर्म भव्य हैं, वे इसी ऊंचे धरातलसे किये जाते हैं। कर्मोंका सौरभ उनके निष्काम गुणकी मात्रा पर ही निर्भर हैं।

दूसरा प्रश्न यह है कि जब कर्म निष्कारण बन जाता है, जब कर्म बिना फलकी आशाके किया जाता है तब समाज और विश्वके संस्थानके साथ मनुष्यकी क्या स्थिति होती है ? किस कारणसे ऐसे व्यक्तिके कर्ममें बड़प्पन आ जाता है ? इस प्रश्नका जो उत्तर गीतामें दिया है वह गीताज्ञानका खिला हुआ पुष्प है। गीतामें कई प्रकारकी और काव्यात्मक शैलीसे इसे समझाया गया है। जब मनुष्य फलकी इच्छासे ऊपर उठकर अपने आपको तनावसे मुक्त कर लेता है, तो वह प्रकृतिके ही विराट संस्थानका अंग बन जाता है। प्रकृति मनुष्यसे बलवान् है, वह जगत्की प्रेरक शक्ति है, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, शान्ति-क्षोभ, प्रकृति ही इनकी नियामक है। प्रकृतिकी स्थिति ब्राह्मी स्थिति है, राग और द्वेष, हानि और लाभ, लोभ और त्याग,के प्रभावोंसे प्रकृति ऊपर है। मनुष्यको भी उसी ब्राह्मी स्थितिके आदर्शके अनुसार अपने आपको ढालना होगा। भारी दुःख हो या सुख हो, दोनों अवस्थाओंमें जो समता रख सकता है, वह ब्राह्मी स्थितिके निकट है, उसे स्थित-प्रज्ञ कहते हैं।

स्थितप्रज्ञ ही गीताकारका आदर्श व्यक्ति है। ऐसे व्यक्ति हर एक युगके लिए उपयोगी और आवश्यक हैं। प्रत्येक समाज और जनसमुदाय उन्हें चाहता है। जिस क्षेत्रमें ऐसा व्यक्ति काम करता है, उसे ही उलझनोंसे रहित बनाता है। प्रत्येक संस्कृति, धर्म और दर्शनमें युग युगसे जिस प्रकारके आदर्श पुरुषकी कल्पना की गई है, उस तरह का आदर्श गीताके स्थितप्रज्ञ व्यक्तिके गुणोंमें बहुत कुछ चरितार्थ हुआ है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति मानवमात्रके नैतिक आदर्शकी पूर्ति है। हमारे अपने युगमें गीताकी जो प्रधान

व्याख्याएं हुई हैं, उनमें लोकमान्य तिलकने तो निष्काम कर्मयोगीको गीताके मथित अर्थके रूपमें समझानेका प्रयत्न किया था एवं महात्मा गांधीने स्थितप्रज्ञके रूपमें गीताके सारांशको समझानेका प्रयत्न किया। दोनों ही अर्थ गीताकारको मान्य हैं और वे एक दूसरेके पूरक हैं। लोकके लिए गीताका उपयोग है। गीताकारकी दृष्टिमें लोकका बहुत महत्त्व है। वेदव्यासके शब्दोंमें श्रीकृष्णको "लोक विधान-वित्" कहा जाय तो ठीक होगा। लोकके विषयमें श्रीकृष्णका बहुत ही सुलझा हुआ, और नवीन युगका सा दृष्टिकोण है— लोक-व्यवहारके लिए कर्म करना आवश्यक है। मैं स्वयं इसी दृष्टिसे कर्म करता हूँ। कर्मसे भागकर, जीवनके कर्त्तव्योंसे मुंह मोड़कर अपनी परिस्थितियोंसे अलग शान्ति ढूंढना निरर्थक है। वैसी शान्ति यहां है ही नहीं, वह मृगमरीचिका है। संघर्षमें कर्तव्य-पालनसे जो समस्थिति मिलेगी, वह सच्ची शान्तिकी स्थिति होगी। हम यह मानते हैं कि लोकमें सभी कुछ अच्छा नहीं, यहां गुण हैं तो दोष भी हैं। हमें लोकके प्रति सहिष्णु बनना होगा। यदि यहां सब कुछ हमारी इच्छाके अनुकूल नहीं, तो खीझकर लोकका परित्याग करना अनुचित है। वस्तुतः जैसा कि श्रीगोस्वामीजीने कहा है—

जड़ चेतन गुणदोष मय विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार॥

श्रीकृष्णने जगत्के सम्बन्धमें वैदिकदृष्टिकोणको ही जो पुराना दार्शनिक मत था, स्वीकार किया है— यह संसार त्रिगुणात्मक है। सत्त्व रज, और तम इन तीन गुणोंसे इसका प्रत्येक अंश नियंत्रित है। सत् असत्के मेलसे विश्व बना है। जगत्की रचनाके भीतर ही उसकी त्रिगुणमयी विषमताका ज्ञान भी हमें होता है। संसारकी इस प्रकार सरल सुबोध व्याख्या सांख्य-शास्त्रकी पुरानी विशेषता थी। वस्तुतः सांख्य शब्द गिनती परक संख्या शब्दसे न होकर ज्ञान-परक संख्या शब्दसे बना था। त्रिगुणात्मक जगत्का ज्ञान ही सच्चा चक्षु है। 'चक्ष्' धातुके स्थान पर 'ख्या' आदेश करके संख्या और उससे सांख्य शब्दकी सिद्धि ऐतिहासिक सत्यके अधिक निकट जान पड़ती है। महाभारतमें सांख्य ही प्रमुख दार्श कोण है किन्तु सांख्यकी परम्परा आरम्भसे ही साथ ले चली थी। इस कारणसे यद्यपि सांख्यके दृष्टिकोणको गीतामें स्वीकार किया गया, किन्तु प्रति उसके दृष्टिकोणको गीताकार स्वीकार न क इस विषयमें गीताकार ने एक नया और उच्चत कोण प्रस्तुत किया और वह कर्म-योगका मार्ग था। कई स्थानों पर कर्मयोगको केवल योग ही क है—

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽप्यधिको
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जु

इस श्लोकमें चार तरहके मार्गोंका उल्लेख है—

१. ज्ञान अर्थात् सांख्य, २. तप अर्थात् उग्र साधना, ३. कर्म अर्थात् वैदिक कर्मकाण्ड और अर्थात् कर्मफलका संन्यास या निष्काम कर्म योग।

ऐतिहासिक दृष्टिसे हम जानते हैं कि पहले मार्ग प्राचीन धार्मिक जगत्में प्रचलित थे। कठि श्चर्यासे सिद्धि प्राप्त करनेके पीछे बुद्धने भी बहुत खाये थे। उस कालके इतिहासमें बड़े-बड़े विहंगम साधनोंका उल्लेख मिलता है। ज्ञानवादी भिक्षु या प्रसिद्ध ही हैं। यज्ञों पर आश्रित वैदिक कर्मकांडके जहां एक ओर विस्तृत ब्राह्मण और श्रौत साहित्य उ है, वहां स्वयं कृष्णने भोग, ऐश्वर्य और स्वर्गके लिए जाने वाले कर्मकाण्डोंका उल्लेख किया है। वाणीकी यही उस समय सजी हुई फुलवाड़ी (पु वाक्) थी। कृष्णने इन तीनों मार्गोंसे ऊपर निष्काम योगको श्रेष्ठ कहा है। किन्तु उनका मौलिक दृ समन्वय प्रधान था, दूसरे मतके केवल निराकरणमें रुचि न थी। सांख्य और वेद इन दोनोंकी आलो ऊंचे स्तरसे करते हैं।

श्रीकृष्णने कहा कि सांख्यके त्रिगुणात्मक दृष्टि और निष्काम कर्मयोगके दृष्टिकोणको जो पृथक् या भि समझते हैं, उनका दृष्टिकोण बच्चोंका है, बुद्धिमा नहीं। बाल-बुद्धि व्यक्तिको भेदमें कुतूहल होता है, पंडित भेदके मूलमें छिपी हुई एकताको देखता

ष्याचार या बाहरी ढोंगको छोड़कर उचित ढंगसे यदि ांख्य और योग इन दो में से एक भी पालन किया ाय, तो दोनोंका फल मिलता है—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥

वेदके विषयमें भी गीताकारने स्थान स्थान पर समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखनेका प्रयत्न किया है—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः ।

सब वेदोंका अन्तर्यामी अर्थ ब्रह्म या ईश्वरका ज्ञान कराना ही है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेदके पुरुष सूक्तमें स्पष्ट एक ईश्वरके अनुभवका उल्लेख हुआ है— "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" (भूत और भविष्य सब ईश्वर ही है)। अथवा "वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्" स्पष्टरूपसे वेदोंके सारभूत अध्यात्म पुरुषका वर्णन करता है। वेदके विषयमें यह उच्चतर दृष्टिकोण यास्कके समयमें भी पल्लवित हो रहा था, जहां कहा गया है कि मंत्रोंके द्वारा एक आत्माका ही गुणगान किया जाता है—

एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते ।

इन्द्र, अग्नि आदि सब उसीके नाम हैं। वैदिक यज्ञोंके संबंधमें सजे हुए शब्दोंकी कृष्णने उपेक्षा की और यही उस युगकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी। उपनिषद् भी कह रहे थे—

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः ।

जबकि गीताकार ब्रह्मज्ञान, ब्राह्मी-स्थिति, स्थितप्रज्ञ अवस्थाको सच्चा सार मानते हैं, निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थोंमें हम पढ़ते हैं—"जो अर्थको नहीं जानता, केवल वेदके शब्द पर ध्यान देता है, वह भारवाही है।" उस समय भारतीय आध्यात्मज्ञान शब्दोंके जिस दलदलमें फंस रहा था, उससे श्रीकृष्णने उसे निकाला।

श्रीकृष्णने समन्वयात्मक दृष्टिकोणसे जिन कई प्रश्नोंका समाधान किया, उनमें देवताओं का प्रश्न भी एक था। बहु देवतावाद धर्मका लोकपक्ष है। लोकमें अनेक देवताओंकी पूजा और विश्वास प्रचलित है। लोकको उनमें भक्ति और प्रतीति होती है और सम्भवतः आगे भी रहेगी। अनेक देवोंमें न एक अच्छा है, न दूसरा बुरा। वे सभी ईश्वरकी विभूति हैं। यह विभूति शब्द पीछेसे पंचरात्र सम्प्रदायमें विविध अवतारोंके लिए पारिभाषिक ही बन गया था। गीताका विभूति-योग नामक दसवां अध्याय ठेठ लोकधर्म पर आश्रित है। भूत, प्रेत, यक्ष, नाग, वृक्ष, पीपल, पर्वत, नदी, समुद्र, मगर, मछली आदि जलके प्रतीक, सूर्य, चन्द्र, तारे इस प्रकारका एक बहुमुखी देवतावाद लोक-धर्मके रूपमें फैला हुआ था, जिसकी जड़ें भूमिके साथ सम्बन्धित थीं। इस धर्मके अस्तित्वका सबसे अच्छा प्रमाण सांची और भरहुतके स्तम्भों पर अंकित देवी-देवताओंमें मिलता है, जिनमें कितने ही यक्ष और नाग हैं। महाभारतके सभापर्वमें यक्ष नाग और नदी देवताओंकी लम्बी सूचियां मिलती हैं। बौद्धोंके आटानटीय सुत्तन्तमें भी कितने ही यक्षोंके नाम आते हैं, जिनकी लोकमें मान्यता थी। महामायूरी ग्रन्थमें भिन्न-भिन्न स्थानोंके यक्षोंकी सूचियां हैं। भारतीय पुरातत्व में मणिभद्र, वैश्रवण आदि यक्ष, दधिकर्ण एलापत्र आदि नाग, एवं नदी देवताओंकी मूर्तियां मिली हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि लोक-जीवनकी जो वास्तविक सचाई थी, उसके तत्वोंसे गीताके दसवें अध्यायकी रचना हुई। किन्तु उसमें गीताकारका समन्वय प्रधान दृष्टिकोण मुख्य है। वे कहते हैं कि इस बहुदेवतावादके भीतर ईश्वरके विराट् स्वरूपका दर्शन हमें करना चाहिये। अनेक विभूतियोंके रूपमें ईश्वर ही इस लोकमें व्याप्त हो रहा है। इस दृष्टिसे गीताके दशम अध्यायका ऐतिहासिक महत्व बढ़ जाता है। वस्तुतः इस दृष्टिकोणको स्वीकृत और विकसित करके भागवतोंने धार्मिक समन्वयकी दिशामें इस देशमें बड़ा पग उठाया। धीरे-धीरे सभी सम्प्रदायोंको यह मत मान लेना पड़ा। ऐतिहासिक कशमकश के भीतरसे होता हुआ यह दृष्टिकोण धर्मके विषयमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही बन गया।

गीतामें जो जीवनके प्रति नीतिमत्ता और बुद्धिपूर्वक व्यवहारका दृष्टिकोण है, उसकी कुछ गूंज लोकसाहित्यमें भी मिलती है। यह सर्व विदित है कि गीता का उपदेश कुरुक्षेत्रमें हुआ। कुरुजनपदकी एक पुरानी कहानी 'कुरुधम्म-जातक' के नामसे पाली जातकोंके संग्रहमें बची रह गयी है। (जातक संग्रह भाग ३)। उस

कहानीका ठाठ कुछ अपूर्व है। उसमें राजासे लेकर रंक तक लोक जीवन के ११ प्रतिनिधि व्यक्ति लिये गये हैं। वे अपने केन्द्रमें रहते हुए कठिन और सूक्ष्म शीलधर्म पालनेका आदर्श अपने सामने रखते हैं। उनका मुख्य दृष्टिकोण यह है कि शील या गुणोंका बाह्य रूपमें पालन अधिक महत्वका नहीं, मनका भाव विशुद्ध होना चाहिये। यदि मनका भाव बिगड़ा हुआ है, तो धर्म या शील आडम्बरमात्र है। ये ११ व्यक्ति और इनके धर्म इस प्रकार हैं—

१. राजा	अहिंसा
२. राजमाता	समत्व
३. राजमहिषी	ब्रह्मचर्य
४. उपराजा	स्वामिधर्म
५. पुरोहित	अलोभ
६. रज्जुग्राहक	परदुःख निवृत्ति
७. सारथी	पशुओं पर दया-भाव
८. श्रेष्ठी	परद्रव्यके विषयमें सूक्ष्म विवेक
९. द्रोणमापक महामात्य	प्रजानुकम्पा
१०. द्वारपाल	निष्ठुरवाक्‌का परित्याग
११. वेश्या	कर्त्तव्यसे उऋण होना

यह जातक ११ कहानियोंका संग्रह है; जो सब समान दृष्टिकोणकी परिचायक है। जातककी भूमिकामें कहा गया है कि बुद्धके जन्मसे पहले ही पुराने पंडितोंने स्त्री सहित घरमें रहते हुए अल्पमात्र भी शीलके अतिक्रमण करनेमें हिचकिचाहट प्रकट की थी। यह भिक्षुधर्मके मुकाबलेमें गृहस्थ-धर्मका आदर्श था, जो कुरुजनपदके साथ विशेष रूपसे सम्बन्धित दिखाया गया है। इन दृष्टान्तोंका मर्म समझनेके लिए एक दृष्टान्त पर्याप्त होगा—

कलिंगके ब्राह्मण अपने देशमें वर्षा न होनेके कारण कुरु-जनपदमें शीलका आदर्श ग्रहण करनेके लिए भेजे गये। उन्होंने जपदके श्रेष्ठीके पास पहुँच कर धर्मकी याचना की। वह भी एक दिन, जब धानकी बाली निकल आई थी, अपने धानके खेतमें पहुँचा। देखकर उसने सोचा कि धानको बंधवाऊंगा और धानके पूंजे बंधवा कर मयानीके खम्बेके पास रखवा दिये। ... ध्यान आया कि इस खेतमेंसे मुझे राजाका हिस्सा ... था, बिना लगान दिए गए खेतमेंसे ही मैंने धान ले... मैं कुरुधर्मका पालन करता हूँ, वह भंग हो गया ... उसने यह बात सुना कर कहा—

'हे ब्राह्मणों! इस कारण मेरे मनमें कुरुधर्मके ... सन्देह है, इसलिए मैं उसे आपको सिखानेके योग्य ... हूँ। ब्राह्मणोंने कहा—"आपकी चोरीकी नियत नहीं ... बिना नियतके चोरीका दोष घोषित नहीं किया ... सकता। कुछ न करने पर भी जब आप इस ... सन्देह करते हैं, तब आप किसीकी चीज कैसे ले ... हैं? ब्राह्मणोंने उससे शील ग्रहण कर सोनेकी पट्टी ... लिख लिया। इस जातकमें कुरुधर्मके विषयमें तीन ... विशेष रूपसे ज्ञात होती हैं। प्रथम यह कि कुरुधर्म ... जनपदका धर्म था। राजा ऋषि मुनि या केवल भि... के लिए ही वह मार्ग न था। वेश्या व नौकर-चा... सेठ, मुनीम सभी इसका पालन कर सकते थे। ... गीता के—

'स्त्रियो वेश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम्' ... के अति निकट है।

दूसरी बात यह है कि कुरु-धर्म गृहस्थ-जीवनका ... था। घरमें रहते हुए शील धर्मका पालन सबके ... करना सम्भव है और प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य धर्म ... ही इस धर्मके पालनका विषय बना सकता है।

तीसरी बात यह है कि कुरुधर्मका सम्बन्ध स्वर्ग ... से न होकर सीधे-साधे नीति प्रधान जीवन-मार्गसे ... ईमानदारीसे भरा हुआ जीवन ही इसकी विशेषता है।

इस कुरुधर्म या गृहपतियोंके आदर्शके लिए ... सम्भवतः लोकमें 'कुरुगार्हपत' यह सार्थक शब्द प्रचलि... हो गया था, जिसका उल्लेख पाणिनिने [लगभग ५०... ई० पू०] अपनी अष्टाध्यायीमें दिया है। ज्ञात हो... है, कर्म योगका कुरुधर्म आदर्श ही कुरु देशमें कहे जा... वाले गीताधर्मके रूपमें प्रकट हुआ था। भिक्षुधर्मसे पृथ... यह गृहस्थोंका जीवन मार्ग था। एक लोक कहानी...

देवसमाजकी सभ्यता और हमारा अनुभव

[लेखकः — श्री १०८ आचार्य अमृतवाग्भवजी महाराज]

[श्रद्धेय श्री १०८ आचार्यचरणोंका यह लेख आजसे पन्द्रह वर्ष पूर्व 'मारवाड़ी-ब्राह्मण' 'हिन्दीमिलाप' आदि हिन्दीके कुछ पत्रोंमें 'एक भुक्तभोगी अनुभवी' के नामसे प्रकाशित हुआ था। सोलनकी रमणीयता और पर्वतीय-प्रकृति-नीरीक्षणका सजीव चित्र भी इस लेखमें विद्यमान है, अतः 'श्रीस्वाध्याय' के पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ हम यह लेख ता० २२ अगस्त सन् १९३६ ई० के साप्ताहिक 'मारवाड़ी-ब्राह्मण' पत्रसे यहां अविकल रूपमें उद्धृत कर रहे हैं।

— सम्पादक]

श्रीमान् सम्पादकजी ! जय शङ्कर ।

सम्पादकजी ! लोग समझ चुके हैं और बहुतसे समझने लग रहे हैं कि 'सनातनधर्म' 'सड़ातन' हो गया है क्योंकि इसके ठेकेदार ही पहले 'सड़ातन' हो गये हैं। इसलिए कई नये-नये मत ढाल लिए हैं। इस यन्त्रयुगमें यन्त्रोंकी क्या कमी ? हां, एक बात अवश्य ही ध्यान देने योग्य है। धर्मोंके ढालनेके यन्त्र और सब देशोंकी अपेक्षया भारतमें अधिक सस्ते मिलते हैं। सनातनधर्म 'सड़ातन' हो गया है, उसकी सभ्यता सड़ातनी हो गई। अतः अब बहुत आवश्यकता हुई कि एक ऐसा धर्म ढाला जाए, जिसकी तरुणी सभ्यता सड़ातनी न हो, किन्तु नूतन-तनी, नवेली, छबेली हो। अन्यथा वह लोक-रञ्जनी न हो सकेगी। उद्देश्य यह कि समस्त संसारके लोग इसीके चंगुलमें रह कर अपने आपको देव बनाएं। क्योंकि मानव समाज फिर भी कभी-न-कभी सड़ातनी हो ही जाएगा। बस यन्त्र तो तैयार ही था, पंजाबमें ऐसा धर्म ढाला गया। उसका नामकरणसंस्कार हुआ। यह उसके पिता 'देव स्वामी' ने किया 'एकादशेऽहनि पिता नाम कुर्यात्' के अनुसार 'देव-समाज' यह अन्वर्थ नाम रखा गया। समाजके विधाता देव स्वामीके विषयमें हमें यहां कुछ नहीं लिखना है। हां, अलबत्ता उनकी नूतनतनी दैवी सभ्यताका एक अनुभूत नमूना पाठकोंको भेंट करना है—

ग्रीष्म ऋतुमें भारत-सरकारकी भांति धर्म-सरकारें भी अपने-अपने प्रधान कार्यालय (हैड आफिस) उत्तुङ्ग रमणीय हिमालयके शिखरों पर ले जाया करती हैं। इसमें कारण वह सड़ातनो तपस्या नहीं, किन्तु नूतनतनी मनोमोहिनी तपस्या है। अबकी बार अपने राम भी सोलन (शिमला) पहुँचे थे और वहां श्रीमार्तण्ड ज्योतिष कार्यालयके मैनेजर श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिः शास्त्रीजीके पास ठहरे थे।

अहा हा ! 'सोलन' ऐसा रमणीय जहां रातमें बिजलीके दीप छोटे-छोटे पर्वत शिखरों परसे सुन्दर-सुन्दर हर्म्यों परसे और प्रच्छाय उन्नत वृक्षोंके अन्त-रालोंमेंसे मानव समाजकी ओर इस तरह देखते हैं, मानो मालूम होता है कि सोलनकी सुरमणीयता देखनेके लिए उत्सुक महाराज देवेन्द्रने अपनी हजारों आंखोंको निर्नि-मेष कर रखा है। दिनको यहां मेघमण्डली प्रायः प्रति

रूपमें गीताके दृष्टिकोणकी यह प्रतिध्वनि कम आश्चर्य-कारक नहीं।

गीता भारतीय जीवनके साथ घनिष्ठ रूपसे सम्ब-न्धित रही है। हमारी उदयोन्मुखी राष्ट्रीयताके निर्माण में भी गीताके दृष्टिकोणसे सहायता मिली है। गीता ज्ञानने प्रेरक शक्तिके रूपमें राष्ट्रका मार्ग-दर्शन किया है। यह इस शास्त्रकी पर्याप्त प्रशंसा है कि अर्वाचीन जीवन के लिये भी इसकी उपयोगितामें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई।



दिन ही पर्वत शिखरों पर सोलनकी रमणीयता देखनेके लिए डटी ही रहती है और मानव सभ्यताको प्रतिक्षण नूतनताका पाठ पढ़ानेके लिए ही खुद भी प्रतिक्षण नूतन वेष धारण करती रहती है। क्योंकि दैवी प्रकृतिसे उसने यही पाठ पढ़ा है।

इसकी (मेघ मण्डलीकी) सरस सहायतासे पर्वत मण्डलके हृदयमें भी छोटी-बड़ी सब नाड़ियोंसे सरसता की बाढ़ उमड़ी रहती है। चारों तरफ श्याम तृणाङ्कुर क्या है, वे तो पर्वत मण्डलके शरीरमें रोम-हर्षकी शोभा बनाए रखते हैं।

सभी ओर सरसता दृष्टिमें आती हैं और रसिकजन भी इस दृश्यका आनन्द खूब ही उठाते रहते हैं। अस्तु, एक दिनकी बात—ऐसे ही सुन्दर समयमें हम सैर करनेके लिए निकले थे। आज मेघ-मंडलीने अपना जाड़ा छोड़ दिया था, तथा कृष्णवर्ण त्याग कर श्वेतद्वीप वासिनी गौराङ्गरमणीकी तरह गौरवर्ण धारण किया था। कपोल और ओष्ठ सन्ध्यारुणसे आरक्त किये थे। सायं संध्याको भी अपने साथ विहार करनेके लिए आज बुलाया था। वाह! वाह! सुषमा तो स्वयं ही इनके साथ २ हो ली। हम भी इनकी रमणीयता देखनेके लिए बाजारसे होकर कालका-शिमला रोड़से दोहरी दिवाल की तरफ चल पड़े। हमने वह नितान्त रमणीयता देखकर ज्योतिषीजीसे (जो कि हमारे साथ सैरके लिए चले थे) कहा—'भाई, आज क्या माजरा है?' ज्यो०—'क्यों क्या है?' हम—'यह अनुपम रमणीयता आज तो मालुम हो रहा है कि यहां देव मण्डली ही विहार करनेके लिए आई है।' इतनेमें ज्योतिषीजीकी दृष्टि सड़ककी बाईं तरफके एक साइनबोर्ड पर पड़ी। वहां पर लिखा था—'पर्वताश्रम हेड-आफिस देव समाज।'' पढ़ते ही ज्यतिषीजीने कहा—'क्यों जी! आप देवसमाजसे परिचित है?' हम—'नहीं।'

ज्यो०—''चलिए आश्रम तो कम-से-कम देख आएंगे। शायद यहां पुस्तकालय भी होगा।'' हम तो समझ रहे थे कि सचमुच आश्रम ही होगा, और प्राचीन वसिष्ठादि महर्षियोंकी प्रणाली पर ही होगा। पर साथ ही साथ हेड आफिसका बोर्ड पढ़नेसे इतना अनु[illegible] तो हमें हो ही चुका था कि एक दो कमरे कार्यालयके होंगे। बाकी कहीं विद्यार्थी अध्ययन करते होंगे। क[illegible] वीतराग नैष्ठिक ब्रह्मचारी योगाभ्यास करते होंगे। क[illegible] सन्यासी अध्यात्म-चिन्तनमें निमग्न होंगे। पुस्तकाल[illegible] बैठे ब्रह्मचारी पुस्तकें पढ़ते होंगे। अतिथिशालामें अति[illegible] शोभित होते होंगे, आदि आदि। ज्योतिषीजीने ह[illegible] कहा—''क्या आप इनके सिद्धान्तोंसे परिचित हैं?'' हम—'नहीं।'

ज्यो०—'चलिए हम भी देवसमाजका अध्ययन करें और यदि अच्छा लगा तो 'देवसामाजी' हो जाएंगे।' हम—''अगर यहीं कोई कमरा मिल जाए तो मैं य[illegible] आसन जमाऊंगा, क्योंकि यह स्थान शहरसे एक[illegible] बाहर है, साथ जंगल भी है। साथ वायुमण्डल शुद्ध [illegible] होगा। और स्थान भी बड़ा सुन्दर ही होगा।' इ[illegible] तरह कई बातें करते हुए रास्ता चल रहे थे।

साइनबोर्ड जहां लगा है, वहींसे आश्रमका मा[illegible] ऊपरकी ओर चढ़ता है। रास्ता जहांसे प्रारम्भ होता है वहां कोई दर्वाजा नहीं है और न ऐसा कोई सूचना-प[illegible] ही है, जिससे मालूम हो कि यहां ऊपर चढ़नेके लि[illegible] आज्ञा लेनी पड़ती है। और न तो वहां कोई कर्मचा[illegible] ही था, जिससे पूछा जाय, अस्तु, मार्ग सार्वजनिक जै[illegible] है। यद्यपि बहुत चौड़ा नहीं है। हमारे साथ ज्योतिषी[illegible] की लड़की कु० जयमङ्गला (जो कि ५॥ वर्षकी है) [illegible] थी। पहाड़ी चढ़ाई थी, इस कारण तथा हवाखोरी अ[illegible] प्रकृति निरीक्षण करने के लिये ही निकले थे, इसलि[illegible] भी मार्ग धीरे-धीरे चढ़ रहे थे। साथ साथ में पूर्वोक्त बा[illegible] भी कर रहे थे। मनमें कौतूहल और उत्कण्ठा थी [illegible] आज देवसमाजके साथ परिचय होगा, क्योंकि य[illegible] पहला ही प्रसंग था। अस्तु।

जब हम ऊपर शिखर पर पहुँचे तो एक संगम[illegible] मरी स्तूप दिखाई दिया और उसके पास ही एक प[illegible] मकान, इस मकान पर एक छोटा-सा झण्डा भी शोभित [illegible] रहा था। जिससे मालूम होता था कि यही इनका म[illegible] या मन्दिर है। था यह बन्द। हां, यहां तक रास्ते[illegible]

न कोई दरवाजा था, न बोर्ड था और न कोई मनुष्य मिला। हम जब इस स्तम्भ (स्तूप) के पास पहुँचे तो देखा कि वह स्तम्भ गोल चिकना और बड़ा ही सुन्दर बना हुआ है, उसका निचला हिस्सा चौकोर बनाया गया है, तथा तीन तरफ लेख खुदे हुए हैं। एक तरफ खाली है। हमने सोचा यहां कोई कर्मचारी दिखाई नहीं देता। हम इस बन्द मन्दिर को किस तरह देख सकेंगे। अस्तु जाने दो। आज इस स्तूपके लेखको पढ़ कर ही चलेंगे, बाकी फिर देखा जायेगा। लेख एक तरफ हिन्दीमें, दूसरी तरफ अंग्रेजी में, और तीसरी तरफ उर्दू में खुदे हैं। उसमें लिखा है—"यह स्तम्भ उसी स्थान पर बनाया गया है, जहां देवात्मा देव स्वामीजीके ऊपर सम्वत् १९७१ में एक भारतीय सम्राट् ने चार गोलियोंसे सांघातिक आक्रमण किया था, फिर भी स्वामीजी महाराज बाल-बाल बच गये थे।" हम लेख पढ़ चुके थे कि इतनेमें एक अर्धवृद्धा वहां आयी। हमने उसके वेश-भूषासे तथा उसके भावभङ्गी से समझ लिया कि यह इस जगहकी रहने वाली 'देव समाज' की सदस्या कोई देवी है। हां, उसकी आंखोंसे सहज ही प्रतीत हो सकता था कि इसने अपने कार्य-काल में कई मानवोंको देवसमाजमें प्रविष्ट कराया होगा। उसने हमसे पूछा—"आप कहांसे आये हैं? 'कहां ठहरे हैं? यहां कैसे आये?" हमने भी उसको समुचित उत्तर देकर सन्तुष्ट किया।

बाद हमने उससे कहा कि 'यहां तो लायब्रेरी भी होगी, वह भी हम देखना चाहते थे।' उस पर उस देवी ने कहा—'हां, यहां तो बहुत कुछ देखनेके लायक है, हमारे गुरुजी तो नीचे (कालका) की तरफ चले गये हैं। पर खैर, आप इधरसे यह रमणीय स्थान देख लें।' उस वहां कई मकान इधर-उधर बने हुए नजर आते थे। उस देवीने हमें यह भी बताया कि 'ये सब मकान हमारे आश्रम के ही हैं।' उसने यह भी कहा कि पीने का पानी निचले नलके से आता है और बरसाती पानी (जो कि यहां टीन के बड़े-बड़े कंडालों में भरा था) कपड़े धोने-जानेके काममें आता है। उससे और भी कई बातें हुईं। उस देवीने हमसे यह भी कहा कि—"यहां हमारे गुरुजी पहले हरएक मनुष्यके दस पाप काटते हैं, जब दसों पाप कटते हैं, तब कहीं वह गुरुजीके दरवाजेमें खड़ा होने लायक होता है। फिर भी उसको उस समय धर्म तो नहीं मिलता।" इसी तरह हम उस देवीसे बातें करते हुए, उस रमणीय पर्वत शिखर पर टहल रहे थे कि इतनेमें हमने देखा कि सामनेसे दो 'देव' आ रहे हैं। उनमें वेशसे एक त्यागी मालूम होते थे। इनकी दाढ़ी भी जरा बढ़ी चढ़ी थी। दूसरे त्यागी नहीं मालूम होते थे। दाढ़ी तो इनके भी थी, पर चढ़ी बढ़ी नहीं थी। अत्यागी देव बहुत ही शीघ्र गतिसे हमारे पास आकर कहने लगे कि—"यहां किसको पूछकर आगये? क्यों चुपचाप अन्दर घुस आये।" इस पर उस देवीने कहा कि 'ये उस स्तूपके शिलालेख पढ़ रहे थे और फिर स्थान देखनेको इधर आये। परन्तु वे देव सज्जन तमतमा कर उन्हीं प्रश्नों को करने लगे। उसपर हमने कहा—'हमने साइनबोर्ड पढ़ा, हमारी इच्छा हुई कि हम भी इस स्थानको देखें। इसलिए हम चले आये।' इस पर वे उसी तरह भौंकते हुए कहने लगे कि—"नीचेसे बिना पूछे हमारे मकानके अन्दर क्यों चले आये? आपको, यहां आनेके लिए किसने इजाजत दी?" 'हमने कहा, नीचेसे यहां तक कोई दरवाजा हमने नहीं देखा, फिर अन्दर जाना कैसे? और कोई कर्मचारी भी आपका यहां न मिला, जिससे हम लौट जाते या इजाजत मांग लेते और न तो कोई ऐसा सूचनापत्र आपने लगा रखा है कि जिससे सर्वसाधारणको पता चल सके कि यहां बिना आज्ञा लिए सड़क पर चलना या आश्रमको देखनेका इरादा करना अपराध है। परन्तु वे हमारी बात सुननेके लिए वज्रबधिर बन रहे थे और अलर्ककी तरह 'बिना आज्ञाके यहां क्यों आये?' यही लगातार भौंक रहे थे। ज्योतिषीजीने उनसे कहा—"आपने अपना आदमी क्यों न सड़क पर रखा?" पर इसका जवाब वही भौंकना मिला। आखिर हमें तो कोई मकान ही यहां रास्तेमें न मिला कि जिसके अन्दर हम घुसते। पर जवाब वह भौंकना मिला। आखिर हमने ज्योतिषीजीको कहा कि आप इनसे कुछ न कहिये, इनसे बात करना वृथा है, और फिर वहींसे हम लौट

पड़े। हमने यहाँ एक दृश्य दूसरे और भी देखा और दंग रह गये। शायद यह हमारी आँखोंका भ्रम हो या आजकी सभ्यतामें पलनेका दोष। ४०-४५ गजकी दूरी पर एक बेंच रखा था, उस पर एक देव बैठे थे और उनके पास ही एक पत्ता नहीं रक्खा था उसकी जैसी कोई वस्तु... स्थान नितान्त शान्त और अत्यन्त एकान्त। उसी बेंचके पास वे दोनों देव पहरा देते थे या विहार करते थे। हा! कलिकाल!! तू धन्य है और देवसमाज तू भी धन्य है। हम दौड़ कर कुछ दूर नीचे उतर आये, तब भी वे भौंक ही रहे थे।

प्रिय पाठक वृन्द!! यह है सूरतकी देवसमाजकी दैवी सभ्यता। जहाँ अभ्यागतोंका आदर भौंक कर किया जाता है। सम्भव है कि वे देवसमाजके सदस्य देव-देव साक्षात् देव होंगे। अगर ऐसा ही हो तो उनको तो ऐसा करना ही चाहिये। हम ही गलती पर हैं। मानव समाजकी सभ्यतासे देवसमाजकी सभ्यतामें यही विशेष सूक्ष्मता है।

सम्पादकजी! हमें तो यही मालूम हुआ कि यह 'देव आफिस' ऐसी दैवीसभ्यताके प्रचारके लिए यहाँ रखा गया है। अच्छा, अब आप पसन्द करें कि आप मानव समाजमें रहना पसन्द करते हैं, जहाँ—

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

(अर्थात् आसन, स्थान, जल और मीठी वाणी ये ४ चीजें तो सज्जनोंके यहाँ अवश्य मिलेंगी) ये मिलते हैं या देव समाजमें? जहाँ कुछ नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त भफरा (भौंकना) मिलता है। यह आपके ही ऊपर रखकर हम तो अब अपने डेरे पर चलते हैं, क्योंकि संध्या भी अपने घर पहुँच गई है।

विक्रम के नवरत्न

[लेखकः—श्री पं० रामदत्तजी ज्योतिर्विद्]

धन्वन्तरि क्षपणकामरसिंह शंकु-
वेतालभट्ट घटखर्पर कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

(१) धन्वन्तरि (२) क्षपणक (३) अमरसिंह (४) शंकु (५) वेताल भट्ट (६) घटखर्पर (७) कालिदास (८) वराहमिहिर (९) वररुचि, ये राजा विक्रमादित्यके सभाके नवरत्न थे।

(१) धन्वन्तरि—आयुर्वेदके प्रसिद्ध आचार्य तथा ग्रन्थकार थे। कई ग्रन्थ आपने आयुर्वेद पर लिखे हैं। भारत वर्षके वैद्य आज तक धन्वन्तरि जयन्ती मनाया करते हैं।

(२) क्षपणक—विक्रमकी सभाके जैन धर्मावलम्बी पण्डित थे। इनके बाल्यकालका नाम कुमुदचन्द्र था। बादमें सिद्धसेन दिवाकर कहे जाने लगे। आपने सब मिलाकर लगभग ३२ ग्रन्थोंकी रचना की। जिनमें २० ग्रन्थ अब तक उपलब्ध हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि क्षपणक बौद्ध थे। क्योंकि क्षपण बौद्ध लोगोंका आचार्यवाची शब्द है।

(३) अमरसिंह—यह 'अमरकोष'के निर्माता बौद्धधर्मावलम्बी विख्यात विद्वान् थे। 'स्वर्गवर्ग'में सब देवताओंसे पहले बुद्ध देवके 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो' नाम लिखे हैं। मंगलाचरण 'यस्य ज्ञान दया सिन्धो' इस श्लोकमें 'सांख्ये चामृताय च' लिखकर किया है। किसी देवी देवताकी आराधना नहीं की। कुछ लोगोंकी धारणा है कि वे जैन थे।

(४) शंकु---एक उच्च कोटिके पण्डित थे। कालिदासने विक्रमकी सभाके वर्णनमें

> शंक्वादि पण्डितवराःकवयस्त्वनेके
> ज्योतिर्विदः समभवश्च वराह पूर्वाः।

इस पद्यमें प्रधान पण्डितोंमें इनको मुख्य लिखा है। आयुर्वेद तथा ज्योतिषशास्त्रके भी ये ज्ञाता थे।

(५) वेताल भट्ट—इनका निवासस्थान कुसुमपुर, पटनामें था। ये बड़े तांत्रिक विद्वान् नीतिज्ञ थे। तंत्रका विख्यात ग्रन्थ 'रुद्रयमल' इन्हींका रचा हुआ बतलाते हैं। सम्राट विक्रमने पाटलीपुत्र पर जब विजय प्राप्त की तो यह भी उनके साथ पटनासे उज्जैन आये।

(६)घटकर्पर—यह उच्चश्रेणीके कवि थे। इनका रचा हुआ 'घटखर्पर' काव्य इस समय भी विद्यमान है। अन्य ग्रन्थ इनके नहीं मिलते।

(७) कालिदास---महाकवि कालिदासका नाम कौन नहीं जानता। यह मालवाके रहने वाले ब्राह्मण थे। कुमार सम्भव, मेघदूत, तथा रघुवंश, इन तीन प्रसिद्ध काव्योंके अतिरिक्त 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ज्योतिषका सर्वोत्तम मुहूर्त्त ग्रंथ भी इन्हींका रचा हुआ है। विक्रमके नवरत्नोंमें सबसे अधिक ख्याति कालिदास की है। जिस प्रकार कई विक्रम हुए, उसी प्रकार कई कालिदास भी हुए। यथा----

(१) कालिदास (वीर विक्रमादित्य कालीन आजसे २००८ वर्ष पूर्व)

(२) मातृगुप्ताचार्य उर्फ कालीदास (चन्द्रगुप्त-विक्रम कालीन आजसे १६०० वर्ष पूर्व)

(३) श्रुतसेन कालीदास [हर्ष-विक्रम कालीन १४०० वर्ष पूर्व]

(४) कुमारदास उर्फ कालीदास (भोज विक्रमादित्य कालीन १००० वर्ष पूर्व)

जिस प्रकार वीर विक्रमादित्यके पश्चात् विक्रमादित्य उपाधिधारी कई प्रतापी नरेश हो गये हैं। तदनुसार कई उपाधिधारी कालीदास उच्चकोटिके अनेक कवि भी हो गये। जिनके बनाये हुए, मालविकाग्निमित्र, ऋतु संहार, शकुन्तला, राक्षस-काव्य, श्रुत बोध काव्यादि अनेक ग्रंथ हैं। आदि विक्रम-कालीन महाकवि कालिदास रचित रघुवंश, मेघदूत, कुमार-संभव ही हैं, ऐसा ज्योतिर्विदाभरणसे सिद्ध है। महाकवि लिखते हैं कि तीन काव्योंमें पहिले मैंने रघुवंश बनाया, यथा---- 'काव्यत्रयं सुमति कृद्रघुवंश पूर्वम्' इत्यादि।

(८) वराहमिहिर----आवन्तिक देशमें उज्जयिनी नगरके कापित्थ नामक ग्रामके रहने वाले आदित्यदास ब्राह्मणके पुत्र थे। अपने पितासे बोध और सूर्यनारायणसे वर प्रसाद पाकर ऋषि प्रणीत प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थोंका अवलोकन करके, बृहज्जातक, लघु जातक, इन्होंने बनाये। जैसा कि बृहज्जातकके इस पद्यमें लिखा है।

> 'आदित्यदासतनयस्तदवाप्त बोधः,
> कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
> आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्,
> होरां वराहमिहिरो रुचिराञ्चकार॥'

वाराहीसंहिता तथा पञ्चसिद्धान्तिका इनके प्रख्यात ग्रन्थोंमें हैं। और भी इनके रचे हुए ग्रन्थ बतलाये जाते हैं। कई कालिदासोंकी भांति वराहमिहिर भी २।३ हो गये हो, ऐसा सम्भव है। भास्वतीकरण नैपालमें प्रसिद्ध हैं। उसीके अनुसार प्रायः वहां पञ्चाङ्ग बनते हैं। भास्वतीके निर्माता सतानन्द पण्डित ग्रन्थारम्भमें 'अथ प्रवक्ष्ये मिहिरोपदेशात् तत्सूर्यसिद्धान्त समंसमासात्' यह पद्य लिखकर वराहमिहिरके उपदेशसे भास्वतीकरण बनानेका उल्लेख करते हैं। जैनाचार्योंने भी वराहमिहिरकी कथा लिखी है। यह दन्तकथा कहां तक सत्य है सो कहा नहीं जाता। विक्रमकालीन वराहमिहिरसे इनका समय भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। कालिदस 'ज्योतिर्विदाभरण'के आरम्भमें वराहमिहिरादि आचार्योंके मतानुकूल अपने ग्रंथको बतलाते हैं। यथा---

> मत्वा वराहमिहिरादि मतैरनैकैः,
> ज्योतिर्विदाभरणमध्यन सम्मतार्हम्॥

(४) शंकु---एक उच्चकोटिके पण्डित थे। कालिदासने विक्रमकी सभाके वर्णनमें

> शंक्वादि पण्डितवराःकवयस्त्वनेके
> ज्योतिर्विदः सममवश्च वराह पूर्वाः।

इस पद्यमें प्रधान पण्डितोंमें इनको मुख्य लिखा है। आयुर्वेद तथा ज्योतिषशास्त्रके भी ये ज्ञाता थे।

(५) वेताल भट्ट—इनका निवासस्थान कुसुमपुर, पटनामें था। ये बड़े तांत्रिक विद्वान् नीतिज्ञ थे। तंत्रका विख्यात ग्रन्थ 'रुद्रयमल' इन्हींका रचा हुआ बतलाते हैं। सम्राट विक्रमने पाटलीपुत्र पर जब विजय प्राप्त की तो यह भी उनके साथ पटनासे उज्जैन आये।

(६)घटकर्पर—यह उच्चश्रेणीके कवि थे। इनका रचा हुआ 'घटखर्पर' काव्य इस समय भी विद्यमान है। अन्य ग्रन्थ इनके नहीं मिलते।

(७) कालिदास----महाकवि कालिदासका नाम कौन नहीं जानता। यह मालवाके रहने वाले ब्राह्मण थे। कुमार सम्भव, मेघदूत, तथा रघुवंश, इन तीन प्रसिद्ध काव्योंके अतिरिक्त 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ज्योतिषका सर्वोत्तम मुहूर्त्त ग्रंथ भी इन्हींका रचा हुआ है। विक्रमके नवरत्नोंमें सबसे अधिक ख्याति कालिदास की है। जिस प्रकार कई विक्रम हुए, उसी प्रकार कई कालिदास भी हुए। यथा----

(१) कालिदास (वीर विक्रमादित्य कालीन आजसे २००८ वर्ष पूर्व)

(२) मातृगुप्ताचार्य उर्फ कालीदास (चन्द्रगुप्त-विक्रम कालीन आजसे १६०० वर्ष पूर्व)

(३) श्रुतसेन कालीदास [हर्ष-विक्रम कालीन १४०० वर्ष पूर्व]

(४) कुमारदास उर्फ कालीदास (भोज विक्रमादित्य कालीन १००० वर्ष पूर्व)

जिस प्रकार वीर विक्रमादित्यके पश्चात् विक्रमादित्य उपाधिधारी कई प्रतापी नरेश हो गये हैं। तदनुसार कई उपाधिधारी कालीदास उच्चकोटिके अनेक कवि भी हो गये। जिनके बनाये हुए, मालविकाग्निमित्र, ऋतु संहार, शकुन्तला, राक्षस-काव्य, श्रुत बोध काव्यादि अनेक ग्रंथ हैं। आदि विक्रम-कालीन महाकवि कालिदास रचित रघुवंश, मेघदूत, कुमार-संभव ही हैं, ऐसा ज्योतिर्विदा-भरणसे सिद्ध है। महाकवि लिखते हैं कि तीन काव्योंमें पहिले मैंने रघुवंश बनाया, यथा---- 'काव्यत्रयं सुमति कृद्रघुवंश पूर्वम्' इत्यादि।

(८) वराहमिहिर----आवन्तिक देशमें उज्जयिनी नगरके कापित्थ नामक ग्रामके रहने वाले आदित्यदास ब्राह्मणके पुत्र थे। अपने पितासे बोध और सूर्यनारायणसे वर प्रसाद पाकर ऋषि प्रणीत प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थोंका अवलोकन करके, बृहज्जातक, लघु जातक, इन्होंने बनाये। जैसा कि बृहज्जातकके इस पद्यमें लिखा है।

> 'आदित्यदासतनयस्तदवाप्त बोधः,
> कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
> आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्,
> होरां वराहमिहिरो रुचिरांचकार॥'

वाराहीसंहिता तथा पञ्चसिद्धान्तिका इनके प्रख्यात ग्रन्थोंमें हैं। और भी इनके रचे हुए ग्रन्थ बतलाये जाते हैं। कई कालिदासोंकी भांति वराहमिहिर भी २।३ हो गये हो, ऐसा सम्भव है। भास्वतीकरण नैपालमें प्रसिद्ध हैं। उसीके अनुसार प्रायः वहां पञ्चाङ्ग बनते हैं। भास्वतीके निर्माता सतानन्द पण्डित ग्रन्थारम्भमें 'अथ प्रवक्ष्ये मिहिरोपदेशात् तत्सूर्यसिद्धान्त समंसमासात्' यह पद्य लिखकर वराहमिहिरके उपदेशसे भास्वतीकरण बनानेका उल्लेख करते हैं। जैनाचार्योंने भी वराहमिहिरकी कथा लिखी है। यह दन्तकथा कहां तक सत्य है सो कहा नहीं जाता। विक्रमकालीन वराहमिहिरसे इनका समय भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। कालिदस 'ज्योतिर्विदाभरण'के आरम्भमें बराहमिहिरादि आचार्योंके मतानुकूल अपने ग्रंथको बतलाते हैं। यथा---

> मत्वा वराहमिहिरादि मतैरनैकैः,
> ज्योतिर्विदाभरणमप्यन सम्मताहंम्॥

(६) वररुचि—विक्रमकी सभाके पण्डितोंमें वैयाकरणी विद्वान् थे। इनके पिताका नाम सोमदत्त था। कौशाम्बी नगरके निवासी थे। इन्होंने 'सुभाषितावली' तथा 'सारङ्गधर' नामक महाकाव्योंकी रचना की। नन्द राजके महामन्त्री, कात्यायन वररुचि इनसे भिन्न थे। अब प्रश्न यह उठता है कि विक्रमादित्य कब हुए और कौन थे? 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ग्रंथ उन्हींके समयमें कालिदासने बनाया। या उनके बाद कालिदासके नामसे किसी अन्य पण्डितने गढ़ दिया। इत्यादि।

यह बड़े दुःखका विषय है कि सम्राट् विक्रम जैसे प्रतापी और पराक्रमी नरेशके विषयमें भारतीय ऐतिहासिक विद्वानोंमें भी तीव्र मतभेद है। इसका कारण यह है कि यूरोपके अधिकांश विद्वान् ईसासे पूर्व होने वाले शकारि सम्राट् वीर विक्रमादित्यको कपोल कल्पित समझते हैं। कतिपय अंग्रेज इतिहासकारोंने गुप्तकालीन सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीयको असली विक्रमादित्य माना है। परन्तु यह बात सत्य नहीं सर्वथा भ्रमपूर्ण है। वीरविक्रम और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य भिन्न-भिन्न हैं। इनके कालमें लगभग चार सौ वर्षका अन्तर है। डाक्टर फ्लीट साहबका मत है कि मालवेमें जो सम्वत् प्रचलित था, उसे असलीकाल गणनाका रूप चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने अपनी विजयके बाद दिया। यूरोपके विद्वान् इतिहासकारोंने भारतके इतिहासकी गहराईमें प्रवेश करनेका कभी प्रयत्न नहीं किया। परन्तु इतिहासकी सचाईको कोई मिटा नहीं सकता। राज्य, धन, भवन, किले सब नष्ट हो जाते हैं। सम्वत् गणना नष्ट नहीं होती। अभी तक विक्रम सम्वत् विद्यमान है। यदि चन्द्रगुप्त द्वितीय अपना सम्वत् चलाते तो अपनी दिग्विजयकी तिथि और विजयके वर्षसे चलाते। चार सौ वर्ष पहिलेके प्रचलित सम्वत्में अपने नामकी मुहर लगाना समझमें नहीं आता। महात्मा गांधीका सम्वत् स्वराज्य प्राप्तिके समयसे या उनके स्वर्गवासके वर्षसे प्रारम्भ होगा। न कि लोकमान्य तिलक, या माननीय गोखले, महाराणा प्रतापके समयसे गांधी सम्वत् स्थापित होगा। युधिष्ठिर सम्वत् या शालिवाहनीय शकको गांधी सम्वत्की उपा[...] नहीं दी जायगी।

विक्रमकी कीर्त्ति आज भी भारतमें फैली हुई है। आबाल-वृद्ध वनिता उनके नामसे परिचित हैं। [...] कथा और किम्बदन्तियोंकी भी कमी नहीं। महाका[...]श्वर मन्दिरके समीप जो विशाल कोट विक्रमने बनवा[...] था, आज भी उस ऐतिहासिक गढ़का २४ खंभा दरवा[...] उज्जैनमें विद्यमान है। 'फरिश्ता' नामक फारसी इति[...]हासकार लिखता है कि विक्रमका वह किला १०० ग[...] ऊंची दीवारसे बना हुआ था। हर्षका विषय है कि २००० सम्वत्में यत्र-तत्र विक्रमद्विसहस्राब्दि महोत्सव मना[...] गये। और विक्रमकालीन इतिहासकी छान बीन और खोजके लिये संस्था भी बन चुकी है। ग्वालियर राज्य[...] ओरसे भी अन्वेषण हो रहा है। हिन्दी साहित्यके महारथी डाक्टर हेमचन्द्र जोशी तथा श्री जी० डी० जोशी[...] सम्राट् विक्रमके सम्बन्धमें पुस्तकें लिखकर अका[...] युक्तियों और ऐतिहासिक प्रमाणोंसे विदेशी इतिहा[...] कारोंके भ्रामक मतका निराकरण करके 'ज्योतिर्विदाभरणोक्त' विक्रमादित्यको सिद्ध कर दिया है।

अब रहा 'ज्योतिर्विदाभरण' कब बना और किसने बनाया? विक्रमसे ४००, ५००, हजार, डेड हजार वर्ष बाद कालिदासके नामसे ग्रंथ लिखकर विक्रमादित्यका गुणगान करने वाले ग्रन्थकारको क्या लाभ हुआ। अपना नाम छिपाकर रघुवंशके निर्माता कालिदासके नामसे 'ज्योतिर्विदाभरण' बनानेका उसका क्या प्रयोजन था। ज्योतिषके इस सर्वमान्य सर्वोत्तम मुहूर्त्त ग्रन्थको लिखकर अपना नाम उसने क्यों छिपाया। यह बात समझमें नहीं आती। कविरत्न पं० अखिलानन्द काव्य बनावें, भवभूति, या जगन्नाथ पंडितराजको ग्रन्थार लिखें, ऐसा सम्भव नहीं। विक्रमकी सभाके नवरत्न कल्पित करके—वराहमिहरको नवरत्न मालिकामें जबर्दस्ती पिरो देनेका भी कोई कारण नहीं दीखता 'ज्योतिर्विदाभरण' महा कवि कालिदासका ही बनाया हुआ है। और कालिदास विक्र[...]

एकादशी व्रतकी महत्ता

[लेखकः—राजगुरु ज्यौतिषालंकार श्री पं० तारादत्तजी राजज्यौतिषी]

घरमें प्रतिदिन झाड़ूसे सफाई करनेकी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार शरीररूप गृहमें भी एक पक्षमें सफाईकी आवश्यकता मुनियोंने निर्णीत की है। भोजन न करनेसे अग्नि दोषोंको पचाती है।

आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः पचति।
(भावप्रकाश)

इसलिए व्रतसे शरीर निर्मल होता है। शरीर निर्मल होनेसे मन भी निर्मल होता है। निर्मल मन ही धर्मकार्य और ईश्वरकी उपासनाके लिए योग्य होता है। लगातार काम करते रहनेसे शक्तियां प्रभावहीन हो जाती हैं। इसलिए प्रतिदिन पचन क्रियासे खिन्न जाठराग्निको पक्षमें एक दिन विश्राम देकर उसका पचन-सामर्थ्य रक्षित रखना भी योग्य है। जो पुरुष व्रत नहीं करते हैं, वे भोजन न मिलने पर व्याकुल हो जाते हैं। व्रत करने वाला पुरुष भूख सहन कर सकता है।

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

व्रतके दिन उचित समय पर धर्मशास्त्र और चिकित्सा शास्त्रके अनुसार योग्य सात्विक फलाहारादि सेवन करना चाहिए। निराहार व्रतके दूसरे दिन भी इसी प्रकार उचित भोजन करना चाहिए। व्रतके दिन इन्द्रियोंको रोक कर शुद्ध चित्तसे उपासना करनी चाहिए। कमसे कम एक पक्षमें एक दिन परमेश्वरको समर्पित करना आवश्यक समझकर मुनियोंने सर्वोपकारार्थ एकादशीव्रत नियत किया है। कुछ अन्वेषकोंका अनुसंधान है कि पौर्णमासी और अमावास्याके दिन सूर्य चन्द्रमाके संबन्ध विशेषसे कष्ट देने वाली शक्ति प्रकट होकर जाठराग्निको दूषित कर पचन-क्रियामें बाधा करती है। इस कार्यका आरम्भ पौर्णमासीसे हो जाता है। पौर्णमासी, अमावास्या और एकादशीके दिन कहीं कुछ मनुष्योंके शरीरमें ज्वर विकार भी हो जाता है। इसलिए स्वास्थ्य रक्षाके लिए एकादशी व्रत करना चाहिये।

सोम-सिद्धान्तमें लिखा है कि परस्पर संमुख सूर्य-चन्द्रमाकी शक्तियोंके संघटनसे अग्नि प्रकट होती है।

'अन्योन्याभिमुखौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदि।
संघटनोद्भवो वन्हिः।'

इसलिए यह अनुसंधान भी शास्त्र संगत प्रतीत होता है।

पञ्चम स्थान ज्ञान स्थान है। इसलिए सूर्यसे पञ्चम स्थान सूर्यका ज्ञान स्थान है। सूर्य त्रयीतनु है।

मादित्यके दरबारमें प्रधान कवि थे। 'नैरप्यहं नृप सखा किल कालिदासः।'

शालिवाहनके बाद 'ज्योतिर्विदाभरण' बननेकी भ्रांति फैलनेका कारण यह है कि सम्वत्सर तथा अयनांश गणनाके प्रक्षिप्त 'नगै नखैः सन्निहितोद्धिधाशकः तथा----

'शाकशरांऽभोधियुगोनितो हृतौ
मानं खतर्कैरयनांशकाः स्मृताः।

श्लोक सम्वत्सर व अयनांश निकालनेके पण्डितोंने पीछे बनाकर टिप्पणीमें अपने सुभीतेके लिये लिख दिये। शककालसे अयनांश गणनाके क्षेपक पद्य प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंमें नहीं हैं, नोट में दिये हैं। बादमें मूल ग्रन्थमें किसीने लिख दिये। छापेकी पुस्तकोंमें यह प्रक्षिप्त श्लोक वैसे ही छप गये। इसी हेतु 'ज्योतिर्विदाभरण'के शालिवाहनसे पीछे बननेकी भ्रान्ति फैली।

× ×

'सैषा त्रय्येव विद्या तपति।'
(मंडल ब्राह्मण)

महर्षि याज्ञवल्क्यने सूर्यसे शुक्ल यजुर्वेद प्राप्त किया था। इसलिए ब्रह्म विष्णु शिवात्मक सूर्यका ज्ञान परिपूर्ण यथार्थ वैदिक ज्ञान है। चन्द्रमा मनका अधिष्ठाता ग्रह है। (मनः कुमुदबान्धवः) शुक्लपक्षकी एकादशीके आरम्भमें सदा चन्द्रमा सूर्यसे ठीक पञ्चम होता है। उस समय शुद्ध वैदिक ज्ञानसे मनका सम्बन्ध होता है। अज्ञानसे पापमें प्रवृत्ति होती है। मनके ज्ञान युक्त होनेसे मानसिक पापका नाश होता है। मनसे दश इन्द्रियोंका संचालन होता है। इसलिए मनके शुद्ध होनेसे दश इन्द्रियोंके कार्य शुद्ध होते हैं। इस प्रकार एकादशी व्रतसे शास्त्रोक्त एकादश इन्द्रियकृत पापोंका नाश युक्तिसे भी सिद्ध होता है।

एकादशेन्द्रियैः पापमेकादश्यां विनश्यति।
(जयसिंह कल्पद्रुम)

कृष्ण पक्षकी एकादशीके आरम्भमें सूर्यसे चन्द्रमा सदा ठीक एकादश होता है। वह उस समय पञ्चम स्थानका संमुखस्थ होता है। इसलिए शुक्ल पक्षकी एकादशीके समान कृष्णपक्षकी एकादशीमें भी मनका ज्ञानके साथ सम्बन्ध होता है। पञ्चम स्थान उपासना स्थान भी है सूर्य नैसर्गिक आत्मकारक है। (कालात्मा च दिवानाथः) इसलिए सूर्यसे पञ्चमस्थान भी उपासना स्थान है। उपासना स्थानमें चन्द्रमाका योग-सम्बन्ध और दृष्टि-सम्बन्ध भी उपासनासे मनका संबन्ध कराने वाला है।

पञ्चम स्थान उदर स्थान भी है। इसलिए नैसर्गिक आत्मकारक सूर्यसे पञ्चम स्थान भी उदर स्थान है। चन्द्रमा शैत्य और जलका अधिष्ठाता है। शैत्य और जलके आधिक्यसे पचन क्रियामें बाधा होती है। इसलिए जल शोषणार्थ भी एकादशी व्रत आवश्यक है।

पञ्चम स्थान पुत्र स्थान भी है। इसलिए सूर्यसे पञ्चम स्थान सूर्यका पुत्र स्थान भी है।

अष्टादश पुराणानां सारमेकं समुद्धृतम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

इस वाक्यके अनुसार सूर्य अत्यन्त उपकारक होनेसे धर्मका उत्पादक है। इसी अभिप्रायसे धर्मके अधिष्ठाता धर्मराजने सूर्यका पुत्रत्व स्वीकार किया है। इस प्रकार सूर्यसे पञ्चम स्थान धर्मराजस्थान भी है। चन्द्रमा स्त्री ग्रह है। स्त्रीके सम्बन्धसे सन्तानोत्पत्ति होती है। इसलिए सूर्य पञ्चम स्थानरूप धर्म राजका मनोग्रह चन्द्रमासे संबंध होनेसे एकादशीमें विश्वेदेवोंकी शक्तियां प्रकट होती हैं। क्योंकि धर्मराजसे विश्वेदेवोंकी उत्पत्ति है।

विश्वायां दक्षकन्यायां जाता धर्मान्महात्मनः।
विश्वेदेवा इति ख्याता महावीर्या महाबलाः॥

इस प्रकार एकादशीका शास्त्रोक्त विश्व तिथित्व भी युक्तिसिद्ध होता है। एकादशीमें पितृपति धर्मराजसे मनका संबन्ध होता है। धर्मराजपुत्र विश्वेदेव इस तिथिके स्वामी हैं। इसलिए इस तिथिमें शास्त्रोक्त नारायणीबलीका आचरण भी युक्ति सिद्धि होता है। परिपूर्ण वैदिक यथार्थ ज्ञानवाला ग्रह देवगुरु बृहस्पति है। इसलिए सूर्यसे पञ्चम स्थान बृहस्पत्यात्मक भी है। यह सत्वगुण वाला ब्राह्मण उत्तम उपासक है। इसलिए एकादशी तिथि सात्विकी उपासनाकी तिथि है। बृहत्पाराशर होरामें बृहस्पतिको विष्णु देवत्व लिखा है।

वन्ह्यम्बु शिखिका विष्णु विडोजः शिखिका द्विजाः।
सूर्यादीनां खगानां च नाथा ज्ञेयाः क्रमेण च॥

जातकपारिजातमें एकादशीको विष्णु तिथि माना है।

देवब्राह्मणपूजको हरितिथौ दासान्वितो विज्ञवान्
द्वादश्यामतिपुण्यकर्म निरतस्त्यागी धनी पण्डितः॥

इस सात्विकी उपासना तिथि एकादशीसे दूसरी तिथि द्वादशी विष्णु भगवान्के साक्षात्कारकी तिथि है।

'यदादित्यगतं तेजो मम तेजस्तदर्जुन।'

इस भगवद्गीतास्थ भगवद्वाक्यसे तथा

'आदित्यं चापि मां विद्धि मां चादित्यस्वरूपिणम्।'

आदित्य हृदयस्थ भगवद्वाक्यसे सूर्य संबन्धी उत्तम वैदिक ज्ञानसे संबन्ध कराने वाली एकादशीमें सूर्यात्मक विष्णु भगवान्की उपासना योग्य है।

'अहमादित्यरूपोऽस्मि' इस बृहत्पाराशरहोरास्थ [पा]राशर वाक्यके अनुसार रुद्रके सूर्यात्मक होनेसे इस [ति]थिमें शास्त्रोक्त रुद्रोपासना भी युक्ति सिद्ध होती है।

सौरज्ञानसे मनका सम्बन्ध होनेसे शास्त्रोक्त सूर्योपा[स]ना भी इस तिथिमें युक्ति सिद्ध होती है।

'इदमेकादशी व्रतं शैव - वैष्णव-सौरादीनां सर्वेषां नित्यम्।'

अब ताजिकीय दृष्टि-सम्बन्धके अनुसार कुछ अनुसंधान लिखता हूँ।

शुक्ल पक्षकी षष्ठीके आरम्भमें सूर्य चन्द्रमाका पूर्ण तृतीयैकादश शुभ दृष्टि सम्बन्ध होता है। इसके प्रभावसे पवित्र शक्तियां व्याप्त होती हैं। वे योग समाप्त होने पर अन्तर्हित हो जाती हैं। शुक्ल पक्षकी एकादशीके आरम्भमें सूर्य चन्द्रमाका पूर्ण नवम-पञ्चमरूप शुभ-दृष्टि संबन्ध होता है। उस समय फिर पवित्र शक्तियां व्याप्त होती हैं। द्वितीय नन्दा तिथि षष्ठीमें व्याप्त पवित्र अन्तर्हित शक्तियां तृतीय नन्दा तिथि एकादशीमें व्याप्त पवित्र शक्तियोंके सम्बन्धसे प्रकट होकर उनसे मिल जाती हैं।

इस प्रकार दो पवित्र शक्तियोंके मेलसे एकादशीमें अत्यंत पवित्रता विश्वको पवित्र करती है।

कृष्णपक्षकी षष्ठी के आरम्भमें सूर्य चन्द्रमाका पूर्ण नवम-पञ्चम दृष्टि-सम्बंध और एकादशीके आरम्भमें पूर्ण तृतीयैकादशदृष्टि-संबंध, इसी प्रकार कृष्णपक्षकी एकादशीमें अधिक पवित्रताका उत्पादक होता है। पक्षान्तमें पक्ष व्यापिनी शक्तियोंका अन्त होता है। इसीलिए एकादशीका शुभयोग दूसरे पक्षके षष्ठीके शुभयोगको इस प्रकार प्रभावशाली नहीं बना सकता।

उग्र ग्रह सूर्यकी चन्द्रमा पर शुभ दृष्टि भी तत्कालमें कुछ शारीरिक मानसिक कष्ट देनेवाली प्रतीत होती है। एकादशी व्रतसे इस कष्टकी तथा अन्य कष्टोंकी निवृत्ति और महापुण्यकी प्राप्ति भी होती है।

इस लेखका साररूप स्वनिर्मित श्लोकः-----

पारमेश्वरबोधेन संबन्धान्मनसः सताम्।
एकादशीव्रतेनाशु पापजातं निवर्तते॥

अर्थः----परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञानके साथ मनका संबंध होनेसे एकादशी व्रतसे सज्जनोंका पाप समूह शीघ्र ही निवृत्त होता है।



हिंदू ला (धर्मशास्त्र) की उत्पत्ति तथा विकास

[लेखकः— श्री देवीनारायणजी एडवोकेट]

भारतवर्ष सदासे धर्मप्रधान देश रहा है। भारतीय वैदिक साहित्य संसारके समस्त साहित्योंमें अत्यन्त प्राचीन है। यहांके धर्म-शास्त्रोंका भी प्रादुर्भाव वेदोंसे ही हुआ है।

मनु भगवान्‌का कथन है कि:—

"वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षात्-धर्मस्य लक्षणम्॥"

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार तथा जो स्वयंको प्रिय लगे, यही चार धर्मके लक्षण कहे गये हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्यका भी मत है:—

"पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिताः।
वेदा स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥"

अर्थात् चारों वेद, छः वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, मीमांसा, पुराण तथा न्याय; ये चौदह धर्म तथा विद्याके स्थान हैं।

'अहमादित्यरूपोऽस्मि' इस बृहत्पाराशरहोरास्थ [पा]राशर वाक्यके अनुसार रुद्रके सूर्यात्मक होनेसे इस [ति]थिमें शास्त्रोक्त रुद्रोपासना भी युक्ति सिद्ध होती है।

सौरज्ञानसे मनका सम्बन्ध होनेसे शास्त्रोक्त सूर्योपा-[स]ना भी इस तिथिमें युक्ति सिद्ध होती है।

'इदमेकादशी व्रतं शैव - वैष्णव-सौरादीनां सर्वेषां नित्यम्।'

अब ताजिकीय दृष्टि-सम्बन्धके अनुसार कुछ अनु-संधान लिखता हूँ।

शुक्ल पक्षकी षष्ठीके आरम्भमें सूर्य चन्द्रमाका पूर्ण तृतीयैकादश शुभ दृष्टि सम्बन्ध होता है। इसके प्रभावसे पवित्र शक्तियां व्याप्त होती हैं। वे योग समाप्त होने पर अन्तर्हित हो जाती हैं। शुक्ल पक्षकी एकादशीके आर-म्भमें सूर्य चन्द्रमाका पूर्ण नवम-पञ्चमरूप शुभ-दृष्टि संबन्ध होता है। उस समय फिर पवित्र शक्तियां व्याप्त होती हैं। द्वितीय नन्दा तिथि षष्ठीमें व्याप्त पवित्र अन्त-र्हित शक्तियां तृतीय नन्दा तिथि एकादशीमें व्याप्त पवित्र शक्तियोंके सम्बन्धसे प्रकट होकर उनसे मिल जाती हैं। इस प्रकार दो पवित्र शक्तियोंके मेलसे एकादशीमें अत्यंत पवित्रता विश्वको पवित्र करती है।

कृष्णपक्षकी षष्ठी के आरम्भमें सूर्य चन्द्रमाका पूर्ण नवम-पञ्चम दृष्टि-सम्बंध और एकादशीके आरम्भमें पूर्ण तृतीयैकादशदृष्टि-संबंध, इसी प्रकार कृष्णपक्षकी एका-दशीमें अधिक पवित्रताका उत्पादक होता है। पक्षान्तमें पक्ष व्यापिनी शक्तियोंका अन्त होता है। इसीलिए एकादशीका शुभयोग दूसरे पक्षके षष्ठीके शुभयोगको इस प्रकार प्रभावशाली नहीं बना सकता।

उग्र ग्रह सूर्यकी चन्द्रमा पर शुभ दृष्टि भी तत्का-लमें कुछ शारीरिक मानसिक कष्ट देनेवाली प्रतीत होती है। एकादशी व्रतसे इस कष्टकी तथा अन्य कष्टोंकी निवृत्ति और महापुण्यकी प्राप्ति भी होती है।

इस लेखका साररूप स्वनिर्मित श्लोकः—

पारमेश्वरबोधेन संबन्धान्मनसः सताम्।
एकादशीव्रतेनाशु पापजातं निवर्तते॥

अर्थः—परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञानके साथ मनका संबंध होनेसे एकादशी व्रतसे सज्जनोंका पाप समूह शीघ्र ही निवृत्त होता है।



हिंदू ला (धर्मशास्त्र) की उत्पत्ति तथा विकास

[लेखकः— श्री देवीनारायणजी एडवोकेट]

भारतवर्ष सदासे धर्मप्रधान देश रहा है। भारतीय वैदिक साहित्य संसारके समस्त साहित्योंमें अत्यन्त प्राचीन है। यहांके धर्म-शास्त्रोंका भी प्रादुर्भाव वेदोंसे ही हुआ है।

मनु भगवान्‌का कथन है किः—

"वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षात्-धर्मस्य लक्षणम्॥"

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार तथा जो स्वयंको प्रिय लगे, यही चार धर्मके लक्षण कहे गये हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्यका भी मत हैः—

"पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिताः।
वेदा स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥"

अर्थात् चारों वेद, छः वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, मीमांसा, पुराण तथा न्याय; ये चौदह धर्म तथा विद्याके स्थान हैं।

मनुने कहा है:—

"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः।"

श्रुति वेद है और स्मृति धर्मशास्त्र है। वेदोंका नाम श्रुति इसलिये पड़ा है कि उनको महर्षियोंने सुन कर धारण किया है। वेद भगवद्वाक्य है। धर्मशास्त्रका भी मूल वेद ही हैं। वेदोंमें धर्मशास्त्रका बीज वपन हुआ; उसकी शाखायें स्मृति, पुराण, न्याय, मीमांसा हिन्दू विधान आदि हैं। हिन्दू-ला कायदा-कानून आदि का भी आदिस्रोत वेद ही है। चाहे वह नजीर रूलिंग हो, चाहे लेजिस्लेशन विधान हो। यद्यपि आजकलके वकीलोंके तथा आधुनिक हिन्दू-लाके कानून स्मृति पर निर्मित हैं, परन्तु स्मृतियोंका भी मूल वेद ही हैं।

स्मृतिः—स्मृति धर्मशास्त्रको कहते हैं। "धर्म शास्त्रन्तु वै स्मृतिः।" स्मृति नाम इसलिये पड़ा है कि इनको स्मृतिकारोंने स्मरण रक्खा और संसारके हितके लिये प्रचार किया। याज्ञवल्क्यने स्मृतिकारोंके नाम निम्न लिखे हैं।

"मन्वत्रिविष्णु हारीत याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसम्वर्तः कात्यायन बृहस्पती॥
पराशर व्यास शंख लिखिता दक्षगौतमो।
शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥"

अर्थात्:—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशन्, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप तथा वशिष्ठ धर्मशास्त्रके प्रवर्त्तक हैं। मिताक्षरा-कारका कहना है कि यह गणना पूर्ण नहीं है; पर उदा-हरणार्थ है। बौधायन, देवता, नारद आदि भी धर्मशास्त्रके प्रयोजक हैं तथा मान्य हैं।

मनुका स्थान संसारके जूरिष्टमें बहुत उच्च है। रोमन, चाइनीज तथा अरब-कानून-ग्रन्थोंमें भी ऐसा सुन्दर मानव-धर्मका प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ नहीं है। हमारे यहां तो मानवधर्मका अलौकिक महत्त्व, मान्य तथा मर्यादा है।

"मानः पथः पित्र्यान्मानवादधिदूरं नैष्ट परावत्"
(ऋग्वेद। ८ मं ३० सू.)

अर्थात् मनु द्वारा प्रतिपादित प्राचीन तथा मार्गसे हमें दूर न ले जाओ। फिर कहा है—

"मनुर्वै यत्किञ्चावदत् तद्भेषजम्।"

(तैत्तिरीय संहिता २, २, १०, २) तथा ताण्ड्य महाब्राह्मण २३, १६, ६। तात्विक मानवधर्मको एक मात्र "भैषजं भवरोगिणां" समझ कर हमारे स्मृतिकारोंने मनुको सबसे अधिक मान्य किया है।

यद्यपि मनुका प्रधानत्व है; परन्तु अन्य स्मृतिकारोंने भी बहुत कुछ धर्मशास्त्रमें परिवर्त्तन तथा संशोधन किया है। सूदके सम्बन्धमें जो वशिष्ठने लिखा है वही जो माना जाता है, वह 'वशिष्ठ-न्याय' कहलाता है। गौतमने रिवाजके विषयमें जो न्याय किया है; वही प्रमाण है। वशिष्ठने जो 'सम्पत्तिविभाजन न' के सम्बन्ध में लिखा है वही माना जाता है। 'लिखित' ने यह नियम बनाया है कि यदि स्त्रीके भरण-पोषणका प्रबन्ध न किया जाये तो उसे जायदादमें हिस्सा देना चाहिये। 'यम' ने नियम बनाया है कि असुर-विवाहने स्त्री धन पिताको मिलता है। पुत्रत्वेन परिग्रहः।

निबन्धः—धर्मशास्त्रकी उत्पत्ति वेदोंसे ही मानी जाती है; अतः वेदवाक्यों तथा उनसे विकसित स्मृतियोंमें आपसमें भेद नहीं होना चाहिये। परन्तु वास्तविकता यह है कि देश-काल तथा रीति-रिवाजके भेदसे धार्मिक व्यवहारों तथा कानूनोंमें भी बहुत भेद हैं। इसीलिये समय-समय पर प्रभावशाली समाजके विशिष्ट विद्वानों तथा धर्माचार्योंने 'पराशर-माधव' नामक ग्रन्थ लिखा है। यह बड़ा अद्भुत ग्रन्थ है। माधव बहुत बड़े विद्वान् तथा अपूर्व लेखक थे। उनका निबन्ध अद्वितीय है। इनके बाद प्रसिद्ध लेखक "हरदत्त" हैं। इन्होंने आप-स्तम्ब-धर्मसूत्र पर उज्ज्वल नामका निबन्ध लिखा है और गौतम पर भाष्य लिखा है, जो कि 'गौतमाय मिताक्षरा' के नामसे प्रसिद्ध है। इनके बाद "विश्वेश्वर"

हुए। इन्होंने 'मदन-पारिजात' नामका ग्रन्थ लिखा है और मिताक्षराकी सुबोधिनी नामकी टीका की है। यह प्रसिद्ध ग्रन्थ है। फिर 'विवाद रत्नाकर' के लेखक 'चन्द्र-शेखर ठाकुर' हुए। यह मिथिलाके थे। इनके उपरान्त वाचस्पति मिश्र हुए। इन्होंने 'विवाद-चिन्तामणि' नामका ग्रन्थ लिखा है। यह १५ वीं शताब्दीमें हुए और माधवके बाद धर्मशास्त्रके अद्भुत प्रतिभाशाली लेखक थे।

बङ्ग-देशमें भी धर्मशास्त्रके बहुत विद्वान् हो चुके हैं। परन्तु दाय-भागके लेखक "जीमूत-वाहन" का सबसे अधिक मान है, इन्हींके ग्रन्थ दायभागके अनुसार आधुनिक हिन्दू-विधान बङ्गालमें चलता है। 'रघुनन्दन' का दायतत्व, "श्रीकृष्ण तर्कालंकार" का दाय-क्रम-संग्रह, मिताक्षरा तथा वीरमित्रोदयका भी आवश्यकता पड़ने पर प्रमाण माना जाता है। दक्षिण-भारतमें मिताक्षरा, स्मृति-चन्द्रिका, सरस्वती-विलास, वीरमित्रोदय तथा व्यवहार-निर्णयका मान है। महाराष्ट्रमें मिताक्षरा, व्यवहार-मयूख, निर्णय-सिन्धु तथा वीर-मित्रोदयका सम्मान है। गुजरात, उत्तर-कोंकण तथा बम्बई द्वीपमें 'नीलकण्ठ भट्ट' का व्यवहार-मयूख तथा मिताक्षराका प्रचार है। प्रधानत्व मयूख ही का है। बनारस स्कूलमें मिताक्षरा वीरमित्रोदय, मदनपारिजात तथा निर्णयसिन्धुका प्रमाणत्व है। और पंजाबमें मिताक्षरा, वीरमित्रोदय पंजाबके रिवाजका कानूनमें प्रयोग होता है।

अंग्रेजोंके शासन-कालमें दण्ड शासन आदि तो इण्डियन-पेनलकोड आदिसे चलता है। व्यवहारमें भी कण्ट्रक्ट कम्पनी-ला आदि लागू है। हिन्दू-ला दीवानी न्यायालयोंमें चलता है। पहले अंग्रेज अपने साथ पण्डित रख कर न्याय करते थे, फिर संस्कृत ग्रन्थोंके अनुवाद हो गये। उससे स्वयं अदालतोंमें काम चलने लगा। डाक्टर जाजा कोलब्रुक, मेक्सम्यूलर डा० फोक्स, मण्डलीक, गोपालचन्द्र शास्त्री, जोगेन्द्रचन्द्र घोष, डाक्टर गङ्गानाथ झा आदिके बहुत कुछ अनुवाद तथा धर्मशास्त्रके मूल आधार पर हिन्दू-ला पर पुस्तकें लिखी हुई हैं। अंग्रेजोंके समयमें विधान भी बने, जिनसे हिन्दू-लाका परिवर्तन हुआ। हाईकोर्ट तथा प्रीवी-कौंसिलके निर्णय भी बड़े मार्मिक हैं। यह भी बहुत बड़ा हिन्दू-लाका साहित्य है। इसे नजीर कहते हैं। अंग्रेजोंके शासनकालमें कई विधान बनाये गये, जिनके द्वारा हिन्दू-लामें परिवर्तन हुआ है।

अब भारतकी धारासभामें 'कोडबिल' भी प्रस्तुत है। इसका हिन्दू जनता घोर विरोध कर रही है। यह 'कोड' श्रुति, स्मृति, हिन्दू-धर्मशास्त्र तथा सदाचार (नीति) के पूर्णतया विरुद्ध है। इससे हिन्दू-संस्कृतिका बिलकुल निर्मूलन हो जाता है, अतः इस बिलको वापस ले लेना चाहिये और समयानुकूल सुधारार्थ कुछ आवश्यक परिवर्तन विधान द्वारा किया जा सकता है। आमूल परिवर्तन से हिन्दूधर्म एवं संस्कृतिको धक्का लगेगा और सदाके लिये विरोधका बीज वपन हो जायगा। प्राचीन स्मृतिकार तथा निबन्धकार जनताको धर्म, अर्थ काम और मोक्षके पथ पर ले जाते थे और उनसे शान्ति रहती थी। आजकलके राजनीतिक पुरुषोंको भी उसी मार्गका अनुसरण करना चाहिये। शास्त्रियोंने निबन्ध तथा टीकाकी रचना की है। सदाचार रीति-रिवाज तथा देश काल श्रुति-स्मृति का पूर्ण समन्वय करते हुए अत्यन्त सुन्दर तथा प्रभावशाली निबन्ध तथा भाष्य और टीकाएं लिखी हैं।

प्रथम निबन्ध नारद-स्मृति पर "असहाय" का है। उनके उपरान्त "मेधातिथि" की मनुके ऊपर टीका है। मेधातिथिका समय ८ या ९ वीं शताब्दीका है। "विश्वरूप" ने याज्ञवल्क्यस्मृति पर भाष्य किया है। उन्हींके बाद प्रसिद्ध सन्यासी "विज्ञानेश्वर भिक्षु" ने याज्ञवल्क्य पर प्रसिद्ध निबन्ध लिखा है, जो मिताक्षरा-टीकाके नाम से सम्पूर्ण भारतमें प्रसिद्ध है और प्रायः उसीके अनुसार आधुनिक हिन्दू-कानून चल रहा है। इनका जन्म ११ वीं शताब्दीमें चालुक्याधिपति विक्रमार्कके समय हुआ था। अदालतों-न्यायालयोंमें इसका बड़ा महत्व है। "अपरार्क" कोंकणके राजा थे। वे ११८७ ई० में हुए। उन्होंने भी याज्ञवल्क्य-स्मृति पर बहुत सुन्दर निबन्ध लिखा है। इनके बाद "हेमाद्रि" का स्थान बहुत उच्च है। यह दौलता-

मानव और शिक्षा

[लेखकः— विद्यावाचस्पति श्री पं० दिवाकरदत्तजी शास्त्री काव्यतीर्थ विद्यालंकार, आचार्य]

प्रकृति देवीने जड़ और चेतन पदार्थोंको एक विलक्षण नियममें बांध रखा है कि सबके सब एक ऐसी अकर्मण्य दशा से निकल कर उत्पन्न होते हैं, जिस दशामें उन्हें जगत्की वर्तमान स्थितिका मूले भी अनुभव नहीं होता। जिस प्रकार माता पुत्रका पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार प्रकृति इन प्रादुर्भूत जीवोंको अपने आवश्यक पदार्थोंके साथ हिला-मिला देती है। आरम्भमें जो पदार्थ केवल नेत्र और कर्णोंको सुखद प्रतीत होते हैं, वही कालान्तरसे मानवको वशगत कर लेते हैं। फलस्वरूप वह एक स्वभाव बन जाता है। अर्थात् प्रारम्भमें शिक्षित बातें ही भविष्यके लिए स्वभाव बन जाती हैं। अत एव जिस देश तथा योनिमें जो उत्पन्न होता है, वह उसीके समान शिक्षा पाता है। उस शिक्षाको ही वह अपना स्वभाव कहने लग जाता है। किन्तु विलक्षणता यह है कि अन्य जीवोंके लिए तो शिक्षा सीमाबद्ध है, पर मनुष्य के लिए असीम है। अनुभव किया गया है कि मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होनेसे ही मनुष्य-जगत्में अपनी उच्च का स्वत्व स्थिर नहीं कर सकता है; आरण्यक मान कोल, भिल्ल और पशुओंके मध्य किंचित् ही भेद है नग्न रहना, मनुष्य-आमिष खाना, वृक्षोंकी छाल पत्तियां खाना तथा उस पर शयन करना आदि इस प्रमाण है। मनुष्य और पशुमें केवल इतना ही भेद है कि एकमें विचार-शक्ति है और दूसरेमें नहीं, इसका साधा रण रूप स्वर्णकी मिट्टीके समान है। मिट्टीको जितना साफ किया जाता है; उतना ही उसका रूप स्वर्णम होता जाता है। मनुष्यकी विचार-शक्तिकी भी यह अवस्था है, इसका जितना ही प्रादुर्भाव होता जाता है; उतना ही मनुष्य अधिक बुद्धिमान् कहा जाता है। इसके विका का कारण शिक्षा है। शिक्षाकी दो परिभाषाएं हैं।

(१) ज्ञानका उपार्जन (Acouisitionofknow edge) (२) विवेक का प्रादुर्भाव (Developmen offaculty)

वार्तालाप करना, लिखना, विचार करना शिक्षासे सम्बन्ध रखते हैं। पशु-पक्षी अपने बच्चोंको बोली बोल कर अपनी भाषाकी शिक्षा देते हैं, किन्तु उसकी शिक्षा की सीमा यहीं समाप्त हो जाती है। मनुष्य भी इसी प्रकार करता है, किन्तु जब वाणी द्वारा उसकी शिक्षा पूरी न हुई तो उसने कुछ चिन्ह निर्माण किये, जिनका नाम अक्षर (Letters) रखा। उपरान्त अपनी भाषाके अनुसार उसका व्याकरण भी बनाया। उसके आधार पर

वाधुके राजा महादेवके प्रधानमन्त्री थे। इन्होंने 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' नामका ग्रन्थ लिखा है, इसका बड़ा आदर है। यह १३ वीं शताब्दीमें हुए। 'देवानाद भट्ट' १३ वीं शताब्दीमें हुए। उन्होंने 'स्मृति-चन्द्रिका' नामका निबन्ध लिखा है। मद्रास प्रान्तमें इसका विशेष प्राधान्य है। विशेष फिर कभी लिखेंगे।

—◎—

अक्षरों द्वारा बाहुल्य रूपसे शिक्षा दी जाने लगी। इसके निर्माणसे यह लाभ हुआ कि यदि कोई व्यक्ति मर जाता है, तो उसके उच्च विचार इन अक्षरों द्वारा पुस्तक रूपमें मानव समाजके कल्याणके लिए संरक्षित रहे। इसीसे सच्चरित्रता (Morality) धी शक्ति (Intelectuality) प्राणि विद्या (Zeology) पुराण कथा (Mythology) मानस-शास्त्र (Psychology) अध्यात्म-विद्या आदि का पूरा विवरण विद्यमान है। वृक्ष वनस्पति वार्तालाप न करनेसे जड़ कहलाते हैं। पक्षी आदि कुछ बंधी हुई भाषामें अपना सुख तथा दुःख प्रकट करते हैं। मनुष्योंका भी एक भाग, जो पढ़ा-लिखा नहीं है, उसके पास शब्द-कोष कम होनेसे पिण्डभूत स्वभाव बद्ध है। मनुष्यके लिए शिक्षा अगाध है। इस विषयमें विद्वानोंके अनेकों विचार हैं।

"सभ्यताका सागर हमारे सम्मुख अप्रकाशित स्थित है, यह तो निश्चित है कि मानव अपनी सभ्यता पर अभिमान कर सकता है, किन्तु उसका आधार शिक्षा है। शिक्षाकी कोई सीमा नहीं है। अतः उसका साथ जन्म-पर्यन्त न छोड़ना चाहिये।"

— न्यूटन

"हमें शिक्षाको विद्यालय छोड़ते ही न छोड़ देना चाहिये, अपितु उच्च श्रेणीसे आरम्भ करके सम्पूर्ण आयु उसे जारी रखना चाहिये।"

— बेकन

"शिक्षा बड़ी मधुर है, इसकी मधुरतासे मुंह बंध नहीं जाता, अपितु निरन्तर सेवनसे भी बुभुक्षा बढ़ती ही रहती है। जैसे कोई गन्नेका खण्ड हाथीको पकड़ा तो दे, परन्तु छुड़ा नहीं सकता। उसी प्रकार जिसने इसे मन सौंपा पुनः लौटा कर नहीं पा सकता। मनुष्य दस-पन्द्रह दिनोंके पश्चात् अतिथियोंसे ऊब उठते हैं, किन्तु शिक्षा मनुष्यरूपी अतिथिसे कभी नहीं ऊबती। जीवन-पर्यन्त अनेक पदार्थोंको देकर उसे प्रसन्न करती है।"

— मिल्टन

"शिक्षा न कठोर है, न कटु है, जैसा आलसी विचार करते हैं, किन्तु मधुर स्वर के समान सरस है और अमृतमय मिठाईका सर्वदा भोज है। कदलीकी शाखाकी भांति अज्ञानके आवरण मनुष्यके हृदय में जमे हैं। उनको साफ करनेके लिए शिक्षा तेज चाकू है। जिसमें जितनी सफाई होती है, उसमें उतनी ही मानसिकशक्ति होती है, क्योंकि बिना उसके मनुष्य अपनी उन्नति नहीं कर सकता, पर वह शिक्षा पर निर्भर है।"

— पिक्टेटुस

"तुम समाजके लिए महाविशाल काम करोगे, यदि तुम मकानोंकी छतें न बढ़ा कर मनुष्योंकी आत्माओंको बढ़ाओगे। शिक्षाका प्रधान अभिप्राय किसी घरेलू उन्नति से नहीं है। हम सब नौकरी व रोजगारके लिए शिक्षाको प्राप्त तथा आदर करते हैं, यह उसका मौलिक तात्पर्य नहीं है, सच्ची शिक्षा शिक्षा अर्जनके लिए होती है।"

— बेकन

उपरोक्त विद्वानोंके विचारानुसार हमें यह स्वीकार करनेमें तनिक भी संकोच न होना चाहिये कि विद्या मानव को अमर बनाती है, किन्तु पाश्चात्य विद्वानोंको जो प्रेरणा बहुत चिरके अनन्तर मिली, भारतीयोंको वह प्रेरणा अनादिकालसे प्रबोधित करती जा रही है। 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' प्राचीन समयमें विद्याका अध्ययन एकांत, नगरके वातावरणसे रहित सुरम्य वनमें होता था, इसमें धर्म सम्बन्धी शिक्षाकी अधिकता होती थी और इसका अधिकार बहुधा विरक्त पुरुषोंके हाथमें होता था। अब प्रश्न यह उठता है कि उनकी इस व्यवस्थामें क्या विशेषता थी।

कहना न होगा कि जिस आदर्शमय पद्धतिको आज का जगत् घृणाकी दृष्टिसे देखता है। या यों कहिये कि रूढ़िवाद नामसे पुकारता है, वही पद्धति भारतीय साहित्यके उद्गम और विशुद्धताके प्रति कारण थी।

भारतीय शिक्षा-पद्धतिके अनुसार मानव-जीवनका एक भाग ही शिक्षा प्राप्त करनेके लिए निश्चित किया हुआ है, जिसे ब्रह्मचर्याश्रम कहते हैं। बालककी अनुकूल आयु देखकर माता-पिता उसे शिक्षा पानेके लिए गुरुकुल में भेज दिया करते थे। वहांका वातावरण बिलकुल विलासिताकी लहरसे अस्पृष्ट होता था। यहां तक कि ब्रह्मचारी शिक्षा पाते समय भीख मांग कर अपना निर्वाह करें, वस्त्र तक न पहिने, चाहे वह कोटिपतिका बालक हो या किसी रंक व दरिद्रका। महर्षि संदीपनीके आश्रममें भगवान्

प्रिय श्री हरदेव शर्म्मा जी!

नमस्कार!! आशा है कि आप परिवार सहित सकुशल होंगे। आप दिल्ली में आते रहे परन्तु दर्शन नहीं हुये। पिछली गरमियों में हमने कुछ समय तो बम्बई में बिताया और पश्चात जम्मू जाकर अपनी लड़की का विवाह कार्य का प्रबन्ध कुशल पूर्वक किया, इस कारण मैं शिमला न आ सका और आप के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त न हुआ॥

समाचार पत्रों में आप भी यह पढ़ चुके होंगे कि भारत सरकार एक कानून बना रही है जो कि भारत की प्राचीन ज्योतिष विद्या पर एक कठोर आघात होगा इस कानून के बनने से भारत में ज्योतिष शास्त्र के मिट जाने का भय है। वास्तव में सच्चं की यह भावना कि भारत में हिन्दु संस्कृति का फिर से संचार हो इस के विरोध में कांग्रेस सरकार का पहला प्रहार है। मैं इस विषय में बहुत कुछ लिखना चाहता हुं परन्तु पत्र में बहुत सूक्ष्म बातें लिखी नहीं जा सकतीं, अभी तो ४ वर्ष तक कांग्रेस का ही राज्य है और यह कांग्रेस इस कानून को तो बना कर ही रहेगी और हम इस के विरोध में कुछ प्रचार भी नही कर सकते एक बात तो यह जरूर है कि विष से भी स्वर्ण बन सकता है परन्तु इस में कुछ उद्योग करना पड़ता है इसी प्रकार हम इस विष की बेल से जो उगाई जा रही है ज्योतिष विद्या के लिये अमृत उत्पन्न कर सकते हैं वह इस प्रकार होगा कि इस विषय में आप मुझे बहुत जलद मिलने की कृपा करें और जितनी जलदी मेरी और आपकी भेंट हो उतना ही अच्छा है। यह आप पर विदित होगा कि आप की स्वाध्याय की कुछ प्रतियां और दो तीन वर्ष के पञ्चाङ्ग इस समय इन न्यायाधीशों के हाथ में हैं इस विषय में आप पर तो ज्यादा कटाक्ष हो रहा है आशा है कि आप इन बातों को साधारण रूप से नहीं लेंगे क्योंकि पहला प्रहार तो आप के पञ्चाङ्ग और स्वाध्याय पर ही होगा। इस लिये जरूर मिलने की कृपा करें।

शुभचिन्तक।

विद्यालाल हे[illegible]
[illegible] पर्वत दिल्ली ५

श्रीकृष्ण और सुदामा दोनों एक साथ शिक्षा पाते थे। आश्रमके नियम संसारके चक्रवर्ती भगवान् कृष्ण और संसारके निर्धन सुदामाके लिए समान थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्रिटिश सत्ताने भारतमें शिक्षाका विकास किया, किन्तु पूंजीपतियोंके बालकोंके लिए चीफ्स-कालेज और निर्धन परिवारोंके लिए साधारण विद्यालयमें शिक्षाकी कुनीति भी ब्रिटिश सत्ताकी ही थी। इस प्रकारकी शिक्षा विषमतासे जो विष भारतीय आत्माओंमें भरा गया, वही आज अपने देशको भस्मसात् करनेके लिए हालाहल बन बैठा है। भला जब तक एक ऐश्वर्यशाली व्यक्तिने एक दरिद्र और दुःखी आत्माके साथ अपना सम्बन्ध न जोड़ा, तब तक वह उसकी सुविधाओं और असुविधाओंके विषय में क्या सोच सकता है, तथा उससे कैसे प्यार कर सकता है।

आजकलकी पाठशालाओंसे लेकर कालिजों तककी शिक्षामें भी वही कीटाणु पूर्ण रूपसे कार्य कर रहे हैं। परिणाम यह होगा कि इस प्रकारकी शिक्षासे देशका नव-निर्माण न हो सकेगा।

शिक्षाके मूल आधार क्या हों?

१. प्रत्येक विशाल नगरमें एक ही महाविद्यालय हो, जिसमें प्रारम्भिक शिक्षासे लेकर उच्च शिक्षा पर्य्यन्त शिक्षणका प्रबन्ध हो। उसकी सारी व्यवस्था सरकारके आधीन हो। किसी धर्म या सम्प्रदायके नामसे चलने वाले विद्यालय बालकोंके हृदयमें परस्पर धर्म विरोधी विचार उत्पन्न करते हैं, जिससे वास्तविक संगठन नहीं हो पाता।

२. प्रत्येक भारतवासी, (चाहे वह यवन, सिख, हिन्दू, ईसाई कुछ भी है) को भारतीय आचार, भारतीय संस्कृति एवं भारतीयताके अवलम्बनकी शिक्षा दी जाय।

३. निर्धन, धनीको समान वेश, समान, रहन-सहन शिक्षाकी व्यवस्था की जाय।

४. जो सहायता जनतासे भिन्न-भिन्न संस्थाएं किसी विद्यालयके नामसे एकत्रित करती हैं, उसको सरकार ही ले ले और प्रत्येक नगरमें सब प्रकारकी विद्याओंका एक ही केन्द्र चला कर जनताकी सेवा करे।

मेरे अपने विचारके अनुसार देशकी उच्चतम संस्कृति ही स्वनाम-धन्य भारतमें बढ़ते हुए अत्याचारों, दुर्व्यसनों आदिसे रक्षा कर सकती है। जब तक भारतीय संस्कृति का पुनरुज्जीवन तथा शिक्षा सुधार न होगा, तब तक देश के सौभाग्यत्वके स्वप्न लेना मृग-तृष्णका मात्र है। बड़े-बड़े उच्चतम चतुष्पथों पर खड़े होकर सगर्व, सभ्रूभंग, सताम्रेक्षण, सशरीरकम्प विशाल व्याख्यानोंकी बौछारोंसे कुछ नहीं बन सकता; तथा पत्रोंके विस्तृत पृष्ठों पर लिखे गये लेखोंसे भी कुछ नहीं हो सकता, जब तक भारतीय शिक्षा-पद्धतिको आदर्शमय और मानवत्वके समझने योग्य न बनाया गया।

भगवान्‌को छोड़कर अपना कौन है?

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे।
सुनि मन, कहौं पुकारि तो सौं हौं, भजि गोपाल हि मेरे॥
या संसार विषय-विष-सागर, रहत सदा अब घेरे।
सूर स्याम बिनु अन्त काल मैं कोउ न आवत नेरे॥

—श्री सूरदासजी

—× ×—

—: संस्कृत-भाषा :—

[लेखक :—श्री पं० छज्जूरामजी शास्त्री विद्यासागर]

[इस लेखके सुयोग्य लेखक संस्कृत-साहित्यके मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपने कई ग्रन्थ और निबन्ध लिखकर सुरभारतीकी सेवा की है। अध्ययनाध्यापनमें ही आपका अधिकांश समय व्यतीत होता है। दिल्लीमें आपने अ० भा० संस्कृत-प्रचारक-मण्डलकी स्थापना की है। आशा है आपके इस सत्प्रयत्नसे संस्कृत-भाषा और भारतीय-संस्कृतिकी समुन्नति होगी। — सम्पादक]

इस मन्तव्यसे सभी भारतीय विद्वान् सहमत हैं कि हिन्दु-संस्कृतिका प्राण संस्कृत भाषा ही है। संसारकी सभी भाषाओंकी वह जननी भी है। अतएव संस्कृत भाषाकी प्राचीनता व्यापकता एवं मान्यता समस्त भाषाओंसे बढ़कर है। संसारमें सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ वेद हैं। वे सभी इसी गीर्वाणवाणीमें महर्षियोंको दृष्ट हुए थे। वे किसीके भी बनाए हुए नहीं हैं, अतएव अनादिनिधन हैं। यद्यपि नैयायिक लोग वेदोंको ईश्वरकृत मानते हैं, परन्तु मीमांसकोंने उनका कर्ता कोई भी नहीं माना। वेदोंसे दूसरी कोटिमें उपनिषद्ग्रन्थ हैं। जो विकटसे विकट धार्मिक समस्याओंको अनायास ही सुलझानेमें एकमात्र साधन हैं। ये सब ग्रंथ भी संस्कृत-भाषामें ही लिखे गये हैं। पृथ्वीकी उत्पत्तिसे लेकर महाप्रलय तकका विविध इतिहास प्रस्तुत करने वाले रामायण, महाभारत और पुराणोंकी रचना भी इसी दिव्य-भाषामें हुई है। आर्योंकी प्राचीन प्रथा तथा परम्पराओंका सर्वाङ्गीण वर्णन करने वाले धर्मशास्त्र-ग्रन्थोंका निर्माण भी इसी भाषामें किया गया है। किंबहुना लौकिक अभ्युदय अथच पारलौकिक निःश्रेयसके साधक जितने ज्ञान और विज्ञान हैं उन सबको निर्भ्रान्त अवगत करनेका एकमात्र उपाय यही संस्कृत-भाषा है। मानव-जीवनके चार ही पुरुषार्थ हैं--धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। संस्कृत-साहित्यमें इन चारोंका इतना विस्तृत एवं रोचक-वर्णन किया गया है जो अन्य भाषाओंमें दुष्प्राप्य ही नहीं असम्भव भी है। कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि संस्कृतभाषामें केवल धर्मग्रन्थोंका ही बाहुल्य है। किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रांत है, क्योंकि ऐसा कोई भी विषय देखनेमें नहीं आया जिस पर हमारे पूर्वजोंने संस्कृतमें कुछ-न-कुछ न लिखा हो। जैसा कि कहा जाता है----

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न ताः कलाः।
नासौ नयो न तत्कर्म संस्कृते यन्न दृश्यते ॥

कौटिल्य-अर्थशास्त्र राजनीतिका अनुपम भण्डार है। कामशास्त्र भी हमारी उपेक्षाका विषय न था जिसके ज्ञान पर मानव-जीवनका सुख निर्भर है। वात्स्यायन मुनिने अपना कामशास्त्र संस्कृतमें लिखकर इस बातका पूर्ण परिचय दे दिया है। विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, स्थापत्य आदि लौकिक विषयोंके भी ग्रंथ संस्कृत साहित्यमें संख्यातीत हैं। इतिहास वेत्ताओंने यह बात प्रमाणित कर दिखा दी है कि सत्ययुगसे आरम्भ करके १४ वीं शताब्दी तक आर्यावर्त्तकी राजभाषा संस्कृत भाषा ही थी। भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे भी संसारकी यही एक ऐसी भाषा है जिसके बोलने वालोंने संस्कृति तथा सभ्यताका निर्माण किया है। यह तो हम पहले ही दिखा चुके हैं कि समस्त भाषाओंकी उत्पत्ति संस्कृतसे ही हुई है। हिन्दी तो संस्कृत-भाषाकी लाडली पुत्री है। इसको परिष्कृत एवं

संस्कृतनिष्ठ बनानेके लिए संस्कृतका अध्ययन नितान्त आवश्यक है। कभी संस्कृत भी भारतकी वैसी ही बोलचालकी भाषा थी जैसी अब अंग्रेजी और हिन्दी है। कुछ महानुभाव कहा करते हैं कि संस्कृत कभी भी बोलचालकी भाषा न थी, वह तो विद्वानोंकी ही भाषा है। यह उनका कहना प्रमाण शून्य है, यास्कसे प्रारम्भ करके सभी पुराने व्याकरण संस्कृतको 'भाषा' कह कर पुकारते हैं। भाषा शब्द 'भाष्' धातुसे बनता है। जिसका अर्थ बोलना चालना है। पाणिनि और कात्यायनके ऐसे अनेक नियम हैं, जो जीवित भाषाके सम्बन्धमें ही सार्थक हो सकते हैं। पतञ्जलि ऐसे अनेक शब्द चुन कर दिखलाते हैं जो केवल एक-एक जिलेमें ही बोले जाते हैं। सप्तमशतकके चीनीयात्री ह्यूनसाङ्गने लिखा है कि बौद्ध लोग मौखिक वादविवादमें संस्कृत भाषाका ही व्यवहार कराते थे। सम्राट हर्षके बनाये हुए नाटक संस्कृतमें खेले गये। यही नहीं भारतके समस्तशिलालेख भी संस्कृतमें ही उत्कीर्ण हुए हैं। शिलालेख उसी भाषामें लिखे जाते हैं जो बोलचालकी भाषा होती है। जिससे उन्हें सब समझ सकें। बुद्धसे लेकर कुछ समय तक प्राकृतका प्रचार रहा। सम्राट् चन्द्रगुप्तमौर्यके समय चाणक्य और भासने अनेक ग्रंथ सं० में लिखे। पुष्पमित्रके राज्यत्वकालमें पतञ्जलिने अपना महाभाष्य संस्कृतमें लिखा था। पुष्पमित्रके सौ वर्ष बाद उज्जयिनीपति विक्रमसंवत्प्रवर्तक वीरविक्रमादित्य शूद्रकने (जो ब्राह्मण जातिका था) अपना नाटक मृच्छकटिक संस्कृतमें लिखा। उसी समय कालिदासने अपने सब नाटक संस्कृतमें लिखे। विक्रमसे सौ वर्ष बाद कनिष्कके सभापण्डित बौद्ध कवि अश्वघोषने भी अपने काव्यके लिए संस्कृत भाषा चुनी। सम्राट समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका समय तो संस्कृतभाषाका स्वर्णयुग ही माना जाता है। बड़े बड़े संस्कृत ग्रन्थकार इसी समयके हैं। कुछ समय बाद भट्टकुमारिल और स्वामी शंकराचार्यने अपने अपने भाष्य संस्कृतमें लिखे। महाराज भोजका समय भी संस्कृतका स्वर्णयुग माना जाता है। भोजके कुछ समय बाद भी मम्मट और हर्षमिश्र प्रभृति संस्कृतके धुरन्धर लेखक हुए। भोजसे तीन सौ वर्ष बाद सायण और माधवाचार्यने चारों वेदों पर संस्कृत भाष्य लिखे। आगे चलकर यवन राजाओंने हिन्दूराष्ट्रीयताको नष्ट कर डाला, परन्तु संस्कृत-भाषाका साम्राज्य उसी तरह बना रहा, मधुसूदन स्वामी, गदाधर भट्टाचार्य, भट्टोजिदीक्षित और जगन्नाथ पण्डितराज प्रभृति संस्कृतके महान् लेखक उसी समयके हैं। जबसे अंग्रेज आए तभीसे संस्कृत मृत भाषा बन गई। लार्ड मेकालेने इसके मृत बनानेमें पूर्ण प्रयत्न किया। और वह सफल भी हुआ। अब संस्कृत और संस्कृति दोनोंका नाम शेष रह गया। अब भी काटजू प्रभृति कुछ महानुभाव इसके प्रेमी हैं, संयुक्तप्रान्तके शिक्षामन्त्रीजीने इस भाषाके लिए स्तुत्य कार्य किया है। परन्तु अन्य प्रांतीय शिक्षाधिकारी वर्ग इसको इतना गिरा रहा है कि आगे कोई भी छात्र संस्कृत न पढ़ेगा। जिन संस्कृत परीक्षाओंमें हजारों छात्र बैठते थे अब उनमें सैकड़ों बैठते हैं, आगेकी ईश्वर जाने। हमने संस्कृत प्रचारके लिए देहलीमें एक अ० भा० संस्कृतप्रचारक मण्डलकी स्थापना की है, उसका संरक्षक या सदस्य बन कर सक्रिय सहयोग देना प्रत्येक संस्कृत प्रेमीका कर्त्तव्य है।



इच्छा

प्रभो! तेरी इच्छा पूर्ण हो। मेरी कोई इच्छा तेरी इच्छाके प्रतिकूल हो ही नहीं, यदि हो तो वह कभी पूरी न हो। तू ही मेरा सर्वस्व है, तू ही मेरी आत्मा है। मैं तेरा हूँ, तेरा ही हूँ, सदा तेरा ही रहूँगा।



आरोग्यता का मूल– और उसकी प्राप्ति के मार्ग

[लेखकः— साहित्यायुर्वेदाचार्य श्री पं० रामेश्वरप्रसादजी शास्त्री विद्यालङ्कार]



शारीरिक, मानसिक, आत्मिक रोगाभाव ही "आरोग्यता" कहलाती है। यदि शरीर ऊपरसे साफ सुथरा है पर मनमें कई प्रकारके संकल्प विकल्पोंने घर कर रखा है-- आत्मामें अशान्तिका साम्राज्य है, तो आपाततः ठीक दीखते हुए भी मनुष्य स्वस्थ एवं आरोग्य-शाली नहीं कहला सकता। इसी प्रकार कथंचित् आत्मा एवं मन अपनी सम्यक् स्थितिमें हों, किन्तु शरीरमें कहीं पीड़ा है, तो उनकी सम्यक् स्थिति कुछ देर ही ठहर सकती है, अतएव आयुर्वेद शस्त्रकारोंने---

"समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥"

अर्थात्—वात-पित्त-कफ ये दोष जिसके समान अवस्थामें हों, मन्द, विषम, तीक्ष्ण- सम भेदसे चतुर्धा अग्नि जिसकी समान अवस्थामें हो, सप्त धातु एवं मल-मूत्रकी क्रिया जिसकी समतुलित हों- और आत्मा, मन इन्द्रिय जिसके प्रसन्न हों, वही स्वस्थ कहलाता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि बाह्य क्रिया एवं अवरोधक औषधि, इंजेक्शन, अन्तक्षेपकोंसे यदि कुछ देरके लिये किसी रोगीको शान्ति भी पहुँचा दी जाय, परन्तु उसका प्रभाव दूर होते ही वह रोग यदि दूने वेगसे फिर उभर आये तो उससे न तो शरीरको और न आत्मा-मनको शान्ति पहुँचती है। जैसे कई बार यह देखनेमें आया है कि अज्ञानवश कोई डाक्टर मन्थरज्वरके वेग को "एस्प्रो" आदि देकर दूर करदे तो वह फिर इतने जोरसे उभरता है, कि रोगी बुरी भांति तड़फने लगता है और उस के हृदयमें बहुत घबराहट प्रतीत होती है। अतः केवल "क्षणिक स्वस्थता स्वस्थता" नहीं है, किन्तु जिसके कारण मनको आराम और आत्माको शश्वत शान्ति मिलती है वही आरोग्य है। आरोग्य सम्पन्न व्यक्ति ही सब कुछ करनेमें समर्थ हो सकता है, शरीर और मनकी अशान्तिमें न तो कुछ करनेको जी करता है, और न कुछ हो ही सकता है, क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पुरुषार्थ- आरोग्य मूलक ही हैं।

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुच्यते"

निर्बल, रोगग्रस्त व्यक्तिकी, सब प्रकारकी इच्छाएँ दरिद्र मनोरथकी भांति उत्पन्न और विलीन होती रहती है। वह कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। अतः "एक तन्दुरस्ती हजार न्यामत" यह लोकोक्ति अक्षरशः सत्य है।

किन्तु, इस स्वस्थताको प्राप्त करनेके उपाय जानना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। यद्यपि आधुनिक सरकार द्वारा प्रजाके स्वास्थ्यके संरक्षणोपाय "हेल्थ डिपार्टमेण्ट" के डाक्टरों द्वारा समय-समय पर बताये जाते हैं। बाहरी उपचार-- जैसे हैजेके निवारणके लिये मच्छरोंको मारना, खड्डे भरना, अवरोधक उपायों द्वारा रोगोंके कीटाणुओंको मारना आदि किये जाते हैं, किन्तु खेद है कि इन उपायोंसे रोग निवृत्ति होनेके बजाय "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की" की उक्ति अधिक चरितार्थ हो रही है।

दूसरा कारण पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका केवल बाह्य उपचार करना ही है। आत्मा और मनकी वास्तविक प्रसन्नताकी ओर उनका लक्ष्य नहीं है, इसीलिये उनके उपचारसे रोगीको पूर्णरूपेण शान्ति नहीं प्राप्तहो हो सकती, किन्तु आयुर्वेदमें आत्मा, मन, शरीरको स्वस्थताके लक्ष्यमें रखकर उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं, रोगीके रोगको हटानेके साथ-साथ रोग कभी उत्पन्न ही न हो, इस प्रकारके स्वास्थ्य सूत्रोंका निर्देश 'आयुर्वेद'

में प्राप्त है। तदनुसार आचरण करनेसे सर्वविध स्वस्थताका मनुष्य अधिकारी हो सकता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि ग्रन्थोंमें तदनुकूल एवं धार्मिक नियमोंके पालनके साथ रोग निवर्तक उपायोंका संकलन है, जिनके अनुसार कार्य करने वाले व्यक्तिके मन और आत्मा शरीर तीनों स्वस्थ रह सकते हैं, और वह सच्चे अर्थमें आरोग्य शाली बन सकता है। अतः आयुर्वेदानुसार आरोग्य प्राप्तिके उपाय निर्दिष्ट किये जाते हैं।

आरोग्य प्राप्तिके उपाय—

''नित्यं हिताहारविहारसेवी,
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।

दाता समः सत्यपरः क्षमावान्
आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥''

१— सदा हितकारक मित आहार एवं विहार करो।
२— विचार पूर्वक और देखकर कार्य करो।
३— इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त मत रहो।
४— दीन दुखियों एवं सहायता चाहने वालोंको सहायता और दान देना चाहिये।
५— सदा सत्य भाषण करो।
६— क्षमाशील बन।
७— आप्त व्यक्तियों (गुरुजनों अपनेसे बड़ों और यथार्थवादी विश्वस्तों) की सेवा करते रहो।

इन आज्ञाओंको पालन करने वाले व्यक्ति रोग रहित रहते हैं।

मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं, सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे, यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

१— बुद्धि, वचन कर्मसे सुखकी चाह होनी चाहिये।
२— मनको सदा कार्यमें लगाये रहना चाहिए।
३— बुद्धिको सदा विशाल बनाये रक्खे।
४— ज्ञानका संचय करता रहे।
५— कष्टसहिष्णु हो।
६— कार्यमें तत्परता हो।

ऐसे मनुष्योंके पास रोग नहीं फटकते हैं।

हैमन्तिकं दोषचयं वसन्ते, प्रवाहयन् ग्रैष्मिकमभ्रकाले
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक्, प्राप्नोति रोगानृतुजान्न ...

जो व्यक्ति हेमन्तमें संचित होने वाले दोषोंको वसन्त में वमन और विरेचन द्वारा निकाल देता है, ग्रीष्ममें संचित दोषोंको बरसातमें एवं वर्षामें संचित दोषोंको शरद् ऋतुमें बाहर निकाल देता है, उसे सामयिक रोग नहीं होते हैं।

'पथ्याशी व्यायामी स्त्रीषु जितात्मा नरो न रोगी स्यात्।'

पथ्यानुसार भोजन करने वाला, नित्य व्यायाम करने वाला, ब्रह्मचर्यका पालन करने वाला मनुष्य रोगी नहीं होता है।

क्योंकि कहा है:—

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥

पथ्य पूर्वक रहने वाले रोगीको औषध सेवन आवश्यक नहीं है, और अपथ्य पूर्वक रहने वालेको औषध सेवनसे कोई लाभ नहीं है।

पथ्य क्या है ?—

अशीतेनाम्भसा स्नानं पयःपानं हितं वचः।
एतद्धो मानवाः पथ्यं स्निग्धमल्पं च भोजनम्॥

शीतोष्ण जलसे स्नान करना और दूध पीना, हित बोलना, स्निग्ध और अल्प भोजन करना पथ्य है।

एक बार श्री धन्वन्तरिजी भ्रमण करने जा रहे थे मार्गमें उन्हें देखकर एक [illegible] चिड़ियाने पूछा कि—

''कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक्'' ?—

इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि—

''हितभुक् मितभुक् जितेन्द्रियो नियतः।''

अर्थात् जो हितकारक स्वल्प नियत भोजन करता है, इन्द्रियोंको अपने स्वाधीन रखता है और नियमित

में प्राप्त है। तदनुसार आचरण करनेसे सर्वविध स्वस्थताका मनुष्य अधिकारी हो सकता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि ग्रन्थोंमें सद्वृत्त एवं धार्मिक नियमोंके पालनके साथ रोग निवर्तक उपायोंका संकलन है, जिनके अनुसार कार्य करने वाले व्यक्तिके मन और आत्मा शरीर तीनों स्वस्थ रह सकते हैं, और वह सच्चे अर्थमें आरोग्य शाली बन सकता है। अतः आयुर्वेदानुसार आरोग्य प्राप्तिके उपाय निर्दिष्ट किये जाते हैं।

आरोग्य प्राप्तिके उपाय—

"नित्यं हिताहारविहारसेवी,
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावान
आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥"

१— सदा हितकारक मित आहार एवं विहार करो।

२— विचार पूर्वक और देखकर कार्य करो।

३— इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त मत रहो।

४— दीन दुखियों एवं सहायता चाहने वालोंको सहायता और दान देना चाहिये।

५— सदा सत्य भाषण करो।

६— क्षमाशील बनो।

७— आप्त व्यक्तियों (गुरुजनों अपनेसे बड़ों और यथार्थवादी विश्वस्तों) की सेवा करते रहो।

इन आज्ञाओंको पालन करने वाले व्यक्ति रोग रहित रहते हैं।

मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्ध, सत्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे, यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

१— बुद्धि, वचन कर्मसे सुखकी चाह होनी चाहिये।

२— मनको सदा कार्यमें लगाये रहना चाहिए।

३— बुद्धिको सदा विशाल बनाये रक्खे।

४— ज्ञानका संचय करता रहे।

५— कष्टसहिष्णु हो।

६— कार्यमें तत्परता हो।

ऐसे मनुष्योंके पास रोग नहीं फटकते हैं।

हैमन्तिकं दोषचयं वसन्ते, प्रवाहयन् ग्रैष्मिकमभ्रकाले
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक्, प्राप्नोति रोगानृतुजान्न जातु।

जो व्यक्ति हेमन्तमें संचित होने वाले दोषोंको वसन्त में वमन और विरेचन द्वारा निकाल देता है, गर्मीमें संचित दोषोंको बरसातमें एवं वर्षामें संचित दोषोंको शरद् ऋतुमें बाहर निकाल देता है, उसे सामयिक रोग नहीं होते हैं।

'पथ्याशी-व्यायामी-स्त्रीषु जितात्मा नरो न रोगी स्यात्'

पथ्यानुसार भोजन करने वाला, नित्य व्यायाम करने वाला, ब्रह्मचर्यका पालन करने वाला मनुष्य रोगी नहीं होता है।

क्योंकि कहा है:—

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥

पथ्य पूर्वक रहने वाले रोगीको औषध सेवन आवश्यक नहीं है, और अपथ्य पूर्वक रहने वालेको औषध सेवनसे कोई लाभ नहीं है।

पथ्य क्या है:—

अशीतेनाम्भसा स्नानं पयःपानं हितं वचः।
एतद्वो मानवाः पथ्यं स्निग्धमल्पं च भोजनम्॥

शीतोष्ण जलसे स्नान करना और दूध पीना, हित बोलना, स्निग्ध और अल्प भोजन करना पथ्य है।

एक बार श्री धन्वन्तरिजी भ्रमण करने जा रहे, मार्गमें उन्हें देखकर एक रोगार्त्त विद्वान्ने पूछा कि—

"कोऽरुक्-कोऽरुक्-कोऽरुक्"?—

उसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि—

"हितभुक् मितभुक् जितेन्द्रियो नियतः"—

अर्थात् जो हितकारक स्वल्प नियत भोजन करता है, इन्द्रियोंको अपने स्वाधीन रखता है और नियमित

-'जिज्ञासा' पर एक-दो शब्द-

[श्री पं० दीनानाथजी शर्मा शास्त्री सारस्वतः, विद्यावागीशः, विद्याभूषणः, विद्यानिधिः]



गताङ्कमें वैज्ञानिक विद्वानों के आगे एक जिज्ञासा उपस्थापितकी गई है, उस पर कुछ विचार उपस्थित किया जाता है। अवश्य ही यह विचार उत्तर पक्षके योग्य न हो सके क्योंकि मैं वैज्ञानिक नहीं, तब अन्य योग्य विद्वानोंको भी उस 'जिज्ञासा'के समाधानार्थ कुछ लिखना चाहिये, 'जिज्ञासा' सचमुच समाधेय है।

जिज्ञासु जीने विश्वरूपकी कथा श्रीमद्भागवत पुराण (६।९।१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०) से दी है। आज कल कतिपय शिक्षित लोग पुराणों को 'गप्प' मानकर उनकी कही बात पर कुछ विचार ही नहीं करना चाहते। यहां भी कदाचित् वैसा न हो; यह विचार कर उक्त पौराणिक कथा का मूल हम पहले वेदसे दिखलाते हैं। पाठकगण यह जानते होंगे कि वेद चार हैं; उनकी संहितायें ११३१ होती हैं। वे सब मिल कर 'चार वेद' कहाते हैं। चार वेद आपको कहीं न मिलेंगे। हां, चारों वेदोंकी संहितायें मिलेंगी, जो ११३१ हैं। आपको 'ऋग्वेद' कहीं न मिलेगा, ऋग्वेद-संहितायें मिलेंगी; जो २१ हैं; उनमें आजकल केवल एक (शाकल्य) संहिता मिलती है। आपको 'यजुर्वेद' किसी भी प्रेसमें छपा हुआ न मिलेगा हां, यजुर्वेद संहिताएं मिलेंगी, जो १०१ हैं; उनमें आजकल वाजसनेय, काण्व, तैत्तरीय, मैत्रायण, काठक, कठ-कपिष्ठल---यह ६ संहिताएं मिलती हैं, शेष नहीं मिली। आपको 'सामवेद' कहींसे भी न मिलेगा, किन्तु सामवेद संहितायें ही मिलेंगी; जो कि १००० हैं। उनमें आजकल कौथुम, जैमिनि, राणायनीय (का कुछ भाग) तीन संहिताएं ही मिलती हैं; शेष गुम हैं। आपको 'अथर्ववेद' कहींसे भी प्रकाशित न मिलेगा, किन्तु अथर्ववेद संहिताएं ही मिलेंगी जो ९ हैं; उनमें शौनक तथा पैप्पलाद दो

कार्य करता है, वही रोगरहित रहता है।

पुनः रोगीने प्रश्न किया ?—

"कोऽरुक्-कोऽरुक्-कोऽरुक् ?—"

उत्तर मिला कि—

"शतपदगामी वामशायी च।"

इसका थोड़े शब्दोंमें यही उत्तर है कि भोजनके बाद सौ पैर चलने वाला या वामपार्श्वमें सोने वाला रोग मुक्त रहता है।

इसी प्रकार ऋतुचर्या एवं दैनिक चर्याओंका उल्लेख बहुत सुन्दर ढंगसे आयुर्वेद शास्त्रोंमें निर्दिष्ट है। उनका आचरण करने वालोंका 'आरोग्य' बहुत बढ़िया रहता है। दैनिक चर्यामें— ब्राह्म मुहूर्त में उठना, उषः कालमें जल पीना, शौच, दन्त धावन, तैलाभ्यङ्ग, स्नान, भ्रमण, व्यायाम करना, शुद्ध सात्त्विक भोजन करना आवश्यक कर्म है।

हमारे ऋषि मुनि इनका यथावत् पालन करते थे, जिससे उनको कभी रोग होता ही नहीं था। शुद्ध वायु-में रहना, विशुद्ध आहार करना, एवं सात्त्विक विचार रखना, और "वासुदेवः सर्वमिति" समझ कर सबके प्रति पूर्ण प्रेम रखना ही 'आरोग्यका' मूल मन्त्र है।

बाहर भीतरकी शुद्धता, वस्त्रोंकी स्वच्छता, मनकी विशालता, बुद्धिकी निर्मलता, आरोग्य प्राप्तिमें विशेष सहायक होती है, अतः आरोग्य प्रेमियोंको इन बातों पर ध्यान देकर अपने आरोग्यकी संरक्षामें लगना चाहिए।



—'जिज्ञासा' पर एक-दो शब्द—

[श्री पं० दीनानाथजी शर्मा शास्त्री सारस्वत, विद्यावागीश, विद्याभूषण, विद्यानिधि]

गताङ्कमें वैज्ञानिक विद्वानों के आगे एक जिज्ञासा उपस्थापितकी गई है, उस पर कुछ विचार उपस्थित किया जाता है। अवश्य ही यह विचार उत्तर पक्षके योग्य न हो सके क्योंकि मैं वैज्ञानिक नहीं, तब अन्य योग्य विद्वानोंको भी उस 'जिज्ञासा'के समाधानार्थ कुछ लिखना चाहिये, 'जिज्ञासा' सचमुच समाधेय है।

जिज्ञासु जीने विश्वरूपकी कथा श्रीमद्भागवत पुराण (६।६।१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०) से दी है। आज कल नवशिक्षित लोग पुराणों को 'गप्प' मानकर उनकी कही बात पर कुछ विचार ही नहीं करना चाहते। वहां भी कदाचित् वैसा न हो; यह विचार कर उक्त पौराणिक कथा का मूल हम पहले वेदसे दिखलाते हैं। पाठकगण यह जानते होंगे कि वेद चार हैं; उनकी संहितायें ११३१ होती हैं। वे सब मिल कर 'चार वेद' कहाते हैं। चार वेद आपको कहीं न मिलेंगे। हां, चारों वेदोंकी संहितायें मिलेंगी, जो ११३१ हैं। आपको 'ऋग्वेद' कहीं न मिलेगा, ऋग्वेद-संहितायें मिलेंगी, जो २१ हैं; उनमें आजकल केवल एक (शाकल्य) संहिता मिलती है। आपको 'यजुर्वेद' किसी भी प्रेसमें छपा हुआ न मिलेगा हां, यजुर्वेद संहिताएं मिलेंगी, जो १०१ हैं; उनमें आजकल वाजसनेय, काण्व, तैत्तरीय, मैत्रायणी, काठक, कठकपिष्ठल---यह ६ संहिताएँ मिलती हैं, शेष नहीं मिली। आपको 'सामवेद' कहींसे भी न मिलेगा, किन्तु सामवेद संहितायें ही मिलेंगी; जो कि १००० हैं। उनमें आजकल कौथुम, जैमिनि, राणायनीय (का कुछ भाग) तीन संहिताएँ ही मिलती हैं; शेष गुम हैं। आपको 'अथर्ववेद' कहींसे भी प्रकाशित न मिलेगा, किन्तु अथर्ववेद संहिताएं ही मिलेंगी जो ९ हैं; उनमें शौनक तथा पैप्पलाद दो

कार्य करता है, वही रोगरहित रहता है।

पुनः रोगीने प्रश्न किया ?—

"कोऽरुक्-कोऽरुक्-कोऽरुक् ?—"

उत्तर मिला कि—

"शतपदगामी वामशायी च।"

इसका थोड़े शब्दोंमें यही उत्तर है कि भोजनके बाद सौ पैर चलने वाला या वामपार्श्वमें सोने वाला रोग मुक्त रहता है।

इसी प्रकार ऋतुचर्या एवं दैनिक चर्याओंका उल्लेख बहुत सुन्दर ढगंसे आयुर्वेद शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं। उनका आचरण करने वालोंका 'आरोग्य' बहुत बढ़िया रहता है। दैनिक चर्यामें— ब्राह्म मुहूर्त में उठना, उषः कालमें जल पीना, शौच, दन्त धावन, तैलाभ्यङ्ग, स्नान, भ्रमण, व्यायाम करना, शुद्ध सात्विक भोजन करना आवश्यक कर्म है।

हमारे ऋषि मुनि इनका यथावत् पालन करते थे, जिससे उनको कभी रोग होता ही नहीं था। शुद्ध वायु में रहना, विशुद्ध आहार करना, एवं सात्विक विचार रखना, और "वासुदेवः सर्वमिति" समझ कर सबके प्रति पूर्ण प्रेम रखना ही 'आरोग्यका' मूल मन्त्र है।

बाहर भीतरकी शुद्धता, वस्त्रोंकी स्वच्छता, मनकी विशालता, बुद्धिकी निर्मलता, आरोग्य प्राप्तिमें विशेष सहायक होती है, अतः आरोग्य प्रेमियोंको इन बातों पर ध्यान देकर अपने आरोग्यकी संरक्षामें लगना चाहिए।



संहिताएँ मिलती हैं, शेष नहीं मिलीं। इस सब कथन का निष्कर्ष यही है कि वेद, संहितारूप ही हैं, संहिताओं से भिन्न वेद कहीं नहीं मिल सकता।

इसमें यजुर्वेद के दो भेद हैं, एक शुक्ल और दूसरा कृष्ण। कृष्णकी संहिताएँ ८६ होती हैं, शुक्लकी १५। इनमें शुक्लकी दो वाजसनेय, काण्व संहिताएँ मिलती हैं। शेष नहीं। कृष्णकी तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक, कठकपिष्ठल ये चार संहिताएँ मिलती हैं; अवशिष्ट लुप्त हैं। यह ११३१ संहिताएँ ही वेदका 'मंत्रभाग' है। दूसरा है वेदका भाग 'ब्राह्मण भाग'। वह भी इतना ही होता है; क्योंकि शब्द और अर्थका सम्बन्ध नित्य होता है। उसके भी ११३१ ब्राह्मण होते हैं, पर वे भी बहुत थोड़ी संख्यामें प्राप्त हैं। ब्राह्मण भागमें उपनिषद् तथा आरण्यक भी अन्तर्गत हो जाते हैं। मंत्रभाग और ब्राह्मणभाग दोनों मिल कर वेद पूर्ण बनता है। इस बातका ज्ञान प्रत्येक द्विजके लिये अपेक्षित है। हमने इस विषय पर मीमांसा श्री 'स्वाध्याय' के तृतीय वर्षकी २-३-४ तथा चतुर्थ वर्ष की १-२-३-४ तथा पञ्चम वर्ष की प्रथम इन आठ संख्याओंके ४० स्तम्भोंमें की है, पाठक उक्त संख्याएँ मंगा कर उक्त लेखमाला देख सकते हैं। अस्तु।

'श्रीमद्भागवतपुराण' प्रोक्त विश्वरूपकी आख्यायिका का बीज हमें कृष्ण-यजुर्वेदकी 'तैत्तिरीय संहिता'में मिलता है, जिसका अपेक्षित उद्धरण नीचे दिया जाता है। (२ काण्ड, ५ प्रपाठक, १ अनुवाक—)

'विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवनामासीत्, स्वस्त्रीयो-सुराणाम् (त्वष्टाका लड़का विश्वरूप देवताओंका पुरोहित बना, वह दैत्यों का भानजा था)। तस्य त्रीणि शीर्षाणि आसन्, सोमपानं सुरापानम्, अन्नादनं (उसके सोम, सुरा, अन्न खाने-पीने वाले तीन मुख थे)। 'स प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमवदत्, परोक्षमसुरेभ्यः (वह देवताओंको भाग प्रत्यक्ष देता था, दैत्योंको गुप्त रूप से)। तस्माद् इन्द्रोऽबिभेद्-ईदङ् वै राष्ट्रं विपर्यावर्तयतीति, तस्य वज्रमादाय शीर्षाणि अच्छिनत् (१) (यह देखकर इन्द्रने वज्रसे उसके सिर काट डाले।) यत् सोमपानमासीत्, स कपिञ्जलोऽभवद्, यत् सुरापानं स कलविङ्को यद् अन्नादनं स तित्तिरिः। (उससे कपिञ्जल, कलविङ्क, तीतर बने)।

'तस्य अञ्जलिना ब्रह्महत्यामुपागृह्णात्, तां संवत्सरमबिभः; तं भूतानि अभ्यक्रोशन् ब्रह्महन्निति (इससे इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी; उसे सब 'ब्रह्महत्यारा' कहते थे। १ साल तक उसने यह ब्रह्महत्या रखी)। स पृथिवीमुपासीदद् अस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रतिगृहाणेति। साब्रवीद्-वरं वृणै खातात् पराभविष्यन्ती मन्ये, ततो मा पराभूवमिति। (इन्द्रने पृथ्वीको ब्रह्महत्या का तृतीय भाग लेनेके लिये कहा; उसने गढ़ा पूर्ण हो जाने का वर मांगा) (२) 'पुरा ते संवत्सरादपि रोहाद्-इत्यब्रवीत्' (इन्द्रने वर दे दिया)। अस्यै तृतीय ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णात्, तत् इरिणमभवत् (यहाँ ऊषर ब्रह्महत्याका चिह्न हुआ।) स वनस्पतीन् उपासीदत्, ते ऽब्रुवन्-वृक्णात् मा पराभूम। आव्रश्चनाद् वो भूयांस उत्तिष्ठान्-इत्यब्रवीत्। सनिर्यासो ऽभवत् (३-४) (वृक्षोंमें ब्रह्महत्या गोंद रूपमें प्राप्त हुई।)

'स स्त्रीष सादमुपासीदद्, अस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रतिगृह्णीतेति। ता अब्रुवन् वरं वृणामहै-ऋत्वियात् प्रजां विन्दामहै, कामनाविजनितोः सम्भवाम' इति (स्त्रियोंको ब्रह्महत्या ऋतु दी गई, उनको वर मिला कि प्रसवसे पूर्व तक तुम्हें रति प्राप्त होगी) (५)। यहाँ पर यह ध्यान रखे कि यहांका यह वाक्य (काममाविजनितोः सम्भवाम) पाणिनिने (३।४।१६) इस छान्दस सूत्रके उदाहरणमें दिया है; 'छन्द' वेदको कहते हैं; अतः 'तैत्तिरीयसंहिता' वेद सिद्ध हुई। पुराणसे वेदमें इतना अन्तर है कि पुराणमें ब्रह्महत्याके ४ भाग किये गये हैं; पर वेदमें तीन। अथवा श्रीमद्भागवतने किसी अन्य संहिताके वचनसे उक्त बात ली हो। आगे वेदने तीन रात्रि तक रजस्वलाके लिए व्रत लिखे हैं। 'यां मलवद्वाससं सम्भवन्ति, यस्ततो जायते सोऽभिशस्तः, या स्नाति तस्या अप्सु मारुकः, या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः, तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेद्, अञ्जलिना वा पिबेदखर्वेण वा' (६) यहाँ पर तीन दिन तक स्त्रीको रति, स्नान, तथा छोटे पात्रसे पानी पीनेका निषेध किया

संहिताएँ मिलती हैं; शेष नहीं मिलीं। इस सब कथन का निष्कर्ष यही है कि वेद, संहितारूप ही हैं, संहिताओं से भिन्न वेद कहीं नहीं मिल सकता।

इसमें यजुर्वेद के दो भेद हैं, एक शुक्ल और दूसरा कृष्ण। कृष्णकी संहिताएँ ८६ होती हैं, शुक्लकी १५। इनमें शुक्लकी दो वाजसनेय, कारव संहिताएँ मिलती हैं। शेष नहीं। कृष्णकी तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक, कठकपिष्ठल ये चार संहिताएँ मिलती हैं; अवशिष्ट लुप्त हैं। यह ११३१ संहिताएँ ही वेदका 'मंत्रभाग' है। दूसरा है वेदका भाग 'ब्राह्मण भाग'। वह भी इतना ही होता है; क्योंकि शब्द और अर्थका सम्बन्ध नित्य होता है। उसके भी ११३१ ब्राह्मण होते हैं, पर वे भी बहुत थोड़ी संख्यामें प्राप्त हैं। ब्राह्मण भागमें उपनिषद् तथा आरण्यक भी अन्तर्गत हो जाते हैं। मंत्रभाग और ब्राह्मणभाग दोनों मिल कर वेद पूर्ण बनता है। इस बातका ज्ञान प्रत्येक द्विजके लिये अपेक्षित है। हमने इस विषय पर मीमांसा श्री स्वाध्याय' के तृतीय वर्षकी २-३-४ तथा चतुर्थ वर्ष की १-२-३-४ तथा पञ्चम वर्ष की प्रथम इन आठ संख्याओंके ४० स्तम्भोंमें की है, पाठक उक्त संख्याएँ मंगा कर उक्त लेखमाला देख सकते हैं। अस्तु।

'श्रीमद्भागवतपुराण' प्रोक्त विश्वरूपकी आख्यायिका का बीज हमें कृष्ण-यजुर्वेदकी 'तैत्तिरीय संहिता'में मिलता है, जिसका अपेक्षित उद्धरण नीचे दिया जाता है। (२ काण्ड, ५ प्रपाठक, १ अनुवाक—)

'विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवनामासीत्, स्वस्रीयोऽसुराणाम् (त्वष्टाका लड़का विश्वरूप देवताओंका पुरोहित बना, वह दैत्यों का भानजा था)। तस्य त्रीणि शीर्षाणि आसन्, सोमपानं सुरापानम्, अन्नादनं (उसके सोम, सुरा, अन्न खाने-पीने वाले तीन मुख थे)। 'स प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमवदत्, परोक्षमसुरेभ्यः (वह देवताओंको भाग प्रत्यक्ष देता था, दैत्योंको गुप्त रूप से)। तस्माद् इन्द्रोऽबिभेद्-ईदृङ् वै राष्ट्रं विपर्यावर्तयतीति, तस्य वज्रमादाय शीर्षाणि अच्छिनत् (१) (यह देखकर इन्द्रने वज्रसे उसके सिर काट डाले।) यत् सोमपानमासीत्, स कपिञ्जलोऽभवद्, यत् सुरापानं स कलविङ्को यद् अन्नादनं स तित्तिरिः। (उससे कपिञ्जल, कलविङ्क, तीत्तर बने)।

'तस्य अञ्जलिना ब्रह्महत्यामुपागृह्णात्, तां संवत्सरमबिभः; तं भूतानि अभ्यक्रोशन् ब्रह्महन्निति (इससे इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी; उसे सब 'ब्रह्महत्यारा' कहते थे। १ साल तक उसने यह ब्रह्महत्या रखी)। स पृथिवीमुपासीदद् अस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रतिगृहाणेति। साब्रवीद्-वरं वृणै खातात् पराभविष्यन्ती मन्ये, ततो मा पराभूवमिति। (इन्द्रने पृथ्वीको ब्रह्महत्या का तृतीय भाग लेनेके लिये कहा; उसने गढ़ा पूर्ण हो जाने का वर मांगा) (२) 'पुरा ते संवत्सरादपि रोहाद्-इत्यब्रवीत्' (इन्द्रने वर दे दिया)। अस्यै तृतीय ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णात्, तत् इरिणमभवत् (यहां ऊषर ब्रह्महत्याका चिह्न हुआ।) स वनस्पतीन् उपासीदत्, ते ऽब्रुवन्-वृक्णात् मा पराभूम। आव्रश्चनाद् वो भूयांस उत्तिष्ठान्-इत्यब्रवीत्। सनिर्यासोऽभवत् (३-४) (वृक्षोंमें ब्रह्महत्या गोंद रूपमें प्राप्त हुई।)

'स स्त्रीष सादमुपासीदद्, अस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रतिगृह्णीतेति। ता अब्रुवन् वरं वृणामहै-ऋत्वियात् प्रजां विन्दामहै, कामनाविजनितोः सम्भवाम' इति (स्त्रियोंको ब्रह्महत्या ऋतु दी गई, उनको वर मिला कि प्रसवसे पूर्व तक तुम्हें रति प्राप्त होगी) (५)। यहां पर यह ध्यान रहे कि यहांका यह वाक्य (कामभाविजनितोः सम्भवाम) पाणिनिने (३।४।१६) इस छान्दस सूत्रके उदाहरणमें दिया है; 'छन्द' वेदको कहते हैं; अतः 'तैत्तिरीयसंहिता' वेद सिद्ध हुई। पुराणसे वेदमें इतना अन्तर है कि पुराणमें ब्रह्महत्याके ४ भाग किये गये हैं; पर वेदमें तीन। अथवा श्रीमद्भागवतने किसी अन्य संहिताके वचनसे उक्त बात ली हो। आगे वेदने तीन रात्रि तक रजस्वलाके लिए व्रत लिखे हैं। 'यां मलवद्वाससं सम्भवन्ति, यस्ततो जायते सोऽभिशस्तः, या स्नाति तस्या अप्सु मारुकः, या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः, तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेद्, अञ्जलिना वा पिबेदखर्वेण वा' (६) यहां पर तीन दिन तक स्त्रीको रति, स्नान, तथा छोटे पात्रसे पानी पीनेका निषेध किया

है। वहां का 'या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः' यह वाक्य वार्तिककारने 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थीति वाच्यम्' (वा० २।३।६२) इस छान्दस वार्तिकमें उदाहृत किया है, श्रीपतञ्जलिने उसे उद्धृत किया है। 'छन्द' वेदको कहते हैं—यह सर्वसम्मत है; तब यह 'कृष्णयजुर्वेदतैत्तिरीयसंहिता' भी वेद हुई। आजकलके अर्वाचीन सम्प्रदाय कृष्णयजुर्वेदको वेद नहीं मानते; परन्तु प्राचीन सभी इसे वेद मान गये हैं। इस बातके ज्ञानार्थ हमें प्रकरणवश यह लिख देना पड़ा।

अब इस आख्यायिकामें तो वेद पुराणकी एक वाक्यता हो गई; अतः केवल पुराण की बात बता कर यह बात उड़ाने लायक न रही। अब प्रस्तुत शङ्काएं यह की गई हैं कि—"विश्वरूपवधके पूर्वकालमें स्त्रियोंको मासिक ऋतुस्राव होता था या नहीं। यदि होता था तो स्पर्शास्पर्शका विचार था या नहीं? यदि नहीं होता था तो ऋतुस्रावके बिना सन्तति होती नहीं, फिर सन्तति कैसे होती थी?"

इस पर मेरा यह विचार है कि, उक्त आख्यायिका देव-दैत्योंकी बताई गई है। देव-दैत्योंकी सृष्टि मनुष्योंसे पूर्व हुई—यह बात 'मनुस्मृति' १।३६, १।३९ श्लोकोंसे स्पष्ट है। विश्वरूप की आख्यायिकाके समय सम्भवतः मानुषी सृष्टि प्रारम्भ हो गई हो। उस समय मानुषी सृष्टिका प्रारम्भ होनेसे मनःशुद्धिके कारण स्त्रियोंको रजःस्राव न हुआ करता हो—यह असम्भव नहीं। फिर उक्त काण्डके कारण आरम्भिक स्त्रियोंको ब्रह्महत्याका अंश देनेसे रजस्राव प्रारम्भ हो गया हो—इसमेंभी असम्भव प्रतीत नहीं होता। देवता एवं ऋषि-मुनियोंमें प्रकृतिके नियमोंके परिवर्तन परिवर्धन-सङ्कोचनमेंभी शक्ति हुआ करती है। 'ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्, तद्धर्मानभिघातश्च' (४५) यह 'योगदर्शन' के विभूतिपादका सूत्र है। इनमें आठ सिद्धियां बताई गई हैं। 'कामावसायित्व' सिद्धिको स्पष्ट करते हुए व्यासभाष्यमें लिखा है—'कामावसायित्वं-सत्यसङ्कल्पता; यथा सङ्कल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थानम्। न च शक्तोऽपि पदार्थविपर्यासं करोति'। अर्थात् योगी अपने सङ्कल्पानुसार प्राणियोंकी प्रकृति भी बना सकता है; पर शक्ति होने पर भी पदार्थके धर्ममें विपरीतता नहीं करता कि जलको तेज बना दे, धर्मको अधर्म बना दे। अन्यथा जगत् में अव्यवस्था हो जाय।' इससे सिद्ध हुआ कि जब योगीमें अपने सङ्कल्पानुसार भूत प्रकृति-निर्माण में शक्ति होती है, पर वह प्रजापतिके नियमोंमें अव्यवस्थाके डरसे नहीं करता; तो जन्म सिद्ध योगी देवताओंमें वह शक्ति स्वयं होगी ही। जब परमात्मा अपनी सृष्टिमें वैसा नियम प्रवृत्त करना चाहे; और वह उस ऋषि, मुनि वा देवताको प्रवृत्त कर दे; तो पूर्वके नियममें कुछ परिवर्तन हो सकता है। उक्त भाष्य पर श्रीविज्ञानभिक्षुका 'योगवार्तिक' भी है। उसमें लिखा है—'स्वनियमपालनार्थमन्तर्यामिणा तथैव सिद्धः प्रेर्यते इति द्रष्टव्यम्'। अर्थात् योगीमें यद्यपि पदार्थके धर्मविपर्यासकी शक्ति होती है; पर परमात्मा योगीको वैसी प्रेरणा करता है—जिससे उसका नियम न टूटे। पर जब वह अपने नियमका स्वयं परिवर्तन चाहता होगा; तो वही काम उसमें शक्त योगी-देवताको प्रेरित करके कर लेता होगा। उसी अवसर पर वर-शापों की प्रवृत्ति होती है। प्रायः वर-शाप तो वैयक्तिक हुआ करते हैं; अतः उनके सिद्ध हो जानेमें तो अपवाद हो जानेमें सामान्य नियमोंमें परिवर्तन न होनेसे परमात्मा वा प्रकृतिके नियमोंमें रद्दोबदल नहीं होती; परन्तु कई वर-शाप ऐसे भी हो सकते हैं—जो आगेके लिए सदा ही उस उस जातिमें प्रवृत्त रहें। यही बात यहां पर भी हो सकती है। परमात्माके शक्ति-स्वरूप इन्द्रसे ब्रह्महत्या हुई; और उसने उसे बांट दिया, लेने वालोंको वर भी दे दिया।

अब यह शङ्का रह जाती है कि 'विश्वरूपके वधसे पूर्व जब स्त्रियोंको रजःस्राव नहीं होता था, तो पहले सन्तान कैसे होती थी? शुक्रशोणितके संयोगसे ही सन्तति उत्पन्न हुआ करती है—इसमें आयुर्वेदादि शास्त्रियोंकी साक्षी है'— इस पर यह जानना चाहिये कि सृष्टिके आरम्भकालमें पुरुषोंके मनमें ऐसी प्रबलता थी कि उनके मानसिक सङ्कल्पसे ही सन्तान हो जाती थी। वेद पुराण

आदिमें ऐसी भी उत्पत्तियोंका वर्णन मिलता है----जो बिना संयोग के मनोबलसे उत्पन्न हो गईं। दूसरा वर्णन मिलता है कि किसीका शुक्रपात हो गया, वह इतना अमोघ था कि उसीसे लड़का बन गया, न तो वहां गर्भाशयकी आवश्यकता रही, न शोणित संयोगकी।

अन्य बात यह है कि जब स्त्रियोंका ऋतुस्राव नहीं भी होता था, तो इससे क्या हुआ? उन स्त्रियोंके भीतर तो आर्तव होता था। अब भी तो ऋतुस्रावके दिनों में स्त्री गमनका निषेध है। चौथे दिन प्रायः ऋतु अन्दर हो जाता है, छठे सातवें दिन तो सर्वथा अन्दर हो जाता है; क्या उस समय गर्भाधान स्त्रियोंको नहीं होता? इससे ऋतुस्राव तो गर्भका कारण न बना, किन्तु ऋतु ही गर्भका कारण हुआ। मैं जब मुलतानमें था; तो एक किरायेके मकानमें रहता था। उसके साथके कमरेमें प्रौढ़ दम्पत्ति रहा करते थे। उनकी तीन विवाहिता लड़कियां समय-समय पर आया करती थीं। उनमें मध्यम लड़कीकी दो-तीन सन्तानें थीं। मुझे पता लगा था कि वह रजस्वला सर्वथा नहीं होती, उसकी अवस्था उन दिनों २३-२४ वर्षके लगभग थी समय पर उसे गर्भ हो जाया करता था। इससे सिद्ध हुआ कि गर्भमें कारण ऋतुस्राव नहीं, किन्तु ऋतु है, वह उसके अन्दर होगा ही।

एक अन्य घटना सुनिये। मेरे जन्मस्थान शुजबाद (मुलतान)में एक 'गिदरा भक्त' नामक व्यक्ति था। उसका कोई लड़का नहीं था। उसकी स्त्रीका ऋतु समाप्त हो चुका था, उस समय कदाचित् उस स्त्रीकी अवस्था ४५-४६ वर्षके लगभग वा इससे कुछ बड़ी थी। सन्तानकी अब कोई आशा रही भी नहीं थी। पर इसके एक दो वर्षके बाद उसका उसी स्त्रीसे लड़का उत्पन्न हुआ। इससे मानना पड़ेगा कि गर्भका कारण ऋतु है, ऋतुस्राव नहीं। ऋतुकी समाप्ति आयुर्वेदानुसार ५० वर्षके बाद होती है, और प्राकट्य होता है १२ वर्षके बाद। पर १०-११ वर्षकी लड़कियोंके भी लड़के उत्पन्न हुए देखें सुने जाते हैं, इसमें कारण भीतरी ऋतु ही मानना पड़ेगा। अतः इस शङ्काका तो समाधान हो गया कि विश्वरूपवधसे पूर्व जब स्त्रियोंका ऋतुस्राव नहीं होता था, तो सन्तान कैसे होती थी? विश्वरूपके वधके बाद ऋतुस्राव स्त्रियोंका प्रारम्भ हो गया होगा। उससे पूर्व ऋतुस्राव न होनेसे स्त्रियोंकी अस्पृश्यता भी नहीं मानी जाती रही होगी, कारण यह है कि ब्रह्महत्यासे सम्बन्ध तो उनका अब हुआ, अतः अस्पृश्यता भी अभी मानी जानी उचित है, पहले क्यों मानी जाती?

ऋतुका बाह्य प्राकट्य ही ब्रह्महत्याका चिन्ह था, तभी उनका स्पर्श निषिद्ध हुआ। कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय संहितामें पूर्वोक्तके आगे लिखा है—

'तस्माद् ऋत्वियात् स्त्रियः प्रजां विन्दन्ते, काम माविजनितोः सम्भवन्ति, आसां तृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णन्, सा मलवद्वासा (रजस्वला) अभवत् (२।५।१।५) इस कारण स्त्रियां ऋतुसे सन्तानको प्राप्त करती हैं, प्रसवसे पूर्व तक रत्यानन्द लेती हैं, ब्रह्महत्याका तृतीय भाग स्त्रीने यही लिया कि वह मलिन वस्त्रा (रजस्वला) होती है। अब आगे उसी रजस्वलाकी अस्पृश्यता कहते हैं—'तस्मान्मलवद्वाससा न संवदेत, न सह आसीत, न अस्या अन्नमद्याद्, ब्रह्महत्यायै ह्येषा वर्णं प्रतिमुच्य आस्ते' (६) अर्थात्—ब्रह्महत्या लेनेके कारण तीन दिन उस रजस्वलासे न बातचीत करे, न उसके साथ बैठे, न उसका अन्न खावे, इत्यादि।

इससे ऋतुका बाहर आना ही ब्रह्महत्याका चिन्ह हुआ भीतर तो ऋतु सोलह दिन तक रहता है, पर इससे वह अस्पृश्या नहीं होती। अतः विश्वरूप वधसे पूर्व ऋतुके बाहर प्राकट्य न होनेसे स्त्रियां अस्पृश्या भी नहीं मानी जाती रही होंगी। 'महाभाष्य'के प्रत्याहाराह्निकमें एक वार्तिक आता है---'नाऽव्यपवृक्तस्य अवयवस्य तद्विधिर्यथा द्रव्येषु'। इसका भाव यह है कि अव्यपवृक्त (अभिन्न)में भिन्न व्यपवृक्त अवयववाला व्यवहार नहीं हुआ करता। हमारे अन्दर मल अव्यपवृक्तरूपसे है। मल अशुद्ध माना जाता है। पर उसके अन्दर होनेसे हम अशुद्ध नहीं माने जाते। पर जब वही मल हमसे व्यपवृक्त हो जाय, हम उसका स्पर्श कर लें तो हम अशुद्ध हो जाते हैं। यही बात रजःके भीतर बाहर होने पर भी जाननी

चाहिये। शुक्र भी तो मल होनेसे अशुद्ध माना जाता है। अव्यपवृक्त जब तक वह है, तब तक तो हम उससे अशुद्ध नहीं हैं। जब हम उसे व्यपवृक्त करते हैं, तो उसके स्पर्शसे हमें शुद्धि करनी पड़ती है।

आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, ज्योतिषमें लिखे हुए ऋतुस्रावके वर्णन को विश्वरूपके वधके बादका ब्रह्महत्या प्रदान-कालीन ही समझना चाहिये। यह घटना भी तो सृष्टिके आरम्भकालकी ही जाननी चाहिये। बहुत पीछेकी नहीं, जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है। पहलेके ऋतुकालके अभावमें रजके कीटाणुओंमें ब्रह्महत्याका सम्बन्ध न रहा होगा। विश्वरूपवधके बाद रजके कीटाणुओंका सम्बन्ध ब्रह्महत्यासे हो जाने पर उनका अन्दर रहना हानिकारक समझकर प्रकृति उस दिनसे उसे प्रतिमास बाहर कर देने लगी होगी, जो अब तक भी वैसे ही प्रचलित है। उस समय तीन दिन तक उसके प्रवाहमें स्त्रीसे संभोग करने वाला भी ब्रह्महत्यारा माना जा सकता है सृष्टिके आरम्भकालसे बहुत सबय तक अमैथुनिक सृष्टि चलती है- यह बात सर्व सम्मत है, अतः आरम्भमें स्त्रियोंका ऋतुप्राकट्य न होकर मैथुनिक सृष्टिमें उक्तकांड वश प्रारम्भ हुआ हो, इसमें असम्भव कुछ भी नही।

इस कार्यको प्रारम्भ कर प्रकृतिने पुरुषोंका बहुत लाभ कर दिया। एक तो उस दिनसे लेकर १६ दिन तक ही गर्भ काल है---यह पता लग जाता है। दूसरा ऋतुके बन्द होनेसे गर्भ हो जानेका ज्ञान हो जाता है। तीसरा ज्ञानी पुरुष जो कामी न होंगे. केवल सन्तानार्थ ही स्त्री सम्भोग चाहेंगे, उनको १६ दिनोंके बाद शेष दिन अलग रहजानेका अवसर मिलेगा। चौथा जो कामी तो होंगे, पर सन्तान पर्याप्त होनेसे अन्य सन्तान लेना नहीं चाहेंगे, वे पहले १६ दिनोंको किसी प्रकार बिता कर शेष दिन उपयोगमें लेंगे, तो उन्हें गर्भनिरोधक औषधियोंका उपयोग करके अपनी स्त्रियोंके स्वास्थ्य पर वज्रपात न करना पड़ेगा। ऋतुस्रावसे अन्य यह लाभ भी सङ्केतित होता है कि पूर्व समयमें स्त्रीका रत्यानन्द नहीं आता होगा। मानसिक व अमैथुनिक सृष्टिमें रत्यानन्दका क्या काम? इसके प्रारम्भ होनेसे वह (रत्यानन्द) भी स्त्रीको मिलने लगा। प्रतिमास ऋतुस्राव होनेसे स्त्रीका स्वास्थ्य भी यथावत् बना रहता है, उसके मानसिक दोष भी इसीमें प्रवाहित हो जाते हैं।

जो व्यक्ति विश्वरूपकी आख्यायिका, ब्रह्महत्यादि न मानना चाहें, उन्हें यह मान लेना चाहिए कि यह रजस्वलाके अस्पृश्यत्वका भूतार्थवाद है। भूतार्थवादमें इतिहासको वास्तविक न मान कर केवल उसका तात्पर्य ही माना जाता है। पर हमारा विचार है कि यह अर्थवाद नहीं। अन्य संहिताओंमें भी जिन्हें आजकल वेद माना जाता है, इसका सङ्केत मिलता है—'त्वाष्ट्रस्य चिद् विश्वरूपस्य गोनाम् आचक्राणः त्रीणि शीर्षा परावर्क्' (ऋग्वेद शाकल्य संहिता १०।८।६) इस मन्त्रका ऋषि त्वाष्ट्र (त्वष्टाका लड़का) त्रिशिराः (तीन सिर वाला) है, देवता इन्द्र है। इस मन्त्रमें त्वष्टाके लड़के विश्वरूपके तीन सिरोंको काटनेका संकेत आया है।

जिज्ञासु महोदयकी शंकाओंका विवेचन समाप्त हो जानेसे यह निबन्ध भी समाप्त किया जाता है। उनकी जिज्ञासा थी तो 'वैज्ञानिक विद्वानों' के आगे। मैं 'वैज्ञानिक' विद्वान् तो हूँ नहीं, अतः मेरा इस पर लिखनेका कुछ अधिकार तो नहीं था, पर इस दिशामें अनुसन्धाताओंको आगे सरकनेका मार्ग मिलेगा--- यह सोचकर 'एक-दो शब्द' लिख दिये हैं। अब श्री कालीचरणजी शर्मा ज्योतिषी महोदयको हमारे इस निबन्धसे सन्तोष हुआ या नहीं, तथा अन्य पाठकोंको भी इससे सन्तोष हुआ या नहीं----यह तो वे ही बता सकते हैं।



चाहिये। शुक भी तो मल होनेसे अशुद्ध माना जाता है। अव्ययवृक्त जब तक वह है, तब तक तो हम उसे अशुद्ध नहीं है। जब हम उसे व्ययवृक्त करते हैं, तो उसके स्पर्शसे हमें शुद्धि करनी पड़ती है।

आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, ज्योतिषमें लिखे हुए ऋतुस्रावके वर्णन को विश्वरूपके वधके बादका ब्रह्महत्या प्रदानकालीन ही समझना चाहिये। यह घटना भी तो सृष्टिके आरम्भकालकी ही जाननी चाहिये। बहुत पीछेकी नहीं, जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है। पहलेके ऋतुकालके अभावमें रजके कीटाणुओंसे ब्रह्महत्याका सम्बन्ध न रहा होगा। विश्वरूपवधके बाद रजके कीटाणुओंका सम्बन्ध ब्रह्महत्यासे हो जाने पर उनका अन्दर रहना हानिकारक समझकर प्रकृति उस दिनसे उसे प्रतिमास बाहर कर देने लगी होगी, जो अब तक भी वैसे ही प्रचलित है। उस समय तीन दिन तक उसके प्रवाहमें स्त्रीसे संभोग करने वाला भी ब्रह्महत्यारा माना जा सकता है सृष्टिके आरम्भकालसे बहुत समय तक अमैथुनिक सृष्टि चलती है- यह बात सर्व सम्मत है, अतः आरम्भमें स्त्रियोंका ऋतुप्राकट्य न होकर मैथुनिक सृष्टिमें उक्तकांड वश प्रारम्भ हुआ हो, इसमें असम्भव कुछ भी नहीं।

इस कार्यको प्रारम्भ कर प्रकृतिने पुरुषोंका बहुत लाभ कर दिया। एक तो उस दिनसे लेकर १६ दिन तक ही गर्भ काल है---यह पता लग जाता है। दूसरा ऋतुके बन्द होनेसे गर्भ हो जानेका ज्ञान हो जाता है। तीसरा ज्ञानी पुरुष जो कामी न होंगे, केवल सन्तानार्थ ही स्त्री सम्भोग चाहेंगे, उनको १६ दिनोंके बाद शेष दिन अलग रहजानेका अवसर मिलेगा। चौथा जो कामी तो होंगे, पर सन्तान पर्याप्त होनेसे अन्य सन्तान लेना नहीं चाहेंगे, वे पहले १६ दिनोंको किसी प्रकार बिता कर शेष दिन उपयोगमें लेंगे, तो उन्हें गर्भनिरोधक औषधियोंका उपयोग करके अपनी स्त्रियोंके स्वास्थ्य पर वज्रपात न करना पड़ेगा। ऋतुस्रावसे अन्य यह बात भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि पूर्व समयमें स्त्रीका रजःस्राव नहीं आता होगा। मानसिक व मैथुनिक सृष्टिमें रजःस्रावका क्या काम? इसके आरम्भ होनेसे यह (रजःस्राव) भी स्त्रीको सिखने लगा। प्रतिमास ऋतुस्राव होनेसे स्त्रीका स्वास्थ्य भी यथावत् बना रहता है, उसके मानसिक दोष भी इसीमें प्रवाहित हो जाते हैं।

जो व्यक्ति विश्वरूपकी आख्यायिकामें ब्रह्महत्यादि न मानना चाहें, उन्हें यह मान लेना चाहिए कि यह रजस्वलाके अस्पृश्यत्वका अर्थवाद है। अर्थवादमें इतिहासको वास्तविक न मान कर केवल उसका तात्पर्य ही माना जाता है। पर हमारा विचार है कि यह अर्थवाद नहीं। अन्य संहिताओंमें भी जिन्हें आजकल वेद माना जाता है, इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है—'त्वाष्ट्रस्य चिद् विश्वरूपस्य गोनाम् आचक्राणः त्रीणि शीर्षा परावर्क्' (ऋग्वेद शाकल्य संहिता १०।८।९) इस मन्त्रका ऋषि—त्वाष्ट्र (त्वष्टाका लड़का) त्रिशिराः (तीन सिर वाला) है, देवता इन्द्र है। इस मन्त्रमें त्वष्टाके लड़के विश्वरूपके तीन सिरोंको काटनेका संकेत आया है।

जिज्ञासु महोदयकी शंकाओंका विवेचन समाप्त हो जानेसे यह निबन्ध भी समाप्त किया जाता है। उनकी जिज्ञासा भी तो 'वैज्ञानिक विद्वानों' के आगे। मैं 'वैज्ञानिक' विद्वान् तो हूँ नहीं, अतः मेरा इस पर लिखनेका कुछ अधिकार तो नहीं था, पर इस दिशामें अनुसन्धाताओंको आगे सरकनेका मार्ग मिलेगा--- यह सोचकर 'एक-दो शब्द' लिख दिये हैं। अब श्री कालीचरणजी शर्मा ज्योतिषी महोदयको हमारे इस निबन्धसे सन्तोष हुआ या नहीं, तथा अन्य पाठकोंको भी इससे सन्तोष हुआ या नहीं---यह तो वे ही बता सकते हैं।



अनुभूत योग

"दुःस्थानाधिप ग्रहों से राजयोग"

[लेखकः— श्री पं० मदनगोपालजी शास्त्री ज्योतिषाचार्य]

जन्म पत्रिका के षष्ठ, अष्टम और द्वादश यह तीन भाव भी अपना एक विशेष महत्त्व रखते हैं। यद्यपि फलित के दृष्टिकोणसे उपरोक्त तीन भाव दुःस्थान कहलाते हैं, किन्तु ग्रहोंकी उचित स्थिति एवं समागमसे वे दुःस्थानाधिप ग्रह भी प्रबल राजयोगका फल देते हैं।

यह सभी जानते हैं कि कुण्डलीके ६।८।१२ भावको दुःस्थान कहते हैं। इनके स्वामी ग्रहोंको भी सर्वदा अनिष्टकारी ही बतलाया है। तथाकथित ६।८।१२ भावोंके स्वामी अन्य किसी भाव या स्थानमें बैठ जाने पर उस भावोत्पन्न फलोंके नाशकारक भी बन जाते हैं यदि वे स्वतन्त्र हो तो जैसे लिखा भी है—

"दुःस्थानपो यद्भवनस्थितस्तु।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः॥" (सु० प्र०)

यदि शुभ ग्रहोंके साथ हों वा देखे जाते हों, तो यह बात नहीं। अर्थात् वह भाव आशाप्रद रहता है—वैसे तो यह तीनों भावेश भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे योग कारक समझे गये हैं। जैसे—व्ययेश बारहवें भावका स्वामी ग्रह यदि अपनी राशिका सबल होकर शुभ स्थितिमें बारहवें ही बैठ जाय तो, "संग्रह" नाम का योग होता है, उसी प्रकार अष्टमेश अष्टममें शुभ स्थितिमें बलवान् होकर अपने घर का हो तो, "आयुकारक" दीर्घायुप्रद बन जाता है और षष्ठेश षष्ठमें शुभ स्थितिमें "रिपु रोग शत्रु हन्ता" योगप्रद बन जाता है, तथैव वही ग्रह षष्ठेष ही लग्नेश बन कर षष्ठको संपूर्ण दृष्टिसे देखे तो भी उक्त "रोग शत्रु हन्ता" योग होता है। ऐसे अन्य योग भी शास्त्रानुसार जाने जा सकते हैं, किन्तु कालामृतके रचियताने इन्हीं दुःस्थानके ६।८।१२ स्वामी ग्रहोंके द्वारा एक विलक्षण और प्रभावशाली योग बतलाया है। वह इस प्रकारसे है। जैसे—(१) क--षष्ठेश अष्टमस्थ वा द्वादशस्थ हों; (ख) अष्टमेश द्वादशस्थ या अष्टममें हो; (ग) द्वादशेष षष्ठस्थ वा अष्टममें हों, इसी क्रमसे ग्रहोंकी स्थिति द्वारा यह योग बनता है। तात्पर्य यह है कि उपरोक्त ६।८।१२ स्थानों (भावों) के स्वामीग्रह इन्हीं ६।८।१२ भावोंमें बैठे होने चाहिये। चाहे वह ग्रह अपने-अपने भावोंमें राशियोंमें बैठे हों, अथवा अलग-अलग भिन्न परिस्थितियोंमें वा एकत्रित होकर बैठे हों परन्तु हों इन तीन स्थानोंमें ही, तभी कथित भावेश ग्रह शुभाशाप्रद होंगे, अच्छा फल देंगे।

ध्यान रहे—ऊपर बताये हुए ६।८।१२ भावोंके स्वामि ग्रहोंसे अन्य किसी ग्रहका दृष्टि सम्बन्ध किं वा योग नहीं होना चाहिये। "तो ऐसे योगमें उत्पन्न मानव"—राजाओंमें राजा, पराक्रमी अधिकारी स्वच्छन्द एवं अनेकानेक प्रकारसे राजसुख वैभव ऐश्वर्य सम्पन्न होता है।

स्मरण रखनेकी बात है कि यदि इन तीन स्थानोंके स्वामी ग्रहोंके साथ कोई दूसरा ग्रह बैठा हो अथवा उन पर किसी अन्य भावेश ग्रहकी दृष्टि भी हो तो उपरोक्त योग भङ्ग समझा जायगा।

उदाहरणके लिए नीचे एक ख्याति प्राप्त मानव की कुण्डली अंकित की जा रही है।

उपरिलिखित नियमोंके अनुसार इस पत्रिकामें षष्ठेश सूर्य षष्ठस्थ अपने घरमें हैं और द्वादशेश बारहवें घरका स्वामीग्रह शनि षष्ठमें सूर्यके साथ षष्ठेशसे युक्त होकर बैठा है।

अनुभूत योग

"दुःस्थानाधिप ग्रहों से राजयोग"

[लेखकः— श्री पं० मदनगोपालजी शास्त्री ज्योतिषाचार्य]

जन्म पत्रिका के षष्ठ, अष्टम और द्वादश यह तीन भाव भी अपना एक विशेष महत्व रखते हैं। यद्यपि फलित के दृष्टिकोणसे उपरोक्त तीन भाव दुःस्थान कहलाते हैं, किन्तु ग्रहोंकी उचित स्थिति एवं समागमसे वे दुःस्थानाधिप ग्रह भी प्रबल राजयोगका फल देते हैं।

यह सभी जानते हैं कि कुण्डलीके ६।८।१२ भावको दुःस्थान कहते हैं। इनके स्वामी ग्रहोंको भी सर्वदा अनिष्टकारी ही बतलाया है। तथाकथित ६।८।१२ भावोंके स्वामी अन्य किसी भाव या स्थानमें बैठ जाने पर उस भावोत्पन्न फलोंके नाशकारक भी बन जाते हैं यदि वे स्वतन्त्र हो तो जैसे लिखा भी है—

"दुःस्थानपो यद्भवनस्थितस्तु।

तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः॥" (सु० प्र०)

यदि शुभ ग्रहोंके साथ हों वा देखे जाते हों, तो यह बात नहीं। अर्थात् वह भाव आशाप्रद रहता है—वैसे तो यह तीनों भावेश भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे योग कारक समझे गये हैं। जैसे—व्ययेश बारहवें भावका स्वामी ग्रह यदि अपनी राशिका सबल होकर शुभ स्थितिमें बारहवें ही बैठ जाय तो, "संग्रह" नाम का योग होता है, उसी प्रकार अष्टमेश अष्टममें शुभ स्थितिमें बलवान् होकर अपने घर का हो तो, "आयुकारक" दीर्घायुप्रद बन जाता है और षष्ठेश षष्ठमें शुभ स्थितिमें "रिपु रोग शत्रु हन्ता" योगप्रद बन जाता है, तथैव वही ग्रह षष्ठेष ही लग्नेश बन कर षष्ठको संपूर्ण दृष्टिसे देखे तो भी उक्त "रोग शत्रु हन्ता" योग होता है। ऐसे अन्य योग भी शास्त्रानुसार जाने जा सकते हैं, किन्तु कालामृतके रचियताने इन्हीं दुःस्थानके ६।८।१२ स्वामी ग्रहोंके द्वारा एक विलक्षण और प्रभावशाली योग बतलाया है। वह इस प्रकारसे है। जैसे—(१) क--षष्ठेश अष्टमस्थ वा द्वादशस्थ हों; (ख) अष्टमेश द्वादशस्थ या षष्ठममें हो; (ग) द्वादशेष षष्ठस्थ वा अष्टममें हों, इसी क्रमसे ग्रहोंकी स्थिति द्वारा यह योग बनता है। तात्पर्य यह है कि उपरोक्त ६।८।१२ स्थानों (भावों) के स्वामीग्रह इन्हीं ६।८।१२ भावोंमें बैठे होने चाहिये। चाहे वह ग्रह अपने-अपने भावोंमें राशियोंमें बैठे हों, अथवा अलग-अलग भिन्न परिस्थितियोंमें वा एकत्रित होकर बैठे हों परन्तु हों इन तीन स्थानोंमें ही, तभी कथित भावेश ग्रह शुभाशाप्रद होंगे, अच्छा फल देंगे।

ध्यान रहे—ऊपर बताये हुए ६।८।१२ भावोंके स्वामि ग्रहोंसे अन्य किसी ग्रहका दृष्टि सम्बन्ध किं वा योग नहीं होना चाहिये। "तो ऐसे योगमें उत्पन्न मानव"—राजाओंमें राजा, पराक्रमी अधिकारी स्वच्छन्द एवं अनेकानेक प्रकारसे राजसुख वैभव ऐश्वर्य सम्पन्न होता है।

स्मरण रखनेकी बात है कि यदि इन तीन स्थानोंके स्वामी ग्रहोंके साथ कोई दूसरा ग्रह बैठा हो अथवा उन पर किसी अन्य भावेश ग्रहकी दृष्टि भी हो तो उपरोक्त योग भङ्ग समझा जायगा।

उदाहरणके लिए नीचे एक ख्याति प्राप्त मानव की कुण्डली अंकित की जा रही है।

उपरिलिखित नियमोंके अनुसार इस पत्रिकामें षष्ठेश सूर्य षष्ठस्थ अपने घरमें हैं और द्वादशेश बारहवें घरका स्वामीग्रह शनि षष्ठमें सूर्यके साथ षष्ठेशसे युक्त होकर बैठा है।



इन ग्रहोंकी स्थिति इस प्रकारकी विलक्षणताके साथ है कि सूर्य शनि और शुक्र पर न तो किसी अन्य ग्रहकी पूर्ण दृष्टि है और न कोई दूसरा ग्रह इन ग्रहों के साथ है। यदि षष्ठेश सूर्यके साथ कोई अन्य ग्रह है भी तो वह द्वादशेश शनि है और अष्टमस्थ शुक्र पर यदि किसी ग्रह की दृष्टि भी है तो वह ग्रह शनि ही है, जो स्वयं द्वादशेश बारहवें घरका स्वामी है, एतदर्थ उपरोक्त योग इस कुंडली में पूर्णतः घटित है।

जिसके फलस्वरूप राजा साहबको ५ लाखकी संपत्ति के अधिकारी रहते शासनसूत्र हाथमें आते ही १० से १५ लाखकी वार्षिक आयका योग हुआ और साथ-साथ एक गढ़ (किला) भी प्राप्त हुआ। जो सप्तम भावमें चतुर्थेश उच्चगत बुधकी स्थिति और गुरुके दृष्टि योगसे स्पष्ट प्रतीत होता है।

सारांश

उपरोक्त योगका स्पष्ट रहस्य यह प्रतीत होता है कि बारह भावोंमें ६।८।१२के स्वामी ग्रह इन्हीं तीनों स्थानों में बैठ जांय तो साधारणतः नियमानुसार—

"विषस्य विषमौषधम्" चरितार्थ हो जाता है। अनिष्ट फलोंका नाश हो जाता है, अर्थात् अनिष्ट प्रभाव के नाशका अर्थ सर्व सुख होता है, जिसको दूसरे शब्दोंमें "राजयोग" कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।





अनुभूत योगमाला



[लेखकः— राजगुरु ज्यौतिषालंकार श्री पं० तारादत्तजी राजज्यौतिषी]



(१) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वितीयमें ताराग्रह हों तो राजयोग होता है।

(२) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वादशमें ताराग्रह हों तो राजयोग होता है।

(३) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वितीय द्वादश इन दोनों स्थानोंमें ताराग्रह हों तो राज योग होता है।

ये राज योग होराहस्कर नामक हस्तलिखित ग्रन्थ-में हैं।

"कुर्वन्ति भूपं सुनफादयोऽपि केन्द्रेन्दुतः"

ये अनेक कुण्डलियोंमें अनुभूत किये गये हैं।

उपपत्ति

चन्द्रमा जलका अधिष्ठाता ग्रह है, यह चर ग्रह भी है।

रविः स्थिरः शीतकरश्चरः स्यात् (जातक पारिजात)

इसलिए चन्द्रमासे अधिष्ठित शक्तियोंका प्रसरण शील पानीके समान प्रसरण शीलत्व प्रतीत होता है। जिस प्रकार प्रसरणशील पानी रोकने वालेके सम्बन्धसे रुकनेसे प्रभावशाली होता है, इसी प्रकार चन्द्रमाकी शक्तियां भी द्वितीय द्वादशमें स्थित ताराग्रहोंके सम्बन्धसे प्रभाव-शालिनी होती हैं।



इन ग्रहोंकी स्थिति इस प्रकारकी त्रिलक्षणताके साथ है कि सूर्य शनि और शुक्र पर न तो किसी अन्य ग्रहकी पूर्ण दृष्टि है और न कोई दूसरा ग्रह इन ग्रहों के साथ है। यदि षष्ठेश सूर्यके साथ कोई अन्य ग्रह है भी तो वह द्वादशेश शनि है और अष्टमस्थ शुक्र पर यदि किसी ग्रह की दृष्टि भी है तो वह ग्रह शनि ही है, जो स्वयं द्वादशेश बारहवें घरका स्वामी है, एतदर्थ उपरोक्त योग इस कुंडली में पूर्णतः घटित है।

जिसके फलस्वरूप राजा साहबको ५ लाखकी संपत्ति के अधिकारी रहते शासनसूत्र हाथमें आते ही ३० से ३५ लाखकी वार्षिक आयका योग हुआ और साथ-साथ एक गढ़ (किला) भी प्राप्त हुआ। जो सप्तम भावमें चतुर्थेश उच्चगत बुधकी स्थिति और गुरुके दृष्टि योगसे स्पष्ट प्रतीत होता है।

सारांश

उपरोक्त योगका स्पष्ट रहस्य यह प्रतीत होता है कि बारह भावोंमें ६।८।१२के स्वामी ग्रह इन्हीं तीनों स्थानों में बैठ जांय तो साधारणतः नियमानुसार—

"विषस्य विषमौषधम्" चरितार्थ हो जाता है। अनिष्ट फलोंका नाश हो जाता है, अर्थात् अनिष्ट प्रभाव के नाशका अर्थ सर्व सुख होता है, जिसको दूसरे शब्दोंमें "राजयोग" कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।



अनुभूत योगमाला

[लेखकः— राजगुरु ज्योतिषालंकार श्री पं० तारादत्तजी राजज्योतिषी]

(१) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वितीयमें ताराग्रह हों तो राजयोग होता है।

(२) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वादशमें ताराग्रह हों तो राजयोग होता है।

(३) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वितीय द्वादश इन दोनों स्थानोंमें ताराग्रह हों तो राज योग होता है।

ये राज योग होराहस्कर नामक हस्तलिखित ग्रन्थमें हैं।

"कुर्वन्ति भूपं सुनफादयोऽपि केन्द्रेन्दुतः"

ये अनेक कुण्डलियोंमें अनुभूत किये गये हैं।

उपपत्ति

चन्द्रमा जलका अधिष्ठाता ग्रह है, यह चर ग्रह भी है।

रविः स्थिरः शीतकरश्चरः स्यात् (जातक पारिजात)

इसलिए चन्द्रमासे अधिष्ठित शक्तियोंका प्रसरण शील पानीके समान प्रसरण शीलत्व प्रतीत होता है। जिस प्रकार प्रसरणशील पानी रोकने वालेके सम्बन्धसे रुकनेसे प्रभावशाली होता है, इसी प्रकार चन्द्रमाकी शक्तियां भी द्वितीय द्वादशमें स्थित ताराग्रहोंके सम्बन्धसे प्रभावशालिनी होती हैं।



इन ग्रहोंकी स्थिति इस प्रकारकी विलक्षणताके साथ है कि सूर्य शनि और शुक्र पर न तो किसी अन्य ग्रहकी पूर्ण दृष्टि है और न कोई दूसरा ग्रह इन ग्रहों के साथ है। यदि षष्ठेश सूर्यके साथ कोई अन्य ग्रह है भी तो वह द्वादशेश शनि है और अष्टमस्थ शुक्र पर यदि किसी ग्रह की दृष्टि भी है तो वह ग्रह शनि ही है, जो स्वयं द्वादशेश बारहवें घरका स्वामी है, एतदर्थ उपरोक्त योग इस कुंडली में पूर्णतः घटित है।

जिसके फलस्वरूप राजा साहबको ९ लाखकी संपत्ति के अधिकारी रहते शासनसूत्र हाथमें आते ही १० से १५ लाखकी वार्षिक आयका योग हुआ और साथ-साथ एक गढ़ (किला) भी प्राप्त हुआ। जो सप्तम भावमें चतुर्थेश उच्चगत बुधकी स्थिति और गुरुके दृष्टि योगसे स्पष्ट प्रतीत होता है।

सारांश

उपरोक्त योगका स्पष्ट रहस्य यह प्रतीत होता है कि बारह भावोंमें ६।८।१२के स्वीमी ग्रह इन्हीं तीनों स्थानों में बैठ जांय तो साधारणतः नियमानुसार—

"विषस्य विषमौषधम्" चरितार्थ हो जाता है। अनिष्ट फलोंका नाश हो जाता है, अर्थात् अनिष्ट प्रभाव के नाशका अर्थ सर्व सुख होता है, जिसको दूसरे शब्दोंमें "राजयोग" कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।



अनुभूत योगमाला

[लेखकः— राजगुरु ज्योतिषालंकार श्री पं० तारादत्तजी राजज्यौतिषी]

(१) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वितीयमें ताराग्रह हों तो राजयोग होता है।

(२) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वादशमें ताराग्रह हों तो राजयोग होता है।

(३) जब केन्द्रस्थ चन्द्रमासे द्वितीय द्वादश इन दोनों स्थानोंमें ताराग्रह हों तो राज योग होता है।

ये राज योग होराहस्कर नामक हस्तलिखित ग्रन्थ-में हैं।

"कुर्वन्ति भूपं सुनफादयोऽपि केन्द्रे न्दुत:"

ये अनेक कुण्डलियोंमें अनुभूत किये गये हैं।

उपपत्ति

चन्द्रमा जलका अधिष्ठाता ग्रह है, यह चर ग्रह भी है।

रवि: स्थिर: शीतकरश्चर: स्यात् (जातक पारिजात)

इसलिए चन्द्रमासे अधिष्ठित शक्तियोंका प्रसरण शील पानीके समान प्रसरण शीलत्व प्रतीत होता है। जिस प्रकार प्रसरणशील पानी रोकने वालेके सम्बन्धसे रुकनेसे प्रभावशाली होता है, इसी प्रकार चन्द्रमाकी शक्तियां भी द्वितीय द्वादशमें स्थित ताराग्रहोंके सम्बन्धसे प्रभाव-शालिनी होती हैं।

चन्द्रमा मनका अधिष्ठाता ग्रह है "कालात्मा दिनकृन्नस्तुहिनगु" । (बृहज्जातक) यह राज ग्रह भी है "राजानौ रविशीतगू" (बृहज्जातक) इसके प्रभावशाली होनेसे मानसिक शक्तियोंका प्राबल्य उन्नति और राजकार्य में योग्यता होती है। इसलिए इससे द्वितीय-द्वादशमें ताराग्रहोंका अभाव न होनेने सुनफादि शुभ फल देनेवाले योग होते हैं। क्योंकि योगकारक ग्रहोंकी शक्तियोंके सम्बन्धसे इसकी शक्तियां प्रभावशालिनी होती हैं और अमृत किरण वाले इसके सम्बन्धसे उनकी शक्तियां भी प्रभावशालिनी होती हैं।

सूर्यके सान्निध्यसे चन्द्रमा बलहीन होता है। इसलिए यहां योगकारक ग्रहोंमें सूर्य नहीं है। केन्द्र स्थानमें शक्तियोंका प्राबल्य होता है। इसलिए चन्द्रमाके केन्द्र-में होने पर सुनफादि योग राज योग रूप होकर अत्यन्त शुभ हो जाते हैं।

यदि चन्द्रमासे द्वितीय द्वादशमें क्रूर ग्रह होते हैं तो उनसे उत्पन्न दुरुधरा योगका फल चन्द्रमाके क्रूरान्तर्गत होनेसे अधिक उत्तम अनुभूत नहीं होता है। तथापि केमद्रुम योगसे उसका फल अच्छा ही अनुभूत होता है।

चन्द्रमा और योगकारक ग्रहोंके अपने उच्च मूल त्रिकोण और स्वक्षेत्रमें होनेसे इन योगोंका फल अधिक उत्कृष्ट अनुभूत होता है।

इस लेखके साररूप स्वनिर्मित श्लोक—

अब्जोऽय चर खेचरो जलपतिः साधारऊमम्बु स्थिर-
भौमाद्या : खचराः प्रयान्ति शशिनः पार्श्वे तदाधारताम्।
हित्वार्कं सुनफा नफा दुरुधरा स्वान्त्योभयस्थैः ग्रहैः,
शीतांशोः कथितोऽन्यथातु बहुभिः केमद्रुमाख्यस्ततः॥

केन्द्रं हि मध्यं प्रवदन्ति धीराः,
केन्द्रे प्रभावस्य ततोऽधिकत्वम्॥
केन्द्रस्थ शीतांश कृतां सुयागा—
स्ततोऽनफाद्याः सुफालय कामम्॥

(क्रमशः)



ज्योतिर्विज्ञान पर नेहरूजी का प्रहार

[श्री पं० सूर्यनारायणजी व्यास]



उस दिन दिल्लीकी सार्वजनिक सभामें भाषण देते हुए ज्योतिर्विज्ञान जैसे महान भारतीय प्रत्यक्ष शास्त्र पर मूर्खता का आरोप लगा कर पं० नेहरूने इस देशके करोड़ों लोगोंके हृदय पर आघात पहुँचाया है। इसके पूर्व भी पार्लमेंटमें उन्होंने इस शास्त्र पर कुछ छींटाकशीकी थी। पण्डितजी जैसे महान व्यक्ति और एक महान राष्ट्रके सर्वोच्च शासकके द्वारा ऐसी बातें किसी शास्त्रके सम्बन्धमें कहा जाना जिसके सत्यासत्यके विषयमें उनकी जानकारी नहीं है—एक गम्भीर और खेदजनक बात है। पण्डितजी ज्योतिष पर विश्वास न रखते हों, और उनकी तरह कई सहस्र भारतीय भी अपना कोई मत बनाए हुए हैं—इससे किसी शास्त्रको गलत नहीं कहा जा सकता। ऐसे मतोंकी किसी भी कालमें कमी नहीं रही है, पर सहस्राब्दियोंसे पक्षापक्षोंके द्वंद्वके चलते रहने पर भी यह अपना निरन्तर अस्तित्व बनाये हुए हैं और बनाए रखेगा, यही उसकी महत्ताकी कसौटी हैं। कोई विज्ञान—भावना, या विश्वासके बल पर ही जीवित नहीं रहता, उसमें रहने वाले 'तथ्य' पर ही उसका अवलम्बन है। ज्योतिषका 'फल' शास्त्र गणित पर आधारित है, जब कोई गणितके दो-दोके संयोगको चो मानता है, और उसके फलमें

निष्फल होने वाले परिणामको नहीं मानता तो यह उसका अपना ही अज्ञान है। जिस गणितके द्वारा ग्रहयोगोंकी गतिविधिका पता चलता है और ग्रहोंका निर्णय प्राप्त होता है, उससे बनने वाले आकाशके ग्रहों रूपी प्रत्यक्ष परिणाम को यदि कोई न माननेका हठ करे तो यह उसका केवल दुराग्रह ही है। फल और प्रयोग सभी विज्ञानसे सम्बन्धित है, प्रयोगकर्त्ताकी प्रवीणता और सूक्ष्म दृष्टि पर ही उसकी सफलता निर्भर रहती है। दुर्भाग्यवश बिगत विदेशी शासनकालमें इस विज्ञानके प्रति उपेक्षा बरती गई, न तो शासनने संशोधनकी ओर प्रवृत्तिकी, न इसमें तथ्य देखनेके लिए विद्वानोंको कभी प्रेरित ही किया, फलतः यह शास्त्र अर्थ-प्रद-सुलभ होनेके कारण ऐसे धंधेबाजोंके हाथोंमें जा पहुँचा, जहां उसने अपने आपको सट्टेबाजोंके हाथ बुरी तरह बेंच दिया, या राशि-भविष्य बतलानेको बाध्य बना दिया। वे लोग यदि प्रचारके सुलभ साधन 'पत्रों'का पल्ला पकड़ कर, और पत्रकार उन्हें प्रवीण मान कर प्रचारित करते हैं तो इसमें किसका दोष है? उन्हीं लोगोंकी गैरजिम्मेदारीसे भरी बातोंको सुन कर कोई व्यक्ति शास्त्रको भी अपमानित करनेका साहस कर देता है तो उसकी विवेक-बुद्धि पर सन्देह होने लगता है। गलती प्रयोग करने वालोंसे नही होती। यह कौन कह सकता है? जिन विज्ञानोंका प्रयोगसे सम्बन्ध है, उन सबमें भूलकी गुंजाइश रह सकती है। राजनीति भी विज्ञान है, कानून भी विज्ञान है और मेडिकल भी विज्ञान है। इन सभी विज्ञानोंके संपूर्ण होते हुए सरकारी सम्पूर्ण समर्थन, संशोधन और सहकार होते हुए भी क्या इनके प्रयोगमें गलती नहीं होती? स्वयं राजनीति-विज्ञानके अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता रखने वाले पण्डितजीने दो वर्ष पूर्व जब जनताको १६५१में अन्नके विषयमें आत्मनिर्भर हो जानेका आश्वासन दिलवाया था, उनका विश्वास अपने प्रयत्न, और आंकड़ों पर आधारित नहीं था? तब आज ४० लाख टन अन्न विदेशों से लाने को क्यों बाध्य होना पड़ता है? क्या यह उनका प्रयोग राजनीति-विज्ञानकी भयंकर भूल नहीं हो सकती है? क्या पण्डित मोतीलाल नेहरू और सर तेज जैसे महान कानून-शास्त्री अपने 'केशों'के लिए सबल प्रमाणोंकी धाराओंके तर्कोंके सम्यक रखते हुए किसी 'केस'में असफल नहीं बने हैं? क्या यह उस विज्ञानकी भूल थी या उनके प्रयोगकी? और उनकी असफलताओंके कारण क्या वह 'कानून-विज्ञान' अपना शास्त्रीय अस्तित्व खो बैठा है? सर तेज और स्व० मोतीलालजीकी प्रतिभा और प्रवीणतासे कौन इन्कार कर सकता है? जब वे भी संपूर्ण विश्वास रख कर भी असफल बन सकते थे, तो ऐरे-गैरों की क्या गिनती, किन्तु इस पद्धति और प्रयोगकर्ताको कभी खराब नहीं समझा गया। वकालतके पेशेकी गदंगी ज्योतिषसे बहुत अधिक ही है। उससे धन और समय की अपरिमित हानि भी होती है, समाजमें एक खराबी भी फैली है, परन्तु क्या कभी या आज भी सरकारकी उस विज्ञान या उसके प्रयोगकर्त्ताके प्रति सहमति नहीं है? सरकारी मान्यतायें कोई कमी आई है। स्वयं सरकारी निर्णयोंका भी 'कोर्ट'में चैलेंज होता है और सरकार तकको मुंहकी खानी पड़ती है, यह कम्यूनिस्टोंके नजरबन्दी केसमें कुछ समय पूर्व हो चुका है, तब सरकार भूल नहीं करती, राजनीति-विज्ञान तक गलत हो जाता है। इसी तरह डाक्टरी विज्ञानकी बात भो है। आयुर्वेदकी आलोचना करके भी 'मेडिकल साइन्स'को सरकारका कितना अधिक समर्थन है। उसके संशोधन भी करोड़ों की लागत पर होते रहते हैं और सरकार देशी हो या विदेशी सभी उसे विज्ञान ही मानती है। क्या कोई डाक्टर एक ही जैसी योग्यता, डिग्री, सरकारी पट्टा प्राप्त करके भी भयंकर रूपसे असफल नहीं बनते हैं? प्रयोगों, परीक्षाओंमें भी जानोंके ग्राहक नहीं बन जाते हैं? खूब देखभाल कर प्रयोग कर रिसर्चकी राह निकाल कर बनी हुई बहु प्रचारित दवाइयां गलत साबित नहीं होतीं, एक ही तरहकी बीमारी पर एक ही योग्यता रखने वाले बीसियों डाक्टरोंकी अलग-अलग रायें नहीं होतीं? अलग-अलग उपचार नहीं कहे जाते हैं? इस प्रयोग-पद्धति पर अवलम्बित रहने वाले 'मेडिकल साइन्स'की बहुप्रचारित प्रसिद्ध दवाईसे भी भयंकर असफलता पल्ले नहीं पड़ जाती है? क्या किसी सरकारने इस संपूर्ण

निष्फल होने वाले परिणामको नहीं मानता तो यह उसका अपना ही अज्ञान है। जिस गणितके द्वारा ग्रहयोगोंकी गतिविधिका पता चलता है और ग्रहोंका निर्णय प्राप्त होता है, उससे बनने वाले आकाशके ग्रहों रूपी प्रत्यक्ष परिणाम को यदि कोई न माननेका हठ करे तो यह उसका केवल दुराग्रह ही है। फल और प्रयोग सभी विज्ञानसे सम्बन्धित है, प्रयोगकर्त्ताकी प्रवीणता और सूक्ष्म दृष्टि पर ही उसकी सफलता निर्भर रहती है। दुर्भाग्यवश विगत विदेशी शासनकालमें इस विज्ञानके प्रति उपेक्षा बरती गई, न तो शासनने संशोधनकी ओर प्रवृत्तिकी, न इसमें तथ्य देखनेके लिए विद्वानोंको कभी प्रेरित ही किया, फलतः यह शास्त्र अर्थ-प्रद-सुलभ होनेके कारण ऐसे धंधेबाजोंके हाथोंमें जा पहुँचा, जहाँ उसने अपने आपको सट्टेबाजोंके हाथ बुरी तरह बेंच दिया, या राशि-भविष्य बतलानेको बाध्य बना दिया। वे लोग यदि प्रचारके सुलभ साधन 'पत्रों'का पल्ला पकड़ कर, और पत्रकार उन्हें प्रवीण मान कर प्रचारित करते हैं तो इसमें किसका दोष है? उन्हीं लोगोंकी गैरजिम्मेदारीसे भरी बातोंको सुन कर कोई व्यक्ति शास्त्रको भी अपमानित करनेका साहस कर देता है तो उसकी विवेक-बुद्धि पर सन्देह होने लगता है। गलती प्रयोग करने वालोंसे नहीं होती। यह कौन कह सकता है? जिन विज्ञानोंका प्रयोगसे सम्बन्ध है, उन सबमें भूलकी गुंजाइश रह सकती है। राजनीति भी विज्ञान है, कानून भी विज्ञान है और मेडिकल भी विज्ञान है। इन सभी विज्ञानोंके संपूर्ण होते हुए सरकारी सम्पूर्ण समर्थन, संशोधन और सहकार होते हुए भी क्या इनके प्रयोगमें गलती नहीं होती? स्वयं राजनीति-विज्ञानके अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता रखने वाले पण्डितजीने दो वर्ष पूर्व जब जनताको १९५१मे अन्नके विषयमें आत्मनिर्भर हो जानेका आश्वासन दिलवाया था, उनका विश्वास अपने प्रयत्न, और आंकड़ों पर आधारित नहीं था? तब आज ४० लाख टन अन्न विदेशों से लाने को क्यों बाध्य होना पड़ता है? क्या यह उनका प्रयोग राजनीति-विज्ञानकी भयंकर भूल नहीं हो सकती है? क्या पण्डित मोतीलाल नेहरू और सर तेज जैसे महान कानून-शास्त्री अपने 'केसों'के लिए सबल प्रमाणोंकी धाराओंके तर्कोंके सम्बन्ध रखते हुए किसी 'केस'में असफल नहीं बने हैं? क्या यह उस विज्ञानकी भूल थी या उनके प्रयोगकी? और उनकी असफलताओंके कारण क्या वह 'कानून-विज्ञान' अपना शास्त्रीय अस्तित्व खो बैठा है? सर तेज और स्व० मोतीलालजीकी प्रतिभा और प्रवीणतासे कौन इन्कार कर सकता है? जब वे भी संपूर्ण विश्वास रख कर भी असफल बन सकते थे, तो ऐरे-गैरों की क्या गिनती, किन्तु इस पद्धति और प्रयोगकर्ताको कभी खराब नहीं समझा गया। वकालतके पेशेकी गदंगी ज्योतिषसे बहुत अधिक ही है। उससे धन और समय की अपरिमित हानि भी होती है, समाजमें एक खराबी भी फैली है, परन्तु क्या कभी या आज भी सरकारकी उस विज्ञान या उसके प्रयोगकर्त्ताके प्रति सहमति नहीं है? सरकारी मान्यतायें कोई कमी आई है। स्वयं सरकारी निर्णयोंका भी 'कोर्ट'में चैलेंज होता है और सरकार तकको मुंहकी खानी पड़ती है, यह कम्यूनिस्टोंके नजरबन्दी केसमें कुछ समय पूर्व हो चुका है, तब सरकार भूल नहीं करती, राजनीति-विज्ञान तक गलत हो जाता है। इसी तरह डाक्टरी विज्ञानकी बात भी है। आयुर्वेदकी आलोचना करके भी 'मेडिकल साइन्स'को सरकारका कितना अधिक समर्थन है। उसके संशोधन भी करोड़ों की लागत पर होते रहते हैं और सरकार देशी हो या विदेशी सभी उसे विज्ञान ही मानती है। क्या कोई डाक्टर एक ही जैसी योग्यता, डिग्री, सरकारी पद्वी प्राप्त करके भी भयंकर रूपसे असफल नहीं बनते हैं? प्रयोगों, परीक्षाओंमें भी जानोंके ग्राहक नहीं बन जाते हैं? खूब देखभाल कर प्रयोग कर रिसर्चकी राह निकाल कर बनी हुई बहु प्रचारित दवाइयां गलत साबित नहीं होतीं, एक ही तरहकी बीमारी पर एक ही योग्यता रखने वाले बीसियों डाक्टरोंकी अलग-अलग रायें नहीं होतीं? अलग-अलग उपचार नहीं कहे जाते हैं? इस प्रयोगपद्धति पर अवलम्बित रहने वाले 'मेडिकल साइन्स'की बहुप्रचारित प्रसिद्ध दवाईसे भी भयंकर असफलता पल्ले नहीं पड़ जाती है? क्या किसी सरकारने इस संपूर्ण

विज्ञानकी ऐसी असफलताओंके कारण उसे विज्ञान नहीं माना या प्रयोग करने वालोंको प्रवीण नहीं समझा अथवा उस पर आस्था रख कर उपचार करने वालोंको कभी पण्डितजीने 'जहालत'का प्रमाण-पत्र प्रदान किया है ?

तब क्या कारण है कि किसी भी प्रकारकी सुविधा, संशोधन, सरकारके अभावमें परम्परासे पोषित होने वाले प्रत्यक्ष-विज्ञानके प्रयोगको ही कसा जाए, और उसको जीवत बनाये रखने वाली कोटि-कोटि जनता को 'जहालत'के आरोपसे अपमानित किया जावे ? निःसन्देह जो विज्ञान-प्रयोग सापेक्ष है, उनमें अत्यन्त सावधानी, दक्षता, सूक्ष्म वलीकन-क्षमता और विज्ञान-सम्बन्धी गंभीर एवं दीर्घ अनुभवकी आवश्यकता है। जब समस्त सरकारी सूत्रका संपूर्ण सहयोग प्राप्त करने वाले विज्ञानोंमें भूलों की सम्भावनाएं कम नहीं रहतीं, तब जिस विज्ञानको विकासका — संशोधनका कोई भी साधन सुलभ न हो और जब कि वह बाजारके व्यवसायका विषय बन कर पेटपूर्ति का महज माध्यम बन रहा हो, उससे अधिक भूलें हो तो कौन-सा आश्चर्य है ? और पण्डितजी जैसे इसी देशके महान शासक अपने ही देशके एक अप्रतिम-विस्मयजनक सिद्धांतको 'जहालत' बताएं तब उसके लिये क्या कोई सम्भावना समझी जाए ?

हम यह स्वीकार करते हैं कि ज्योतिष शास्त्रके बहुत से जानकारोंमें व्यवहार-बुद्धिका अभाव होता है, सामयिकताको समझनेकी सूझ कम होती है, और किस प्रयोगको कहां—देश, काल, परिस्थिति देख कर कैसे प्रयुक्त करना चाहिये, यह बहुत कम जानते हैं और बहुत से लोग तो इसे प्रचारका माध्यम बना कर अपनेको 'पांचवें सवार'में दाखिल करवा लेते हैं ! प्रचारकोंमें यह परीक्षण-शक्ति कम होती है। किस प्रयोगकी प्रवीणता का परिणाम क्या है, इसका भी ध्यान नहीं रहता। जनतामें भय, चिन्ता, आतंक, असन्तोष उत्पन्न हो सकता है, इसमें कौन असहमत हो सकता है ? परन्तु भूल, प्रवीण प्रयोगकर्तासे भी हो ही जाती है। यह भी उतना ही सत्य है, किन्तु इससे ज्योतिर्विज्ञान पर ही प्रहार किया जावे और उसको 'जहालत' कहा जाए, यह कौन-सी बुद्धिमानी है ? पण्डितजी अत्यन्त लोकप्रिय हैं, वे देशके गौरव हैं, आज वे सर्वोच्च सत्ताधारी हैं और जनताके कांग्रेसाध्यक्षके नाते प्रमुख प्रतिनिधि हैं, किन्तु उनके प्रारम्भिक संस्कारोंके कारण वे इस देशके शास्त्र, ज्ञानके प्रति उपेक्षा रखते हैं। यही कारण है कि वे बिना उन शास्त्र-विज्ञानोंके मर्म जाने, परीक्षण किये दुस्साहसपूर्वक अपना अप्रभावोत्पादक और अनुचित अभिमत प्रदर्शित कर डालते हैं, जिस प्रकार ज्योतिर्विज्ञानके साथ पण्डितजी की उपेक्षावृत्ति है, वही इस देशके महान् विज्ञान आयुर्वेद के प्रति भी है। परन्तु दोनों शास्त्रोंकी गहराई और उनकी उच्चताका कभी पण्डितजीको अन्दाजा भी नहीं था। बजाय सहानुभूति-सहयोगके वे उन पर प्रहार करने का तो साहस न किया करें ? दोनों विज्ञानोंमें स्वार्थ-साधकोंने बहुत प्रवेश कर लिया है, यह भी सही है, किन्तु उनकी वैज्ञानिकतामें इन्कार करनेका कौन साहस कर सकता है ? आज तो विज्ञानका ही युग है, पर विश्वका कौन-सा ऐसा प्रगतिशील विज्ञान है, जो 'भावी' की सूचना देनेकी क्षमता रखता है ? केवल भारतका यही एक ऐसा विज्ञान है, जिसके निर्माण में खगोलकी खाक छान कर निश्चित सिद्धान्तोंका उचित निर्णय निकाल कर रखा गया है। उचित तो यह होता है कि जिस तरह हजारों वर्षोंसे शासनोंमें ज्योतिर्विज्ञान की सहायतासे अपनी सफलता साध्य की थी (वे सभी असंस्कृत या अंधविश्वासी युगके प्रतिनिधि तो नहीं रहे होंगे) हमारी सरकार इस शास्त्रके विकासका अवसर देती, संशोधनका मार्ग प्रशस्त करती, उपयोगिताकी देखभाल करती, प्रयोग-परीक्षणका प्रसंग प्रस्तुत करती, और कसौटी पर चढ़ाती, उस पर व्याप्त हुए विकारोंको दूर करती और उसकी शक्तिका अनुभव लेती; किन्तु दूषित भावना रख कर अपने ही ज्ञान-विज्ञानकी उपेक्षा करने वाली सरकारसे यह सब आशा करना ही व्यर्थ है। पण्डितजीके प्रति हम अपने आंतरिक सम्मानको व्यक्त करते हुए भी चैलेंज देना चाहते हैं और यह प्रमाणित करने को तत्पर हैं कि आज तक स्वयं पण्डितजी और राष्ट्रपति और बापूजी आदिके विषयमें और १५ अगस्तके

साढ़ेसती

लेखक :—
श्री वी० आर० अन्तानी

[इस लेखके विद्वान लेखक श्री विनोदराय जी अन्तानी सोलन के फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट हैं। आप गुजराती भाषा-भाषी व अंग्रेजीके प्रौढ़ विद्वान् हैं । हिन्दीमें आपने यह लेख सर्वप्रथम लिखा है। इसीसे आपका हिन्दी प्रेमका परिचय प्राप्त हो जाता है। ज्योतिषके प्रति आपकों अगाध श्रद्धा प्रगाढ़ व प्रेम है, इसीके परिणामस्वरूप आपने ज्योतिष विषयका यह लेख लिखा है। आशा है इस उपयोगी लेखसे पाठक पूरा लाभ उठाएंगे। —संपादक]

भारतमें यह एक साधारण अनुभव है, जब किसी पर दुःखोंकी परम्परा होती है, तो यह कहा जाता है कि उस पर साढ़सतीकी दशा लगी है। इस प्रकारकी बात कहने वाला व्यक्ति ज्योतिषका ज्ञान रखता हो चाहे न रखता हो, परन्तु इतना अवश्य जानता है कि साढ़ेसती शनिकी दशा है। यह भी साधारण और प्रतिदिनका अनुभव है कि किसीको दुःख पड़ना शुरू हो जाय, बीमारी हो जाय, व्यापारमें नुकसान हो जाय, मुकदमा हो जाय तो कहा जाता है कि उस व्यक्ति पर शनि बैठा है। मैं यहां पर साढ़सतीके विषयमें उल्लेख करता हूँ:—

पश्चात् होने वाली भीषण घटित घटनाओंके विषयमें जो बातें समयसे बहुत पूर्व सूचितकी गई थीं, उनको क्या असत्य साबित कर सकेंगे? हालहीमें 'टंडन-टसल' को लेकर भी जब जनतामें उद्विग्नता थी, हमने अगस्तके अन्तिम सप्ताहमें पण्डितजी के प्रियविश्वस्त मंत्रीको प्रमाणिक निर्णय सूचित किया था, वह आज भी उनके निकट होगा। स्वयं पण्डितजीके विषयमें १९३७में हमने १९४७ तकका विवरण लिखा था, जो गुजराती, मराठी, हिन्दीके अनेक पत्रोंमें निकला है और पण्डित नवीनजीके 'प्रताप' (कानपुर) में भी वह उसी समय छपा है। उसकी एक-एक लाइन से मिलान करें कि आज तककी स्थितिसे उसका कितना अद्भुत साम्य है। १५ अगस्तको स्वाधीनता दिवस मनानेके लिए हमने जीतोड़ यत्न किया था कि रोका जाए, उसकी भयंकरताओंको बिना घुमाये स्पष्ट प्रकट भी किया था, वे कटिंग पण्डितजी, राष्ट्रपति आदि के निकट भेजे भी गये थे, पर पण्डितजी पूर्व ग्रह-दूषित दृष्टिसे उनकी क्यों पर्वाह करते? परन्तु एक व्यक्तिके चाहे वह कितना ही महान् हो,—दुराग्रहवश देशको कितनी विपत्तियोंमें आ जाना पड़ा? किसी परम्परा या शास्त्रको केवल न माननेसे ही उसके परिणामोंसे बचा नहीं जा सकता, निश्चित निर्णयोंके परिणाम तो प्रकट होते ही हैं। क्या पण्डितजी इन चीजोंको असत्य साबित कर सकेंगे? एक नहीं, अनेक प्रमाण प्रत्यक्ष घटनाक्रम सहित प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यह हम पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि प्रयोग-सापेक्ष-विज्ञानोंमें भूलोंकी सम्भावना रहती है, किन्तु उनसे उस विषयकी वैज्ञानिकतामें सन्देहका अवसर नहीं रहता।

हमें बहुत खेद हुआ कि किसी विषय पर बिना जाने, प्रयोग-परीक्षण-सुविधा दिए इस प्रकार महान् राष्ट्रके प्रमुख प्रतिनिधि प्रहार करनेका दुस्साहस कर डालें।



किसी व्यक्तिके जन्मके समय जिस स्थान पर ग्रह होते हैं, उसका जो नक्शा कागज पर बनाया जाता है, उसको कुंडली कहते हैं। इस कुंडलीमें विशेष दो महत्वपूर्ण स्थान होते हैं। पहला जन्म लग्न, दूसरा जन्म राशि। जन्म लग्न वह राशि होती है, जिसका उदयपूर्व क्षितिज पर जन्मके समय होता है। जन्म राशि वह राशि होती है, जिसमें जन्मके समय चन्द्र स्थित हो। शनिकी साढ़सती पनौती या दशाका सम्बन्ध इस दूसरे चन्द्र जन्मकी राशिसे है, अर्थात चन्द्र जिस राशिमें स्थित हो उससे है। चन्द्र राशिसे एक राशि पूर्वमें जब शनि आता है, तबसे उससे आगेकी एक राशिमें रहने तक शनिकी साढ़ेसती रहेगी। शनि एक राशिमें ढाई वर्ष लगाता है, इसलिए तीन राशियोंमें साढ़े सात वर्ष लगेंगे। अगर अंशोंमें कहें तो जब शनि जन्मके चन्द्रसे ४५ अंश पीछे होगा, तबसे लेकर ४५ अंश आगे हो जावेगा, तब तक उसका प्रभाव रहेगा। शनि सब ग्रहोंमें प्रभावशाली है। उसका असर तीव्र है और क्योंकि दूसरे ग्रहोंसे इसकी गति मंद है। उसका असर देर तक रहता है। शनिका प्रभाव अच्छा भी होता है और बुरा भी होता है, पर स्वभावसे शनि दुष्ट है, इसलिए अच्छेपनमें भी कुछ न कुछ कटुता होती है और बुरेपनमें तो घातकता ही बरसती है। शनिकी मित्रता शुक्र, बुध, बृहस्पतिसे है—रवि, चन्द्र, मंगलसे शत्रुता है, इसलिए मित्र राशियोंमें होता है, तब कुछ कम नुकसान करता है और शत्रु राशिमें होता है तब निरा दुष्ट होता है! अपनी राशि मकर और कुम्भमें अच्छा होता है और तुलामें अधिक अच्छा होता है। यहां अच्छा होनेके साथ बलवान् भी होता है। इसलिए जो कुछ बुरा करना होता है वह भी बलसे करता है। मेषमें क्षीण शनि होता है, इसलिए नीचता करता है और कर्कमें होने पर चन्द्रको अन्धेरा-सा कर देता है। इसलिए व्यक्तिकी बुद्धि भ्रष्ट कर देता है। सिंह में सूर्यसे दबता है, परन्तु आने असरके उस भावको नाश करता है। मिथुन, कन्या, धनु और मीनमें सम होता है। जिस भावमें होता है, उसको नष्ट करता है, सिर्फ आठवें भवनमें हो तो जिन्दगी लम्बी होती है।

अब इस स्वभावका शनि साढ़सतीमें चन्द्र जब अलग-अलग राशिमें हो तो, क्या भाव देता है, उसको देखें। पहले यह ध्यानमें होना जरूरी है कि दूसरे ग्रहोंके क्या हाल हैं? चन्द्र कैसा है—कौन-सी राशिमें है, कौनसे भावमें है, कौनसे नवांशमें है, कौनसे ग्रहके साथ है, कौनसे ग्रहसे दृष्ट है, यह भी देखना जरूरी है कि शनि इसी तरह से किस हालतमें है। कुंडलीमें दूसरे राज-योग, दरिद्र योग कैसे हैं। कुंडलीका बल इस तरहसे समझ कर फिर साढ़सतीका प्रभाव देखना चाहिये। यहां पर हम यह अनुमान करते हैं कि कुंडली साधारण बलकी है। दीर्घायु योग वालेकी है और चन्द्र राशिमें दूसरे ग्रहसे न तो युक्त है और न दृष्ट है।

(१) चन्द्र जब मेषमें हो तो साढ़सती शनीके मीन में आनेके बाद शुरू होती है—चन्द्र मेषका होनेसे मित्र स्थानका है और अगर शुक्ल पक्षका हो तो बलवान् होता है, नहीं तो क्षीण होता है। शनि मीनमें बुरा नहीं होता, इसलिए पहले ढाई साल दुःखोंकी परम्परा नहीं रहेगी, बल्कि कुछ अच्छा ही रहेगा। शरीर, संपत्ति और व्ययमें भी शनिके प्रभावकी झांकी पड़ती रहेगी। जब आगे बढ़ कर मेषका आजावेगा तब तीव्र हो जायगा। मानसिक व्यथा, शारीरिक कष्ट, कुटुम्बमें क्लेश, दुःख, नौकरी-धंधेमें कठिनाइयां यह सब होगा। मंगलकी राशि है, इसलिये कुछ दुर्घटनाएं भी होती हैं—जब वृषभमें शनि पहुँचेगा तो फिर हालत सुधरेगी। दुःख दूर हो जावेगा। मेषके चन्द्र वालेको साढ़सतीके आगे पीछेके ढाई-ढाई साल साधारण तकलीफमें जाते हैं। बीच के ढाई साल बहुत बुरे जाते हैं। इसमें देहको माता-पिताको, स्त्री-पुत्र-पुत्रियों के बारेमें दुःखित बातें होती हैं।

(२) जब वृषभमें चन्द्र होता है, तब मेषमें शनिके आनेसे साढ़सतीका असर शुरू हो जाता है। पहले ढाई साल खराब होते हैं, बीचके अढाई साल खास बुरे नहीं होते। क्योंकि चन्द्र उच्च होता है। मानसिक विलासिता वाले व्यक्तिके ऊपर इस अढाई सालमें मलीनता व

जाती है। मिथुनका शनि भी बहुत बुरा नहीं होता, परन्तु शनि अच्छा ही नहीं करता।

(३) जब मिथुनमें चन्द्र होता है तो पहले अढाइ सालमें साधारण व्यग्रता होती है, बीच वाले ढाई साल शरीर कष्टमें जाता हैं। परन्तु तीसरे ढाई महान् मानसिक उद्वेगमें जाते हैं।

(४) जब कर्कमें चन्द्र होता है, तब पहले ढाई साल साधारण उपाधियोंमें निकलते, तत् पश्चात् मानसिक अशांति, सर्दकि दर्द वगैरा बहुत कराते रहते हैं और जलमें मृत्युका भय होता है और तत् पश्चात् भी कठिनाइयों से भरे ढाई साल निकलते हैं। संकुचित दृष्टि मर्यादा द्वेष क्लेश यह खास बातें होती हैं।

(५) जब सिंहमें चन्द्र होता है तो पहले ढाई साल मानसिक व्याधि—दूसरे ढाई साल धंधा, रोजगार, और धन वगैराकी बातोंमें विडंबना और तीसरे ढाई साल कुछ कम तकलीफों में जाते हैं।

(६) जब कन्यामें चंद्र हो तो पहले ढाई साल धन, नौकरीके लिये बहुत बुरे। पिताके जीवनका खतरा—बीचके ढाई साल साधारण व्याधि उपाधि और तीसरे ढाई साल थोड़ी-सी उपाधिके सिवाय बहुत अच्छे धन की आय—मान बढ़ना, प्रगति, थोड़ा बहुत धर्मकी तरफ ध्यान वगैरा होता है।

(७) जब तुलामें चन्द्र होता है तो पहले ढाई साल साधारण दुःख में। बीच के ढाई बहुत अच्छे, आयमें तरक्की। धनकी आय बगैर होती है और तीसरे ढाई साल बहुत खराब जायेंगे। अकस्मात् झगड़ेका डर, जलका डर होता है।

(८) जब वृश्चिकका चन्द्र होता है तब पहले ढाई साल अच्छे बीचके ढाई साल बहुत दुःखी निकलेंगे। इस समय सत्यानाश निकल जावे ऐसी हालत होती है। क्योंकि चन्द्र नीच होता है। शनि मंगलकी राशिमें बहुत खराब होता है। जब शनि वृश्चिकमें आवे और चन्द्र कृष्ण पक्ष का हो और कोई पाप ग्रहकी दृष्टिसे तो व्यक्ति के जीवनका अंत होनेसे ईश्वर ही बचा सकता है परन्तु तीसरे ढाई साल कुछ धन होंगे लड़ाई झगड़े होंगे परन्तु नुकसान नहीं करेंगे धर्मकी तरफ ध्यान रहेगा।

(९) जब धनमें चन्द्र हो तो पहले ढाई साल बहुत खराब, बीचके साधारण और आखिरी ढाई साल अच्छे गुजरेंगे।

(१०) जब मकरमें चन्द्र होगा तो पहले ढाई साल साधारण खराब—बीचके और आखरी ढाई-ढाई साल बहुत अच्छे जावेंगे, क्योंकि शनि अपनी राशिमें होता है। मानसिक मलीनता ऐसे व्यक्तिमें हमेशा रहेगी।

(११) जब चन्द्र कुम्भमें होगा तो पहले पाँच साल बहुत अच्छे जावेंगे। मानसिक व्यग्रता रहेगी। मगर हर तरहसे प्रगतिमान रहेंगे। आखरी ढाई साल साधारण खराब रहेंगे। धर्मकी तरफ वृत्ति रहेगी और जलसे मृत्यु होनेका भय रहेगा।

(१२) जब चन्द्र मीनमें होगा तो पहले ढाई साल बहुत अच्छे होंगे। बीचके ढाई साल साधारण अच्छे और बुरे होंगे। जलसे भय रहेगा, जुकाम रहेगा। परन्तु आखरी ढाई साल बहुत खराब जावेंगे।

यह साढ़ेसतीका असर देखनेके साथ-साथ जो महादशा समानान्तर दशा चलती हो, वह देखना जरूरी है। उनके ग्रहोंके बल अच्छा, बुरा होना देखना अत्यावश्यक है। इन ग्रहोंका चन्द्रके साथ और शनिके साथ कुंडलीमें सम्बन्ध क्या है? देखना होता है और उसी समय गोचर ग्रहोंकी स्थिति भी देखना जरूरी है। यह सब ग्रहोंकी स्थिति दुःख बढ़ाने में, सुख कम करनेमें असर करती है। जहां मौत दीखती हो, वहां खटकेसे बच सकते हैं और शनि साढ़सतीमें तुलामें होनेके बाद भी मार दे, ऐसा योग हो सकता है।

शनिकी कुंडलीमें भावमें स्थान देखना बहुत जरूरी है। शनी ८ वें ११ वें स्थानमें केन्द्र त्रिकोणमें साधारण तौरसे अच्छा है, परन्तु लग्नमें अच्छा नहीं समझा गया है। शनि लग्नसे या चन्द्रसे ७ या १० खास बली होता

जाती है। मिथुनका शनि भी बहुत बुरा नहीं होता, परन्तु शनि अच्छा ही नहीं करता।

(३) जब मिथुनमें चन्द्र होता है तो पहले अढाइ सालमें साधारण व्यग्रता होती है, बीच वाले ढाई साल शरीर कष्टमें जाता है। परन्तु तीसरे ढाई महान् मानसिक उद्वेगमें जाते हैं।

(४) जब कर्कमें चन्द्र होता है, तब पहले ढाई साल साधारण उपाधियोंमें निकलते, तत् पश्चात् मानसिक अशांति, सर्दी-दर्द वगैरा बहुत कराते रहते हैं और जलमें मृत्युका भय होता है और तत् पश्चात् भी कठिनाइयों से भरे ढाई साल निकलते है। संकुचित दृष्टि मर्यादा द्वेष क्लेश यह खास बातें होती हैं।

(५) जब सिंहमें चन्द्र होता है तो पहले ढाई साल मानसिक व्याधि—दूसरे ढाई साल धंधा, रोजगार, और धन वगैराकी बातोंमें विडंबना और तीसरे ढाई साल कुछ कम तकलीफों में जाते हैं।

(६) जब कन्यामें चंद्र हो तो पहले ढाई साल धन, नौकरीके लिये बहुत बुरे। पिताके जीवनका खतरा—बीचके ढाई साल साधारण व्याधि उपाधि और तीसरे ढाई साल थोड़ी-सी उपाधिके सिवाय बहुत अच्छे धन की आय—मान बढ़ना, प्रगति, थोड़ा बहुत धर्मकी तरफ ध्यान वगैरा होता है।

(७) जब तुलामें चन्द्र होता है तो पहले ढाई साल साधारण दुःख में। बीच के ढाई बहुत अच्छे, आयमें तरक्की। धनकी आय बगैर होती है और तीसरे ढाई साल बहुत खराब जायेंगे। अकस्मात् झगड़ेका डर, जलका डर होता है।

(८) जब वृश्चिकका चन्द्र होता है तब पहले ढाई साल अच्छे बीचके ढाई साल बहुत दुःखी निकलेंगे। इस समय सत्यानाश निकल जावे ऐसी हालत होती है। क्योंकि चन्द्र नीच होता है। शनि मंगलकी राशिमें बहुत खराब होता है। जब शनि वृश्चिकमें आवे और चन्द्र कृष्ण पक्ष का हो और कोई पाप ग्रहकी दृष्टिसे तो व्यक्ति के जीवनका अंत होनेसे ईश्वर ही बचा सकता है परन्तु तीसरे ढाई साल कुछ शुभ होंगे लड़ाई झगड़े होंगे परन्तु नुकसान नहीं करेंगे धर्मकी तरफ ध्यान रहेगा।

(९) जब धनमें चन्द्र हो तो पहले ढाई साल बहुत खराब, बीचके साधारण और आखिरी ढाई साल अच्छे गुजरेंगे।

(१०) जब मकरमें चन्द्र होगा तो पहले ढाई साल साधारण खराब—बीचके और आखरी ढाई-ढाई साल बहुत अच्छे जावेंगे, क्योंकि शनि अपनी राशिमें होता है। मानसिक मलीनता ऐसे व्यक्तिमें हमेशा रहेगी।

(११) जब चन्द्र कुम्भमें होगा तो पहले पांच साल बहुत अच्छे जावेंगे। मानसिक व्यग्रता रहेगी। मगर हर तरहसे प्रगतिमान रहेंगे। आखरी ढाई साल साधारण खराब रहेंगे। धर्मकी तरफ वृत्ति रहेगी और जलसे मृत्यु होनेका भय रहेगा।

(१२) जब चन्द्र मीनमें होगा तो पहले ढाई साल बहुत अच्छे होंगे। बीचके ढाई साल साधारण अच्छे और बुरे होंगे। जलसे भय रहेगा, जुकाम रहेगा। परन्तु आखरी ढाई साल बहुत खराब जावेंगे।

यह साढ़ेसतीका असर देखनेके साथ-साथ जो महादशा समानान्तर दशा चलती हो, वह देखना जरूरी है। उनके ग्रहोंके बल अच्छा, बुरा होना देखना अत्यावश्यक है। इन ग्रहोंका चन्द्रके साथ और शनिके साथ कुंडलीमें सम्बन्ध क्या है? देखना होगा है और उसी समय गोचर ग्रहोंकी स्थिति भी देखना जरूरी है। यह सब ग्रहोंकी स्थिति दुःख बढ़ाने में, सुख कम करनेमें असर करती है। जहां मौत दीखती हो, वहां खटकेसे बच सकते हैं और शनि साढ़सतीमें तुलामें होनेके बाद भी मार दे, ऐसा योग हो सकता है।

शनिकी कुंडलीमें भावमें स्थान देखना बहुत जरूरी है। शनी ८ वें ११ वें स्थानमें केन्द्र त्रिकोणमें साधारण तौरसे अच्छा है, परन्तु लग्नमें अच्छा नहीं समझा गया है। शनि लग्नसे या चन्द्रसे ७ या १० खास बली होता

× सिंह-लग्न-जातक ×

[लेखकः— श्री नन्दकिशोर गर्ग]

—:(०):—

सिंह अग्नि-तत्वकी स्थिर राशि है। इसका स्वरूप संज्ञानुरूप ही सिंह है। सिंहके समान इसका निवास वन, पर्वत, गुफा, झाड़ी आदिमें माना जाता है, आबादी से दूर विचरण करना ही इसे प्रिय है। यह शीर्षोदय एवं रात्रिवसी राशि है। पुरुषके पेट पर, नाभिके आस-पास तथा पसलियों पर इसका शासन होता है। यह अल्प-पूजा राशि है। इस लग्नके जातकमें सिंह तथा राशि स्वामी सूर्यका प्रभाव, स्वभाव, मनोवृत्ति आदि गुणोंमें स्पष्ट झलकता है?

राशिका अग्नि-तत्व जातकके शीघ्र क्रोधमें आ जाने से प्रकट होता है। इस लग्नके जातक अत्यन्त शीघ्र क्रोधित हो जाते हैं, क्रोधकी मात्रा भी इतनी अधिक बढ़ जाती है कि कट्टर शत्रुताका आभास होने लगता है तथा वे विपक्षीका विनाश करनेको तत्पर हो जाते हैं। दबानेसे ये लोग दबाये नहीं जा सकते। भीतर ही भीतर सुलगते रहते हैं। (यों तो छोटी-छोटी बातोंकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता है।) वे समय आने पर विस्फोटक स्वरूपमें प्रकट होते हैं। अग्निका एक और गुण, समदृष्टि विशेष पाया जाता है। सबका समान रूप से लाभ हो, तो उस समय ये अपनी हानिकी भी चिंता नहीं करते। अपने सांसारिक व्यवहारोंमें जब वे अन्य लोगोंको गरीबोंके अधिकार छीनते, सताते तथा स्वार्थ-वश पक्षपातपूर्ण व्यवहार करते देखते हैं, तो वे इसे सहन नहीं कर सकते, तत्काल निर्बलको अभयप्रदान (चाहे मांगा ही न गया हो) देकर रक्षाके लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं। अति शीघ्रतासे भभक उठना उनकी विशेषता होती है। परंतु तत्काल ही क्षमा शील एवं शांत हो जाते हैं। इनको शांत करनेका अचूक उपाय यह है कि विपक्षी को शांत हो जाना चाहिये। यदि विपक्षी तर्क पर तर्क प्रस्तुत करता रहा तो उनका क्रोध चरम सीमा तक पहुँच सकता है। ऐसे समयमें दूसरेको क्या स्वयंको भी भीषणसे भीषण आपत्तिमें फंसानेसे भय नहीं खाते। पदार्थोंका शुद्धिकरण अग्निका विशेष गुण है। इस लग्न के जातकमें भी इ का प्रभाव दिखाई देता है। ये लोग अपने त्याग, तपस्या, कष्टसहिष्णुतासे लोगोंके दुर्गुणों एवं कष्टोंको दूर करना चाहते हैं। तथा उसके लिए भर-सक प्रयत्न भी करते हैं।

इस राशिका स्वरूप सिंहके समान कहा गया है। तदनुसार ही जातककी मनोवृत्ति, कार्यप्रणाली एवं स्वभाव देखा जाता है। सिंहको जंगलका राजा कहा है। इसी के समान इस लग्नका जातक भी अपने समाजमें सम्मान एवं उच्चपद पाता है। नेतृत्व उसे अत्यन्त प्रिय होता है। अवसर आने पर वह उसका लाभ भी पूरा-पूरा होनेका प्रयत्न करता है। एक पत्तेका खड़कना ही सिंहको वर्त-

---

है और उसकी वृत्ति व्यक्तिको जल्दी बहुत ऊपर चढ़ा कर वहां रख कर जल्दी बहुत बुरी तरहसे गिरा कर मारने की तरफ रहती है।

अपनी ओरसे थोड़ेसे वाचन और थोड़ेसे अनुभवसे जो कुछ तुच्छ समझमें आया है, वह लिखा है। ज्योतिष के ज्ञानी तो इस लेखको त्रुटियोंसे भरपूर देखेंगे, परंतु मेरे जैसे विद्यार्थियोंको थोड़ा बहुत रस जरूर मिलेगा। यह सोच कर यह लेख लिखनेका प्रयत्न किया है।

—×—

मान एवं भावी परिस्थितिका बोध करा देता है। इसी प्रकार सिंह लग्न जातक प्रत्येक वस्तुको एक बार देख कर या सुन कर उसके स्वरूप वस्तुस्थिति एवं भावी घटना चक्रका अनुमान लगा लेता है। तथा भावी आशंकाओंसे सचेत हो जाता है। ये लोग कभी अपनी ओर से किसीको आगे होकर नहीं छेड़ते, अपने ही रंगमें मस्त रहते हैं। परन्तु यदि कोई बराबर छेड़छाड़ करता जाय, तो इनका स्वरूप भयंकर होता है। प्रथम भयंकर स्वरूप तो उनकी सिंह-गर्जनामें ही प्रकट होता है। यदि उस शाब्दिक दण्डसे काम चल गया तो ठीक है। यदि किसी प्रकार बाधा टल गई तो फिर उनका क्षमाशील स्वभाव आगेका कार्य सुगम कर देता है।

सिंह राज्य ग्रह सूर्यकी राशि है। अतः इस लग्नके जातकमें अधिकार प्रेम शासन करनेकी इच्छा व नेतृत्वकी अभिलाषा विशेष रूपसे जागरूक रहती है। राशिका स्थिर स्वभाव इसमें योग देता है, जिसमें जातक बड़ी दूरंदेशी एवं दृढ़ताके साथ विचारपूर्वक योजनाओंका निर्माण करता है। इन लोगोंमें अहं तत्वकी मात्रा विशेष रूपमें पाई जाती है। स्वयंको, अपने ज्ञान, पद, कुटुम्ब, रीति-रिवाज आदिको प्रधान मानने वाले होते हैं। इनका मत चाहे सही हो या गलत, ये उस पर दृढ़ रहते हैं। ग्रहोंकी अशुभ स्थिति जातकमें जिद्दी, क्रोधी व विनाशक प्रवृत्तिका निर्माण करती है। वैसे इनके हृदय में छलकपट नहीं होता है। इस कारण ये निर्भीक एवं स्पष्टवादी होते हैं। जो कुछ विचार वस्तुस्थिति देखते मनमें उठते हैं, उन्हें ज्यों के त्यों व्यक्त कर देते हैं। तत्काल उत्तर देना भी उनकी एक विशेषता होती है। बोलते समय उनका स्वरूप कभी-कभी अत्यन्त भयंकर व उग्र प्रतीत होता है। परन्तु हृदय इनका बड़ा भोला होता है। किसीको भी निरर्थक हानि पहुँचाना उन्हें नहीं आता। यह स्वभाव उन्हें उनके जीवनमें उन्नति करनेमें पूर्ण सहायता करता है। सिंहका जैसे सम्पूर्ण वन में ही शासन होता है, वैसे ही इस लग्नके व्यक्तिका कार्य-क्षेत्र भी विशाल होता है। महानताका प्रेम व महान् बननेकी भावना इतनी प्रबल होती है कि छोटी-छोटी बातोंको वे तुच्छ समझते हैं व घृणा करते हैं।

सिंह भचक्रका पञ्चम स्थान है। अतः सिंह लग्न जातकमें विद्या, ललित-कलाओं आदिका प्रेम अधिक होता है। अन्य ग्रहोंकी शुभ स्थिति रही तो जातक विद्वान अथवा कलाकार बन जाता है। स्मरण शक्ति इनकी बड़ी प्रबल होती है। कलाकारकी ही प्रकृत्यनुसार प्रत्येक कार्यमें नियमितताका तथा उसके सुचारु होनेका विशेष ध्यान रखता है। संतानका स्थान माना जानेसे इसका सम्बन्ध वात्सल्यसे भी अधिक रहता है। इसी कारण इन लोगोंको सन्तानके प्रति अनन्य प्रेम होता है। अपने उपयुक्त गुणोंके साथ इसका सम्मिश्रण होनेसे यह स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि चाहे वे स्वयं क्रोधमें आकर अपनी सन्तानको दण्ड आदि देकर कष्ट भले ही कभी पहुँचा दें, परन्तु अन्य किसी को कुछ कहते तक नहीं देख सकते। जनतन्त्रके स्थान पर उसे शासक-व्यवस्था पर ही विशेष प्रेम रहता है। सिंहका प्रधान गुण आरामपसंद होना भी इनमें अधिक पाया जाता है। सिंह सोता पड़ा रहता है। जब असह्य भूख लगे अथवा कोई छेड़ दे, तभी वह कार्यकी ओर अग्रसर होता है। इसी प्रकार इस लग्नके जातक भी बिना आवश्यकताके कार्यके लिए उत्साहित नहीं होता। आवश्यकताओंका भार उसकी सब सुस्ती एवं आरामतलबी हरण कर उसे कार्यमें तत्पर कर देती है।

राशिके निवास स्थान आदिका भी जातक पर पूर्ण प्रभाव होता है। वृहज्जातकके टीकाकार लिखते हैं—

वन, पर्वत, चर निशि बली, सर्वोत्तम यह राशि।
हरिज दलन विक्रम करन, सिंह स्वरूप विलास॥

इस राशिके निवास आदि विषय ऊपर कहा जा चुका है। इसका प्रभाव जातक पर इस प्रकार देखा गया है कि इस लग्नका जातक भी ऐसे स्थानोंका निवास चाहता है। एकान्तवास करना उसे अत्यन्त प्रिय होता है। परमात्मा की महानतामें उसे पूर्ण विश्वास होता है तथा वह धार्मिक तत्वको समझने वाला होता है। जंगलकी

विशालता एवं पर्वतकी उच्चताका आभास इसके हृदयकी उदारता तथा उच्च विचारोंमें दिखाई देता है। इसके जातक कठिनाइयोंकी चिन्ता न करने वाले पराक्रमी व्यक्ति होते हैं। कठिन कार्योंको पूरा करनेका प्रयत्न करना तथा बाधाओं पर विजय प्राप्त करना इसका प्रथम लक्ष्य होता है।

पाँचवा स्थान मित्र, मंत्र आदिसे भी सम्बन्ध रखता है। इस लग्नका जातक भी अनेक मित्रों वाला होता है। उधर मन्त्र शक्ति पर भी इसका पूरा विश्वास होता है। इसको सहायतासे वह अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें प्रयत्नशील रहता है। मित्रोंकी सहायताके लिए वह कठिन से कठिन कार्य करनेको तैयार हो जाता है। कभी-कभी तो स्वयं हानि सह कर भी मित्रोंका लाभ सोचता है। इसका जीवन बड़ा संयमी होता है।

शरीरकी आकृतिसे भी प्रभाव झलकता है। शरीर का मध्यम कद, गौर या गेहुँआ वर्ण, गोल भरा हुआ मुँह होता है शरीर पुष्ट रहता है, गर्दन भी क्वचित मोटी ही होती है। हड्डियां पूर्ण विकसित तथा कंधे व सीना चौड़ा होता है। शरीर का ऊपरी भाग नीचेके भाग से बलवान् होता है, पर लम्बा नहीं। जातकका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली एवं भव्य होता है। दांत इसके अव्यवस्थित व छोटे-बड़े होते हैं।

इनसे व्यवहार करने वालोंको इनके उपरोक्त गुणावगुणों पर पूर्ण विचार रखना चाहिये। सर्व प्रथम बात तो यह है कि इनके साथ रहने वाला इनसे प्रेम रख कर ही लाभ पा सकता है। विरोधी भावना वालोंसे इनका सम्बन्ध निभना कठिन होता है। इनको चरित्र तथा स्वाभिमान का विशेष विचार रहता है। स्वाभिमानको तनिक भी ठेस लगना उन्हें असह्य प्रतीत होता है। अहं तत्व, बड़प्पनकी भावना आदि बातोंका प्रभाव उन पर रहता ही है। इस कारण यदि कोई उन्हें प्रसन्न रखना चाहे तो उन्हें यह कहते रहना चाहिये—"हम आपके आश्रित हैं, आप ही हमारी नाव पार लगा सकते हैं, आपकी कृपाके बिना हमारा तो अस्तित्व ही नहीं रह पायगा आदि" इनकी प्रत्येक बातका उत्तर प्रसन्न मुद्रासे देना चाहिये। यदि आपको इनसे कुछ सहायता की अपेक्षा हो तो सीधा उपाय इनकी प्रशंसा करना है। आप इनकी दान-प्रियता, न्याय-प्रियता एवं दीनों पर दयालुता आदि भावनोंको आकर्षित कीजियेगा। इन्हें प्राचीन संस्कृति, अपने रीति-रिवाज, वैभव, शान-शौकत भी प्रिय लगती है। अतः इन लोगोंसे प्रीति बढ़ानेके लिए सभी प्रकारके बाह्य उपकरणोंका प्रयोग आवश्यक है। साधारण बोल-चालकी नम्रता, नियमितता व सज्जनता तथा अन्य विषयोंका पूर्ण ध्यान रखना तथा उनके अनुसार आचरण करना इस लग्नके जातकको प्रसन्न करनेके लिये आवश्यक है। कंजूसी अथवा क्षुद्र भावनाओंसे उन्हें घृणा होती है। अतः ऐसा विषय इनके सम्मुख उपस्थित ही नहीं करना चाहिये। रूढ़िवादकी अपेक्षा इनका ध्यान अंतर्निहित उद्देश्योंकी ओर अधिक रहता है।

सप्तमेश शनि होता है, जो सूर्यका शत्रु है। इस कारण सप्तम स्थान सम्बन्धी सुख उन्हें पूर्णतया नहीं होता। अव्वल तो विवाहमें ही देर लगती है। देरसे होने पर भी मनके लायक युग्म नहीं बनता। शारीरिक, मानसिक या किसी अन्य प्रकारका विरोधाभास रहता है। विशेष सांसारिक सुखसे उन्हें प्रेम नहीं होता।

मुंदन ज्योतिषमें यह राशि फ्रांस, रूमानिया, इटली, रोम आदि देशों पर शासन करती है। बम्बई, फिलेडेल्फिया, प्रेगू, ब्रिस्टल आदि देशों पर भी इसके शासनांतर्गत आते हैं। फ्रांसके नेपोलियन, इटलीके मुसोलिनीसे पाठकगण परिचित ही हैं। निर्भयता, अपनी इष्ट सिद्धि के लिए अथक प्रयत्न, उत्कट उत्साह ही इन महापुरुषोंकी विशेषता थी। नेपोलियनबोना पार्ट तो स्वयं भी सिंहलग्न जातक थे। इन देशोंमें सन्तानकी उन्नति व प्रेमकी मात्रा विशेष पाई जाती है। बम्बई रोम आदि विश्वके प्रमुख व्यापारिक नगरोंमें से है। इटलीके लोगोंमें स्पष्टवादिता व पक्षपात रहित मनोवृत्तिका आभास हमें गत महायुद्धमें तटस्थ रहने तथा वर्तमानमें भी संयुक्त राष्ट्र संघके भाषणोंसे हो सकता है। इस प्रकार सामूहिक रूपसे भी इस राशिके गुणोंका प्रभाव हमें दिखाई देगा।

विशालता एवं पर्वतकी उच्चताका आभास उसके हृदयकी उदारता तथा उच्च विचारोंमें दिखाई देता है। उसके जातक कठिनाइयोंकी चिन्ता न करने वाले पराक्रमी व्यक्ति होते हैं। कठिन कार्योंको पूरा करनेका प्रयत्न करना तथा बाधाओं पर विजय प्राप्त करना उसका प्रथम लक्ष्य होता है।

पांचवा स्थान मित्र, मंत्र आदिसे भी सम्बन्ध रखता है। इस लग्नका जातक भी अनेक मित्रों वाला होता है। उधर मन्त्र शक्ति पर भी उसका पूरा विश्वास होता है। इसको सहायतासे वह अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें प्रयत्नशील रहता है। मित्रोंको सहायताके लिए वह कठिन से कठिन कार्य करनेको तैयार हो जाता है। कभी-कभी तो स्वयं हानि सह कर भी मित्रोंका लाभ सोचता है। उसका जीवन बड़ा संयमी होता है।

शरीरकी आकृतिसे भी प्रभाव झलकता है। शरीर का मध्यम कद, गौर या गेहुँआ वर्ण, गोल भरा हुआ मुंह होता है शरीर पुष्ट रहता है, गर्दन भी क्वचित मोटी ही होती है। हड्डियां पूर्ण विकसित तथा कंधे व सीना चौड़ा होता है। शरीर का ऊपरी भाग नीचेके भाग से बलवान् होता है, पर लम्बा नहीं। जातकका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली एवं भव्य होता है। दांत उसके अव्यवस्थित व छोटे-बड़े होते हैं।

इनसे व्यवहार करने वालोंको इनके उपरोक्त गुणावगुणों पर पूर्ण विचार रखना चाहिये। सर्व प्रथम बात तो यह है कि इनके साथ रहने वाला इनसे प्रेम रख कर हो लाभ पा सकता है। विरोधी भावना वालोंसे इनका सम्बन्ध निभना कठिन होता है। उनको चरित्र तथा स्वाभिमान का विशेष विचार रहता है। स्वाभिमानको तनिक भी ठेस लगना उन्हें असह्य प्रतीत होता है। अहं तत्व, बड़प्पनकी भावना आदि बातोंका प्रभाव उन पर रहता ही है। इस कारण यदि कोई उन्हें प्रसन्न रखना चाहे तो उन्हें यह कहते रहना चाहिये—"हम आपके आश्रित हैं, आप ही हमारी नाव पार लगा सकते हैं, आपकी कृपाके बिना हमारा तो अस्तित्व ही नहीं रह पायगा आदि" उनकी प्रत्येक बातका उत्तर प्रसन्न मुद्रासे देना चाहिये। यदि आपको उनसे कुछ सहायता की अपेक्षा हो तो सीधा उपाय उनकी प्रशंसा करना है। आप उनकी दान-प्रियता, न्याय-प्रियता एवं दीनों पर दयालुता आदि भावनोंको आकर्षित कीजियेगा। उन्हें प्राचीन संस्कृति, अपने रीति-रिवाज, वैभव, शान-शौकत भी प्रिय लगती है। अतः इन लोगोंसे प्रीति बढ़ानेके लिए सभी प्रकारके बाह्य उपकरणोंका प्रयोग आवश्यक है। साधारण बोल-चालकी नम्रता, नियमितता व सज्जनता तथा अन्य विषयोंका पूर्ण ध्यान रखना तथा उनके अनुसार आचरण करना इस लग्नके जातकको प्रसन्न करनेके लिये आवश्यक है। कंजूसी अथवा क्षुद्र भावनाओंसे उन्हें घृणा होती है। अतः ऐसा विषय उनके सम्मुख उपस्थित ही नहीं करना चाहिये। रूढ़िवादकी अपेक्षा इनका ध्यान अंतर्निहित उद्देश्योंकी ओर अधिक रहता है।

सप्तमेश शनि होता है, जो सूर्यका शत्रु है। इस कारण सप्तम स्थान सम्बन्धी सुख उन्हें पूर्णतया नहीं होता। अव्वल तो विवाहमें ही देर लगती है। देरसे होने पर भी मनके लायक युग्म नहीं बनता। शारीरिक, मानसिक या किसी अन्य प्रकारका विरोधाभास रहता है। विशेष सांसारिक सुखसे उन्हें प्रेम नहीं होता।

मुंदन ज्योतिषमें यह राशि फ्रांस, रूमानिया, इटली, रोम आदि देशों पर शासन करती है। बम्बई, फिलेडेल्फिया, प्रेगू, ब्रिस्टल आदि देशों पर भी इसके शासनान्तर्गत आते हैं। फ्रांसके नेपोलियन, इटलीके मुसोलनीसे पाठकगण परिचित ही हैं। निर्भयता, अपनी इष्ट सिद्धि के लिए अथक प्रयत्न, उत्कट उत्साह ही इन महापुरुषोंकी विशेषता थी। नेपोलियनबोना पार्ट तो स्वयंभी सिंहलग्न जातक थे। इन देशोंमें सन्तानकी उन्नति व प्रेमकी मात्रा विशेष पाई जाती है। बम्बई रोम आदि विश्वके प्रमुख व्यापारिक नगरोंमें से है। इटलीके लोगोंमें स्पष्टवादिता व पक्षपात रहित मनोवृत्तिका आभास हमें गत महायुद्धमें तटस्थ रहने तथा वर्तमानमें भी संयुक्त राष्ट्र संघके भाषणोंसे हो सकता है। इस प्रकार सामूहिक रूपसे भी इस राशिके गुणोंका प्रभाव हमें दिखाई देगा।

सर्व प्रकार विचार करनेके पश्चात् यह ज्ञात होता है कि इस लग्नके जातक अपने व्यवहार, बातचीत आदिसे बड़े प्रभावशाली बन जाते हैं उनके तर्क बड़े सुन्दर व विनोदी होती हैं। सामने वालोंको उन पर शीघ्र विश्वास हो जाता है। इनकी संगतिमें रहने वाले सदा हंसमुख रहते हैं। उनके दर्शन, भाषण आदिमें सर्व चिन्ताओंको उत्पन्न करने तथा नष्ट करने दोनोंकी शक्ति पूर्णतः होती है। जो जैसा व्यवहार कुशल होगा लाभ उठा सकेगा।

धन्धा एवं प्रवृत्ति

सिंह राशिका स्वामी सूर्य है। सूर्य आत्मकारक ग्रह कहा गया है, सिंह राज्य राशि भी है तथा सूर्य राज्य व पिताका भी कारक है। राशि व स्वामीके उक्त अनेक गुणोंके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारके धन्धे करने वाले इस राशिके पाये जाते हैं। राज्यसे सम्बन्धित होनेसे, सूबा या अन्य उच्च राज्याधिकारी, वकील, क्लर्क, वन-पर्वतचारी होने पर वनविभाग, खदानों आदिके व्यवसायी इस राशिमें पाये जाते हैं आत्मकारक सूर्यकी राशि जातकमें आध्यात्मिक भावनाओंका उदय करती अतः वैसे तो प्रत्येक जातकका न्यूनाधिक लक्ष्य इस ओर होता ही है तथापि कुछ धर्मगुरु, व्यवस्थापक आदि इस लग्नमें पाये जाते हैं। राशिके अग्नितत्त्वके कारण सुनार, धातु-व्यवसायी व अन्य अग्नि संबंधी धन्धों वाले भी मिलते हैं। कोई भी धंधा करें नेतृत्व व अधिकार रहता है। जातककी बुद्धि तो स्थिर रहती है परन्तु फिर भी जीवनमें कई धंधे करने वाला होता है। उन्नतिकी ओर सदैव उसका लक्ष्य रहता है बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाएं उसके मस्तिष्कमें रहती हैं।

भाग्योदय एवं शुभ समय

सिंह लग्नका स्वामी सूर्य होनेसे २२वें वर्षसे भाग्योदय काल होता है। पंचमेश गुरु होनेसे १६वें वर्ष बुद्धिका प्रकाश होता है। उस समय शिक्षणमें अचानक उन्नति दिखाई देती है, शुक्र कर्म स्थानका अधिपति होता है इस कारण व्यवसायमें स्थिरता २६वें वर्षसे प्रारम्भ होती है शुक्र स्वामी होनेसे इसके जातक साधारण व्यवहार में आने वाले पदार्थोंके व्यवसाई होते हैं। धन व लाभका अधिपति बुध यदि शुभ स्थिति व दृष्टि संयोग युक्त हुआ तो ३२वें वर्ष तक आर्थिक दृष्टिसे अच्छा योग बन जाता है। सिंह लग्न के लिए लघु मध्य पाराशरीनें कहा है।

रोहिणे या सितौ पापौ कुजजीवौ शुभावहौ।
प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं कुजशुक्रयोः॥

मंगल और गुरु शुभ ग्रह हैं बुध और शुक्र पाप ग्रह हैं अगर शुक्र मंगलसे युत हो तो शुभ कारक नहीं होता है। इस प्रकार १६ से २८ वर्ष तकका समय बौद्धिक विकासका होता है। २८ से ३२ तकका समय आर्थिक निर्माणका कहा गया है। गुरु मंगल दोनों त्रिकोणेश हैं इनका संयोग हो जाना औरभी शुभ होता है। यदि इन ग्रहोंकी महा दशायें इसके पूर्व आ जाती हैं तो तबसे ही फल प्राप्त होना आरम्भ हो जाता है।

शुभ दशांतर्दशाः

ऊपर अभी गुरु मंगल शुभ ग्रह कहे गये हैं इनमें द्वितीयकी महादशा सर्वाधिक योग कारक होती है दशमेश तृतीयेश होनेसे राज्य व धन की दृष्टिसे शुक्र भी योग कारक हो जाता है। बुध शारीरिक व अन्य दृष्टिसे चाहे अशुभ फल है, परन्तु आर्थिक दृष्टिसे उसकी शुभ स्थिति अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होती है। मंगलकी महा दशामें सूर्य, गुरु, बुध, शुक्र, गुरु दशामें शनि चन्द्र व सूर्य; शनि महादशामें चन्द्र, शनि व शुक्र; सूर्य महादशामें शनि व बुध तथा राहु महादशा गुरु, बुध व शनिका अन्तर शुभ फलदाई होता है।

अशुभ अन्तर्दशादि

शुक्र व बुध अशुभ ग्रह हैं। इनकी दशांतर्दशा अशुभ फल देती है इन दशाओंमें शनि, सूर्य, राहु व केतुके अन्तर शुभ नहीं रहते हैं। यदि मंगल व शुक्रकी युति अन्तर शुभ नहीं रहते हैं। यदि मंगल व शुक्रकी युति अशुभ स्थानोंमें हो तो हानिकर होती है। लग्नमें शनिकी

सर्व प्रकार विचार करनेके पश्चात् यह ज्ञात होता है कि इस लग्नके जातक अपने व्यवहार, बातचीत आदिसे बड़े प्रभावशाली बन जाते हैं उनके तर्क बड़े सुन्दर व विनोदी होती हैं। सामने वालोंको उन पर शीघ्र विश्वास हो जाता है। इनकी संगतिमें रहने वाले सदा हंसमुख रहते हैं। उनके दर्शन, भाषण आदिमें सर्व चिन्ताओंको उत्पन्न करने तथा नष्ट करने दोनोंकी शक्ति पूर्णतः होती है। जो जैसा व्यवहार कुशल होगा लाभ उठा सकेगा।

धन्धा एवं प्रवृत्ति

सिंह राशिका स्वामी सूर्य है। सूर्य आत्मकारक ग्रह कहा गया है, सिंह राज्य राशि भी है तथा सूर्य राज्य व पिताका भी कारक है। राशि व स्वामीके उक्त अनेक गुणोंके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारके धन्धे करने वाले इस राशिके पाये जाते हैं। राज्यसे सम्बन्धित होनेसे, सूबा या अन्य उच्च राज्याधिकारी, वकील, क्लर्क, वन-पर्वतचारी होने पर वनविभाग, खदानों आदिके व्यवसायी इस राशिमें पाये जाते हैं आत्मकारक सूर्यकी राशि जातकमें आध्यात्मिक भावनाओंका उदय करती अतः वैसे तो प्रत्येक जातकका न्यूनाधिक लक्ष्य इस ओर होता ही है तथापि कुछ धर्मगुरु, व्यवस्थापक आदि इस लग्नमें पाये जाते हैं। राशिके अग्नितत्वके कारण सुनार, धातु-व्यवसायी व अन्य अग्नि संबंधी धन्धों वाले भी मिलते हैं। कोई भी धंधा करें नेतृत्व व अधिकार रहता है। जातककी बुद्धि तो स्थिर रहती है परन्तु फिर भी जीवनमें कई धंधे करने वाला होता है। उन्नतिकी ओर सदैव उसका लक्ष्य रहता है बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाऐं उसके मस्तिष्कमें रहती हैं।

भाग्योदय एवं शुभ समय

सिंह लग्नका स्वामी सूर्य होनेसे २२वें वर्षसे भाग्योदय काल होता है। पंचमेश गुरु होनेसे १६वें वर्ष बुद्धिका प्रकाश होता है। उस समय शिक्षणमें अचानक उन्नति दिखाई देती है, शुक्र कर्म स्थानका अधिपति होता है इस कारण व्यवसायमें स्थिरता २६वें वर्षसे प्रारम्भ होती है शुक्र स्वामी होनेसे इसके जातक साधारण व्यवहार में आने वाले पदार्थोंके व्यवसाई होते हैं। धन व लाभका अधिपति बुध यदि शुभ स्थिति व दृष्टि संयोग युक्त हुआ तो ३२वें वर्ष तक आर्थिक दृष्टिसे अच्छा योग बन जाता है। सिंह लग्न के लिए लघु मध्य पाराशरीमें कहा है।

> रोहिणो या सितौ पापौ कुजजीवौ शुभावहौ।
> प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं कुजशुक्रयोः॥

मंगल और गुरु शुभ ग्रह हैं बुध और शुक्र पाप ग्रह हैं अगर शुक्र मंगलसे युत हो तो शुभ कारक नहीं होता है। इस प्रकार १६ से २८ वर्ष तकका समय बौद्धिक विकासका होता है। २८ से ३२ तकका समय आर्थिक निर्माणका कहा गया है। गुरु मंगल दोनों त्रिकोणेश हैं इनका संयोग हो जाना औरभी शुभ होता हैं। यदि इन ग्रहोंकी महा दशायें इसके पूर्व आ जाती हैं तो तबसे ही फल प्राप्त होना आरम्भ हो जाता है।

शुभ दशांतर्दशाः

ऊपर अभी गुरु मंगल शुभ ग्रह कहे गये हैं इनमें द्वितीयकी महादशा सर्वाधिक योग कारक होतो है दशमेश तृतीयेश होनेसे राज्य व धन की दृष्टि से शुक्र भी योग कारक हो जाता है। बुध शारीरिक व अन्य दृष्टिसे चाहे अशुभ फल है, परन्तु आर्थिक दृष्टिसे उसकी शुभ स्थिति अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होती है। मंगलकी महा दशामें सूर्य, गुरु, बुध, शुक्र, गुरु दशामें शनि चन्द्र व सूर्य; शनि महादशामें चन्द्र, शनि व शुक्र; सूर्य महादशामें शनि व बुध तथा राहु महादशा गुरु, बुध व शनिका अन्तर शुभ फलदाई होता है।

अशुभ अन्तर्दशादि

शुक्र व बुध अशुभ ग्रह हैं। इनकी दशांतर्दशा अशुभ फल देती है इन दशाओंमें शनि, सूर्य, राहु व केतुके अन्तर शुभ नहीं रहते हैं। यदि मंगल व शुक्रकी युति लग्नमें शनिकी अशुभ स्थानोंमें हो तो हानिकर होती है।

स्थिति महान् उपद्रवकारी होती है, अन्य अशुभ ग्रहोंका स्थिति महान् उपद्रवकारी होती है। अष्टममें गुरुकी राशि योग शस्त्रादिक पीड़ा बताता है। अष्टममें गुरुकी राशि मीन है अतः इनकी अवनति कभी २ तो धर्म मार्ग पर चलते रहने पर भी हो जाती है। तथापि इसके प्रभावसे मृत्यु अच्छी तरह होती है। षष्ठ स्थानमें मकर राशि वात पीड़ा आदि रोगोंकी सूचक है। तीनों त्रिकोणोंमें अग्नि तत्व की राशियां हैं जो जातकमें शौर्य एवं तेजस्विता तो लाती है परन्तु ग्रहोंकी अशुभ स्थितिके समय शस्त्र अग्नि आदिसे भय उत्पन्न करा देती है।

भावार्थ रत्नाकर में सिंह लग्न जातकके लिए निम्न शुभ योगावली दी है।

१. यदि सिंह लग्न जातकको सूर्य, बुध व मंगलका सुसंयोग हो जाय तो अतुल सम्पत्ति प्राप्त कराता है। यदि उक्त योगमें मंगलके स्थान पर गुरु हो तो भी यही शुभ योग बनाता है। कारण यह कि सूर्य, बुधका संयोग ही आर्थिक दृष्टि से लाभकारी सिद्ध हो जाता है।

२. यदि सूर्य, बुध व मंगल लग्नमें हों तो जातकको अतुल सम्पत्ति बुध दशामें प्राप्ति होती है।

३. यदि मंगल व शनि व्ययगत हों तो शनि अपनी दशामें योग कारक होता है। प्रधान प्रधान शुभ योगोंका यहां वर्णन किया गया है। अनेकों योग राजयोगाध्याय आदिमें मिलते हैं। जिनका फल ग्रहोंकी स्थिति एवं बलाबलके अनुसार होता है। अतः इनको सीधे प्रयुक्त न कर बुद्धि व तर्कसे पर्यवेक्षण कर उपयोग करना चाहिये।

शरीर पर प्रभाव एवं रोग व मारक विचार

इस राशिका प्रभाव कालपुरुषकी नाभिप्रदेश, पेट, पसलियों आदि पर होता है जिसके कारण लग्नकी अशुभ स्थितिमें इन स्थानोंमें पीड़ा होता है। इस लग्नके जातकको हृदय व रीढ़की हड्डीमें खराबी हिस्टीरिया, हृद् रोग (हृदयकी विशेष धड़कन) कभी २ कंठमें पीड़ा कफ व श्वासकी दुर्गन्ध, विष युक्त ज्वर, मस्तिष्ककी निर्बलता आदि शुभभी होते हैं। श्री सत्यनारायण रावने Scientific Astrology में लिखा है कि इस लग्न वालेके सामान्य रोग ये होते हैं Affections of heart & Spine Anuerism, Spinal meningitis--Angina, Regvrgitations in the heart – Hydraemia – Palpitations etc जो उपरोक्त रोगोंके ही अन्य नाम हैं। मकर व मीन राशि षष्ठ व अष्टम स्थानमें है यदि पापग्रस्त हुई तो जांघ या पैरमें पीड़ा होती है। इस लग्नकी स्त्रियोंमें हिस्टीरिया, नलोंमें पानी भर जाना Hydraemia आदि रोग होते हैं। नाभि-प्रदेश पर शासन होनेसे स्त्रियोंके गर्भाशय सम्बन्धी रोग पानी भर जाना आदि होते हैं। हृदय रोगका विशेष कारण कर्क राशिका व्यय स्थानमें होना है जब यह पीड़ित होती है तो विशेष पीड़ा होती है। अल्प प्रजा राशि होनेसे सन्तान बहुत कम होती है। महर्षि पाराशरने कहा है कि सिंह लग्न जातकके लिये—

["घ्नंनति सौम्यादयः पापा मारकत्वेण लक्षिताः"]

अर्थात् मारक बुधादि ग्रह हों तो मारक बनते हैं। शनि भी मारक संज्ञामें आता है। मारक महादशा अन्तर्दशा निम्न प्रकार हैं। बुध महादशामें शनि, शुक्र, गुरु व राहु, केतुमें शनि व राहु; शुक्रमें शनि, राहु, केतु; चन्द्रमें बुध व गुरु; राहुमें बुध, केतु व शुक्र, व गुरु महादशामें शनि व शुक्रके अन्तर मारक सिद्ध होते हैं सर्वाधिक अधिकार प्राप्त बुध है।

माताके लिये अशुभ अन्तर्दशा

चन्द्र महादशामें गुरु, बुध व शनि; राहु महादशामें शनि व शुक्र; गुरु महादशामें बुध व चन्द्र, शनि महादशामें चन्द्र व शुक्र तथा शुक्र महादशामें सूर्य, चन्द्र, राहुके अन्तर माताके स्वास्थ्य आदिके लिये अशुभ होते हैं।

पिताके लिये

केतुमें शनि, सूर्य; शनिमें सूर्य व चन्द्र, शुक्रमें शनि मंगल गुरु; राहुमें गुरु, शुक्र, सूर्य तथा गुरुमें सूर्य शनि

स्थिति महान् उपद्रवकारी होती है, अन्य अशुभ ग्रहोंका योग शस्त्रादिक पीड़ा बताता है। अष्टममें गुरुकी राशि मीन है अतः इनकी अवनति कभी २ तो धर्म मार्ग पर चलते रहने पर भी हो जाती है। तथापि इसके प्रभावसे मृत्यु अच्छी तरह होती है। षष्ठ स्थानमें मकर राशि वात पीड़ा आदि रोगोंकी सूचक है। तीनों त्रिकोणोंमें अग्नि तत्त्व की राशियां हैं जो जातकमें शौर्य एवं तेजस्विता लो जाती है परन्तु ग्रहोंकी अशुभ स्थितिके समय शस्त्र अग्नि आदिसे भय उत्पन्न करा देती है।

भावार्थ रत्नाकर में सिंह लग्न जातकके लिए निम्न शुभ योगादिकी दी है।

१. यदि सिंह लग्न जातकको सूर्य, बुध व मंगलका सुसंयोग हो जाय तो अतुल सम्पत्ति प्राप्त कराता है। यदि उक्त योगमें मंगलके स्थान पर गुरु हो तो भी यही शुभ योग बनाता है। कारण यह कि सूर्य, बुधका संयोग ही आर्थिक दृष्टि से लाभकारी सिद्ध हो जाता है।

२. यदि सूर्य, बुध व मंगल लग्नमें हों तो जातकको अतुल सम्पत्ति बुध दशामें प्राप्ति होती है।

३. यदि मंगल व शनि व्ययगत हों तो शनि अपनी दशामें योग कारक होता है। प्रधान प्रधान शुभ योगोंका यहां वर्णन किया गया है। अनेकों योग राजयोगाध्याय आदिमें मिलते हैं। जिनका फल ग्रहोंकी स्थिति एवं बलाबलके अनुसार होता है। अतः इनको सीधे प्रयुक्त न कर बुद्धि व तर्कसे पर्यवेक्षण कर उपयोग करना चाहिये।

शरीर पर प्रभाव एवं रोग व मारक विचार

इस राशिका प्रभाव कालपुरुषकी नाभिप्रदेश, पेट, पसलियों आदि पर होता है जिसके कारण लग्नकी अशुभ स्थितिमें इन स्थानोंमें पीड़ा होता है। इस लग्नके जातककी हृदय व रीढ़की हड्डीमें खराबी हिस्टीरिया, हृद् रोग (हृदयकी विशेष धड़कन) कभी २ कंठमें पीड़ा कफ व श्वासकी दुर्गन्ध, विष युक्त ज्वर, मस्तिष्ककी निर्बलता आदि दुर्गुण होते हैं। श्री सत्यनारायण रावने Scientific Astrology में लिखा है कि इस लग्न वालेके सामान्य रोग ये होते हैं Affections of heart & Spine Anuerism, Spinal menin-gitis---Angina, Regvrgitations in the heart – Hydraemia – Palpitations etc जो उपरोक्त रोगोंके ही अन्य नाम हैं। मकर व मीन राशि षष्ठ व अष्टम स्थानमें है यदि पापग्रस्त हुई तो जांघ या पैरमें पीड़ा होती है। इस लग्नकी स्त्रियोंमें हिस्टीरिया, नलोंमें पानी भर जाना Hydraemia आदि रोग होते हैं। नाभि-प्रदेश पर शासन होनेसे स्त्रियोंके गर्भाशय सम्बन्धी रोग पानी भर जाना आदि होते हैं। इसका रोगका विशेष कारण कर्क राशिका व्यय स्थानमें होना है जब यह पीड़ित होती है तो विशेष पीड़ा होती है। अल्प प्रजा राशि होनेसे सन्तान बहुत कम होती है। महर्षि पाराशरने कहा है कि सिंह लग्न जातकके लिये-१

[१"धनंनति सौम्यादयः पापा मारकत्वेन लक्षिताः"]

अर्थात् मारक बुधादि ग्रह हों तो मारक बनते हैं। शनि भी मारक संज्ञामें आता है। मारक महादशा अन्तर्दशा निम्न प्रकार हैं। बुध महादशामें शनि, शुक्र, गुरु व राहु, केतुमें शनि व राहु; शुक्रमें शनि, राहु, केतु; चन्द्रमें बुध व गुरु; राहुमें बुध, केतु व शुक्र, व गुरु महादशामें शनि व शुक्रके अन्तर मारक सिद्ध होते हैं सर्वाधिक अधिकार प्राप्त बुध है।

माताके लिये अशुभ अन्तर्दशा

चन्द्र महादशामें गुरु, बुध व शनि; राहु महादशामें शनि व शुक्र; गुरु महादशामें बुध व चन्द्र, शनि महादशामें चन्द्र व शुक्र तथा शुक्र महादशामें सूर्य, चन्द्र, राहुके अन्तर माताके स्वास्थ्य आदिके लिये अशुभ होते हैं।

पिताके लिये

केतुमें शनि, सूर्य; शनिमें सूर्य व चन्द्र, शुक्रमें शनि मंगल गुरु, राहुमें गुरु, शुक्र, सूर्य तथा गुरुमें सूर्य शनि

व शुक्र की अन्तर्दशाओं के अतिरिक्त सब शुभ दशाएं होती है।

भाईके लिये

मंगलमें राहु व शुक्र, शनिमें बुध व राहु; केतुमें मंगल व शनि राहुमें शनि व मंगलके अतिरिक्त सब शुभ है।

बालकोंके जन्म आदि

गुरुमें चन्द्र, शुक्र व मंगल, शनिमें मंगल गुरु व चन्द्र; बुधमें शुक्र व मंगल, शुक्रमें शुक्र व गुरु; चन्द्रमें गुरु व बुध के अन्तर संतान जन्म कारक होते हैं। पुरुष ग्रहोंकी दशान्तर्दशा पुत्रों तथा स्त्री ग्रहोंकी, कन्या जन्मकी सूचक होती हैं। यदि इन दशान्तर्दशा वाले ग्रह दुष्ट संगतिसे या दृष्टिसे पीड़ित हों तो अल्पायु बालक मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

स्त्री विवाहादि

सप्तमेश लग्नेशमें शत्रु भाव है शनि मंद ग्रह है तथा क्रूर भी अतः प्रथम तो विवाह ही देरसे होता है। होने पश्चात् भी यदि इन स्थानोंको शुभ दृष्टिका अभाव हो तो स्त्री सुख प्राप्त नहीं होता। यदि शारीरिक नहीं तो मानसिक विरह तो भोगना ही होता है। विवाह विशेष कर शुक्र महा दशामें चन्द्र, सूर्यमें गुरु, गुरुमें चन्द्र बुध, शनिमें बुध, गुरु व शुक्र।

बुधमें शुक्र चन्द्र व गुरुके अन्तरोंमें होता है। शनि राहु व शुक्र उक्त महा दशाओंमें मृत्यु की अन्तर्दशाएं बताते हैं। केतु तो इसमें विशेष अधिकार प्राप्त होने दशान्तर्दशा दोनोंमें ही मारक सिद्ध हुआ है।

हस्ताक्षर

इस लग्न जातकके हस्ताक्षर प्रायः सुन्दर नहीं होते। कभी छोटे अक्षर लिखता है कभी बड़े, रकार आदिकी पूँछ बड़ी लंबी खींचता है। इनकी यह इच्छा रहती है कि लेखनी कागज परसे न हट कर बराबर चलती ही रहे व, ब, थ, ध, य आदि अक्षरोंको ऊपरसे बन्द नहीं कर पाता है। कभी कभी तो वे ऊपरकी पंक्तिमें ही सम्मिलित हो जाते हैं। अक्षर सुन्दर न होते हुए भी उन्हें सुन्दर बनानेका यत्न करते हैं। इस लग्नके जातक विशेष कर पंक्ति वाले कागज पर लिखें तो अधिक अच्छा लिख सकेंगे।

सिंह लग्न की स्त्रियां

उक्त प्रभावके अतिरिक्त स्त्री जातकोंके आधार पर निम्न गुणावगुण और पाये जाते हैं। इस लग्नकी स्त्रियां प्रचण्ड व उग्र स्वभावकी होती हैं सदा क्लेशकारी मनोवृत्तिकी होती हैं। परन्तु हृदय भोला होता है भक्ष्याभक्ष्यका विशेष ध्यान नहीं रहता, कठोर शरीर तथा परिश्रमी वृत्ति होती हैं परन्तु बोलनेमें जैसे चाहे बोलती है। परन्तु इनके कठोर भाषणके साथ हृदयमें निष्कपट, निष्प्रपंची तथा भोलापन भी रहता है। श्री महादेवजी पाठक ने त्रिंशांशोंके आधार पर कहा है कि यदि किसी स्त्रीका लग्न अथवा चन्द्रमा सिंह राशिमें स्थित हो कर मंगलके त्रिंशांशमें गया हो तो स्त्री पुरुषके समान आचरण करने वाली, बुधके त्रिंशांशमें भी यही फल गुरु त्रिंशांशमें गये हों तो राजा-रानीके समान भाग्यवान शुक्रके त्रिंशांशमें गया हो तो पुत्रसे गमन करने वाली तथा शनिके त्रिंशांशमें हो तो घरसे निकाली जाती है।

साधारणतः इस लग्न की स्त्रियां वीर, बोलाक होती माया मोह इतना नहीं रहता। तत्काल क्रोधमें आ जाती हैं। गर्भाशय सम्बन्धी सावधानी विशेष रखना चाहिये। इस लग्नकी स्त्रियोंमें कामवासना कम होती है अतः इनके पतियोंको कुछ ध्यान रखना चाहिए। सन्तान इनके बहुत कम होती हैं। विशेष रूपसे अग्नि तत्व राशि पंचम, लग्न व नवममें होनेसे गर्भपातोंकी संख्या-अधिक हो जाती है।

निर्बलताएं एवं हित वचन

अधिक बोलनेके प्रेमी, शीघ्र गरम हो जाने वाले, प्रशंसाके प्रेमी साथ ही भोले हृदयके होनेके कारण अनेक बार संकट तथा दुष्टोंके कुचक्रोंमें फंस जाते हैं।

व शुक्र की अन्तर्दशाओं के अतिरिक्त सब शुभ दशाएं होती है।

भाईके लिये

मंगलमें राहु व शुक्र, शनिमें बुध व राहु; केतुमें मंगल व शनि राहुमें शनि व मंगलके अतिरिक्त सब शुभ है।

बालकोंके जन्म आदि

गुरुमें चन्द्र, शुक्र व मंगल, शनिमें मंगल गुरु व चन्द्र; बुधमें शुक्र व मंगल, शुक्रमें शुक्र व गुरु; चन्द्रमें गुरु व बुध के अन्तर संतान जन्म कारक होते हैं। पुरुष ग्रहोंकी दशान्तर्दशा पुत्रों तथा स्त्री ग्रहोंकी, कन्या जन्मकी सूचक होती हैं। यदि इन दशान्तर्दशा वाले ग्रह दुष्ट संगतिसे या दृष्टिसे पीड़ित हों तो उत्पन्न बालक मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

स्त्री विवाहादि

सप्तमेश लग्नेशमें शत्रु भाव है शनि मंद ग्रह है तथा क्रूर भी अतः प्रथम तो विवाह ही देरसे होता है। होने पश्चात् भी यदि इन स्थानोंको शुभ दृष्टिका अभाव हो तो स्त्री सुख प्राप्त नहीं होता। यदि शारीरिक नहीं तो मानसिक विरह तो भोगना ही होता है। विवाह विशेष कर शुक्र महा दशामें चन्द्र, सूर्यमें गुरु, गुरुमें चन्द्र बुध, शनिमें बुध, गुरु व शुक्र।

बुधमें शुक्र चन्द्र व गुरुके अन्तरोंमें होता है। शनि राहु व शुक्र उक्त महा दशाओंमें मृत्यु की अन्तर्दशाएं बताते हैं। केतु तो इसमें विशेष अधिकार प्राप्त होने पर अन्तर्दशा दोनोंमें ही मारक सिद्ध हुआ है।

हस्ताक्षर

इस लग्न जातकके हस्ताक्षर प्रायः सुन्दर नहीं होते। कभी छोटे अक्षर लिखता है कभी बड़े, रकार आदिकी पूंछ बड़ी लंबी खींचता है। इनकी यह इच्छा रहती है कि लेखनी कागज परसे न हट कर बराबर चलती ही रहे व, ब, प, घ, थ आदि अक्षरोंको ऊपरसे बन्द नहीं कर पाता है। कभी कभी तो वे ऊपरकी पंक्तिमें ही सम्मिलित हो जाते हैं। अक्षर सुन्दर न होते हुए भी उन्हें सुन्दर बनानेका यत्न करते हैं। इस लग्नके जातक विशेष कर पंक्ति वाले कागज पर लिखें तो अधिक अच्छा लिख सकेंगे।

सिंह लग्न की स्त्रियां

उक्त प्रभावके अतिरिक्त स्त्री जातकोंके आधार पर निम्न गुणावगुण और पाये जाते हैं। इस लग्नकी स्त्रियां प्रचण्ड व उग्र स्वभावकी होती हैं सदा क्लेशकारी मनोवृत्तिकी होती हैं। परन्तु हृदय भोला होता है भक्ष्याभक्ष्यका विशेष ध्यान नहीं रहता, कठोर शरीर तथा परोपकारी वृत्ति होती हैं परन्तु बोलनेमें जैसे चाहे बोलती है। परन्तु इनके कठोर भाषणके साथ हृदयमें निष्कपट, निष्प्रपंची तथा भोलापन भी रहता है। श्री महादेवजी पाठक ने त्रिंशांशोंके आधार पर कहा है कि यदि किसी स्त्रीका लग्न अथवा चन्द्रमा सिंह राशिमें स्थित हो कर मंगलके त्रिंशांसमें गया हो तो स्त्री पुरुषके समान आचरण करने वाली, बुधके त्रिंशांसमें भी यही फल गुरु त्रिंशांसमें गये हों तो राजा-रानीके समान भाग्यवान शुक्रके त्रिंशांसमें गया हो तो पुत्रसे गमन करने वाली तथा शनिके त्रिंशांसमें हो तो घरसे निकाली जाती है।

साधारणतः इस लग्न की स्त्रियां वीर, बोलाक होती माया मोह इतना नहीं रहता। तत्काल क्रोधमें आ जाती हैं। गर्भाशय सम्बन्धी सावधानी विशेष रखना चाहिये। इस लग्नकी स्त्रियोंमें कामवासना कम होती है अतः इनके पतियोंको कुछ ध्यान रखना चाहिए। सन्तान इनके बहुत कम होती हैं। विशेष रूपसे अग्नि तत्व राशि पंचम, लग्न व नवममें होनेसे गर्भपातोंकी संख्या-अधिक हो जाती है।

निर्बलताएं एवं हित वचन

अधिक बोलनेके प्रेमी, शीघ्र गरम हो जाने वाले, प्रशंसाके प्रेमी साथ ही भोले हृदयके होनेके कारण अनेक बार संकट तथा दुष्टोंके कुचक्रोंमें फंस जाते हैं।

आरम्भ कारक ग्रहकी राशि होती है यदि ये लोग आत्मबल, इच्छाशक्ति आदिको बढ़ानेका थोड़ा भी प्रयत्न करें तो अच्छी उन्नति कर सकते हैं। इनको कम बोलना, एकांतवास लाभकारी होता है। इन लोगोंको साधु-समागम धर्म-ग्रन्थोंका अभ्यास, प्राणायाम, योग मार्गका अध्ययन करना चाहिए। अपनी या अन्य स्त्रियोंमें विशेष आसक्ति नहीं रखना चाहिये, अपने गुण, धैर्य, प्रसन्नता, बल बढ़ाना तथा क्रोध व चिन्ताका त्याग करना चाहिए।

उष्ण, मादक, वात कारक, पदार्थोंका सेवन न करना चाहिए। सागभाजी, फल तथा रक्तवर्धक पदार्थोंका सेवन विशेष मात्रामें करना चाहिए। फेफड़ों व हृदय रोगसे बचनेके प्राणायामका साधन रखना आवश्यक है। स्नान ठंडे पानीसे करना लाभकारी होता है। आलस्यमें पड़े रह कर कर्त्तव्यका त्याग करना महा पाप है इससे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए।

इस लग्न वालेके लिए मेष, कर्क, वृश्चिक, धन, मीन राशि वालोंके साथ सम्बन्ध व हिस्सेदारी लाभप्रद रहती है शूद्रके अतिरिक्त सबसे लाभ होता है। चैत्र, आषाढ़, कार्तिक, मृगशिर, फाल्गुन मास लाभदाई होते हैं ज्येष्ठ व आश्विन अशुभ रहता है। ३-१३-८, लाभकारी नहीं हैं शनिवार एवं मूल नक्षत्र आदिमें किये काम निष्फल हो जाते हैं।

त्रैमासिक राशिफल

(अक्टूबर से दिसम्बर १९५१)

[ले०— श्री नन्दकिशोर 'गर्ग']

मेष

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे प्रथम दो मास शुभ नहीं कहे जा सकते। सिर दर्द तथा पित्त सम्बन्धी रोग होनेका भय है। आर्थिक दृष्टि से समय साधारण है, परिश्रम अधिक एवं लाभ साधारण रहेगा। दक्षिण दिशा तथा सफेद वस्तुसे लाभ होगा। स्त्रीके स्वास्थ्यके लिए भी समय शुभ फलदायी नहीं है। प्रथमार्धमें सन्तान पक्ष की चिंता रहेगी। अचानक एक्सीडेन्टका भय है। शत्रुकृत उपद्रव नष्ट होंगे। यद्यपि नवीन २ शत्रु होंगे तथा वह नीचा दिखाने का प्रयत्न करेंगे; किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलेगी। मातुल परिवारके लिये समय कष्टकारक है। प्रथमार्धमें भागीदारी के व्यापारसे दूर रहें। कोर्ट कार्योंके लिये भी समय चिन्ता कारक है। राज्यसे विपरीत फल प्राप्तिकी सम्भावना है अतः अपने मामलोंमें सावधानी रखें। प्रवासमें कष्ट उठाना पड़ेगा व्यापारी वर्गके लिये अंतिम मास लाभकारक है। नौकर पेशा व्यक्तियों के लिये नवम्बर तथा दिसम्बर मास आफिसर वर्गके प्रकोपका रहेगा। मजदूर वर्ग के लिए समय उन्नतिकारक जावेगा। महिलाओंके लिये अंतिम मास श्रेष्ठ है।

वृषभ

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अन्तिम मास शुभ नहीं कहा जा सकता। शीतोपद्रवसे कष्ट होनेका भय है। आर्थिक पक्ष सामान्य रहेगा। स्थाई सम्पत्ति सम्बन्धी मामले उलझते हुए प्रतीत होंगे। शनि मंगलका पंचम भाव में योग होना संतानको पीड़ा होनेका संकेत कर रहा है। पारिवारिक कलह, मित्रों द्वारा विश्वासघात तथा मानसिक स्थिति अशान्त रहेगी। राजपक्षके लिये प्रथम मास उत्तम है। व्यापारी वर्गके लिये समय विशेष परिश्रमका है, किन्तु लाभ साधारण ही मिलेगा। राज्य कर्मचारियोंको अपना कार्य सावधानीसे करनेकी आवश्यकता है। बुद्धिजीवी वर्गके लिये समय साधारण है।

वक्ताओंको सावधानीसे बोलना चाहिये । श्रम-जीवी वर्गको आर्थिक कष्ट चलते रहेंगे । महिलाओंके लिये समय सामान्य है ।

मिथुन

यह मास अशांतिप्रद ही दिखाई देते हैं । हृदय रोग; वात सम्बन्धी रोग होनेका भय है । कौटुम्बिक दृष्टिसे अंतिम दो मास रोगोपद्रव एवं कलह-कारक है । चतुर्थ भावमें शनि मंगलका योग अचानक ऐक्सीडेन्ट, माताको कष्ट पारिवारिक कलह तथा मित्र वर्गसे विश्वासघात होनेका सूचक है । किसी प्रियके वियोगका दुःख होगा । स्थाई संपत्ति सम्बन्धी मामलोंमें उलझनें बढ़ेंगी । स्त्री सुख साधारण रहेगा । राज्य पक्षके लिये नवम्बर और दिसम्बर मास चिन्ता तथा अशान्ति कारक हैं । शासन नियंत्रित वस्तुओंके व्यवसाइयोंको विशेष सावधानीकी आवश्यकता है, व्यापारी वर्गके लिये मध्यका मास उन्नति कारक है, परिश्रम अधिक करने पर भी आय कम होगी । पीली वस्तु लाभदायक है । राज कर्मचारियोंको सावधानीसे कार्य करनेकी आवश्यकता है । आफिसर वर्गका प्रकोप रहेगा, स्थानान्तर भी हो जावे तो कोई आश्चर्य नहीं । अतः सावधानी अनिवार्य है । महिलाओंके लिये समय उन्नति कारक है ।

कर्क

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे समय निरोगता सूचक है । गत मासमें जो २ चिंतायें थीं वह शनैः शनैः दूर हो जावेंगी । आर्थिक पक्ष बलवान् रहेगा । धन्देमें उन्नति होकर नवीन २ कार्योंका प्रारम्भ होगा । राजकार्यके लिये समय उत्तम है, किन्तु मध्यके मासमें अधिकारियोंसे विरोध हो सकता है अतः अपने कार्योंमें सावधानी रखें । नवम्बर मासमें मित्र वर्गसे असन्तोष बढ़ेगा । दिसम्बर मासमें बन्धु वर्गकी रुग्णतासे चिन्ता होगी । सम्मान, यश एवं पराक्रमकी वृद्धि होगी । स्थाई सम्पत्ति सम्बन्धी अनेक लाभ होंगे । कृषि, पशु तथा भूमि लाभदायक रहेंगे । राजकर्मचारियोंको अंतिम मास लाभकारी है । राजकर्मचारी, वकील, बुद्धिजीवी वर्ग एवं सैनिक वर्ग, पद वृद्धि, सम्मान व आर्थिक लाभ पावेंगे । धार्मिक लोगों के लिये शुभ समय है, तीर्थाटनका योग आवेगा । श्रमजीवी वर्गकी आशातीत उन्नति होगी । महिलाओंके लिये समय अच्छा है ।

सिंह

विगत माससे चले आते हुए फल लगभग एक पक्ष और प्रभावशील रहेंगे । पश्चात् स्वास्थ्यमें सुधार दिखाई देगा । नेत्र और पेट सम्बन्धी विकार होंगे । कौटुम्बिक कलह तथा रोगोपद्रवसे आप संतप्त रहेंगे । पार्टीदारीका व्यवसाय नुकसान दायक है । आर्थिक समस्या आपके सामने प्रमुख रहेगी । अंतिम दो मासमें किसी प्रियजनका वियोग संभव है । व्यापारी वर्गके लिये विशेष परिवर्तनकारी समय है । यही समय है जबकि व्यापारी बड़ी हानि उठा जावे हैं । राजकीय कर्मचारियोंके लिये समय सामान्य है, अपने लिखने या बोलनेसे कुछ उपद्रव हो सकता है । विद्याजीवीके लिये समय नेष्ट है । वक्ताओंको सावधानीसे बोलना चाहिये श्रमजीवी वर्ग ऋणग्रस्त रहेंगे । महिलाओंके लिये समय अशुभ फलकारी है । शारीरिक कष्ट और कलहका प्राधान्य रहेगा ।

कन्या

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह तीन मास शुभप्रद नहीं हैं । रक्त विकार या शीतोपद्रवसे कष्ट उठाना पड़ेगा । दिसम्बर मासमें एक्सिडेन्टका भय है अतः सचेत रहें । आर्थिक स्थिति पूर्ववत् रहेगी । अनर्थक व्यय तथा हानि विशेष होगी । व्ययपर संतुलन रक्खें । मनः स्थिति हमेशा अशांत रहेगी, ईश्वरोपासनासे संताप दूर होगा । धार्मिक विषयमें अनियमिता ही आपके दुःखोंका मूल कारण है । शत्रुके उपद्रव चलते रहेंगे । मित्रोंसे बेबनाव तथा किसी प्रियजन से वियोग होगा । व्यापारी वर्गके लिये समय अग्नि परीक्षाका है । स्थाई संपत्ति या किसी बड़ी योजनामें पूंजी फँसाना हानिकारक होगा । सट्टा, लाटरीसे अंतिम मासमें लाभ हो सकता है । विद्यार्थी वर्गके लिये सफलताका समय है परन्तु स्वास्थ्यकी सावधानी रखना चाहिये । श्रमजीवी वर्गके लिये समय

सामान्य है। धार्मिक पुरुष त्रस्त रहेंगे। महिलाओंके लिये समय शुभ है, गर्भवती स्त्रियोंको इन मासोंमें सावधानी रखनेकी आवश्यकता है।

तुला

यद्यपि प्रथम मास मानसिक चिन्ताओंका द्योतक है तथापि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे समय मध्यम है। प्रथम मासमें आर्थिक लाभ होगा। अन्तिम दो मासमें आर्थिक चिन्तायें रहेंगी। व्ययभावमें शनि मंगल योग अनर्थक व्यय तथा हानिसूचक है वाहन या एक्सिडेन्डसे संतानको कष्ट होनेका भय है। स्त्री पक्षकी ओरसे भी चिन्ता रहेगी। बुद्धि अस्थिर रहेगी, तथा मानसिक अशांति भी विशेष रहेगी। अक्टूबर मासमें राज्यपक्ष प्रबल नहीं है, अधिक विश्वास धोखेका कारण बनेगा। व्यापारी वर्गको हानि उठानेके पश्चात् लाभ होगा। दिसम्बरका द्वितीय पक्ष लाभकर है। श्रमजीवी वर्ग ऋणग्रस्त रहेंगे। बुद्धिजीवी वर्गके लिए समय अग्निपरीक्षाका है। राजकर्मचारियोंके लिये प्रथम दो मास अशांतिकर हैं। महिलाओंके लिये समय सामान्य है।

वृश्चिक

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे समय निरोगतासूचक है। नवम्बर मासके द्वितीय पक्षसे मनःस्ताप, सिरदर्द और कष्टप्रद यात्राओंका प्रारंभ होगा। कौटुम्बिक दृष्टिसे मास अच्छे हैं. सन्तान सम्बन्धी इच्छायें पूर्ण होंगी। आध्यात्मिक प्रवृत्ति बढ़ेगी। स्थायी सम्पत्ति सम्बन्धी मामलोंमें विवाद बढ़ेगा। स्त्री और संतान पक्षका सुख उत्तम रहेगा। द्वितीय मासमें कोर्टसे विपरीत फल प्राप्तिकी संभावना है, अतः अपने मामलोंमें सावधानी रखें। आर्थिक दृष्टिसे दिसम्बर माससे ठीक समय प्रारम्भ हो रहा है। नवीन कार्योंकी ओर लक्ष्य रहेगा। व्यापारीवर्गके हानि उठानेके पश्चात अन्तिम मासमें लाभ होगा। राजकर्मचारियोंको प्रथम दो मासोंमें अधिकारियोंसे संयत व्यवहार रखना चाहिये। श्रमजीवी वर्गके लिए शुभ समय है। बुद्धिजीवी वर्गके लिये समय जितनी बुद्धिका प्रकाश करने वाला है उतना लाभप्रद नहीं। महिलाओंके लिए समय अच्छा है।

धनु

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे समय निरोगता सूचक है। दिसम्बर मासमें शीतोपद्रव या एक्सिडेन्टसे कष्ट होसकता है। आर्थिक दृष्टिसे समय साधारण है। धीरे २ स्वकार्यसे लाभ होता रहेगा। दिसम्बर माससे इच्छित कार्यमें सफलता प्राप्त होकर नवीन कार्योंकी ओर लक्ष्य होगा। राजकीय कार्योंमें विवाद बढ़नेसे अशांति रहेगी। बन्धुवर्गके लिये कष्टकर समय है। व्यापारी वर्गके लिये समय अशांतिकर है। शासन नियन्त्रित वस्तुओंके व्यवसाइयोंको विशेष सावधानी की आवश्यकता है। राजकर्मचारियोंको अपना कार्य सावधानीसे करना चाहिये अपने ही लिखने या बोलनेसे कुछ उपद्रव हो सकता है। श्रमजीवी वर्गको परिश्रम अधिक करते हुए भी आय कम होगी। महीलाओंके लिए समय सामान्य है।

मकर

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे समय साधारण है। अक्टूबर मासमें एक्सिडेन्टका भय है। कौटुम्बिक दृष्टिसे प्रथम मास कलह एवं रोगोपद्रवकारक है। मित्रवर्ग द्वारा अपमान हो एवं विवाद बढ़ेगा। अन्तिम दो मासमें शास्त्र यात्रायें निशेध करता है अन्यथा हानि, एवं कष्ट उठाना पड़ेगा। धार्मिक कार्योंसे अरुचि उत्पन्न होगी। संतान एवं स्त्रीपक्षके लिये समय सामान्य है। राजपक्ष प्रबल है। रुके-हुए कार्य सुलझ जावेंगे। आर्थिक दृष्टिसे भी यह मास ठीक रहेंगे नवम्बरमें विशेष लाभ होगा। व्यापारी वर्गके लिये लाभकर समय है। बुद्धिजीवी वर्गको परिश्रम अधिक करना पड़ेगा। राजकर्मचारियोंके लिये नवम्बरके द्वितीय पक्षसे उन्नतिकारक समय है। श्रमजीवी वर्ग आनन्दमें रहेगा।

कुंभ

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे आगामी तीन मास शुभ नहीं हैं। एक्सिडेन्ट और पैरमें चोट लगनेका भय है। शीतोपद्रव

विचित्र विधान

[पृष्ठ १६ का शेष]

महात्माजीके मुखमण्डल पर बड़ा हर्ष चमक रहा था। इसी समय मुझे एक प्राचीन पद्य स्मृत हो आया, वह यह था—

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयधी गुणोपेतः।
तनयातनयोत्पत्ति सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥

महात्माजी मुझे कहने लगे "क्यों क्या सोच रहे हो?" मैंने वही श्लोक सुना दिया। वे गालोंमें ही हंस दिये। फिर कहने लगे—इस समय सुखकी पराकाष्ठामें बिताया हुआ जन्मसे इकीस वर्षकी अवस्था होने तकका अपना वह जीवन स्मृतिपथमें आया और मेरे माता-पिताने मेरे घर जब पुत्र हुआ था और उत्सव मनाया था उसकी स्मृति नूतन हो उठी, किन्तु 'अहा वह निश्चिन्त जीवन अद्भुत सुखमय जीवन गया, वह अब नहीं आयगा' यह विचारते ही उदास हो जाता था।" महात्माजी जब यह उदास होनेकी बात कह रहे थे अकस्मात् उत्तररामचरितमें महाकवि भट्ट श्री भवभूतिका भगवान् श्रीरामचन्द्रके मुखसे कहलवाया निम्न श्लोक—

जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः॥

मेरे हृदयमें सशब्द हो उठा। महात्माजीकी आंखोंमें समुद्री सीपमें मोतियोंके समान अश्रु कण चमक रहे थे। वे क्षण भर मौन से रहे। मेरा हृदय भी कुछ भर सा आया। वे फिर गम्भीर वाणीसे कहने लगे—

"घरका काम काज खेतीकी देख-भाल आय-व्ययकी जांच सब लड़का करने लग गया था। वह सुशील था। आज्ञाकारी गुणी नम्र सदाचारी सभी कुछ था। बड़ा ही योग्य था। पुत्रवधू भी सब प्रकार से योग्य थी। एक दिन स्त्रीने तीर्थयात्रा करनेकी इच्छा प्रकट की। फिर शीघ्र ही अच्छी साईत पर हम दोनों-स्त्री पुरुष पुत्र तथा पुत्रवधूको घर सौंप कर चल पड़े। साथमें एक नौकर लिया था। श्रीजगदीश, रामेश्वर, द्वारका, काशी, गया, प्रयाग, अयोध्या, मथुरा आदि सातों पुरियोंकी यात्रा करके नौ दस मासके पश्चात् घर आये, ब्राह्मणभोजन किया यथाशक्ति भाई बिरादरीको भी भोजन कराया। श्रीमद्भागवतकी सप्ताह भी करायी। किन्तु न जाने क्यों चित्त उदास सा रहता था। जीवनमें कोई अभाव है ऐसा लगता था। इसका कारण मैं जाना नहीं था।

के कारण पीड़ा होगी। स्त्रीकेलिये भी कष्टका समय है। कौटुम्बिक अशांति एवं कलह चलते रहेंगे। घरेलू जीवन अशांतिपूर्ण रहेगा। नवम्बर उत्तरार्धमें राज्यपक्ष प्रबल है। स्थायी सम्पत्ति सम्बन्धी मामलोंमें अपनी ओरसे विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं करना चाहिये। व्यापारी वर्गकेलिये उन्नतिकारक समय है। पांतीदारीका व्यापार विश्वासघातक सिद्ध होगा। राजकीय कर्मचारियोंकेलिये अन्तिम माससे शुभ समय प्रारम्भ होरहा है। श्रमजीवी वर्ग त्रस्त रहेंगे। महिलाओंके लिये मास अशुभफलकारी है। शारीरिक कष्ट और कलहका प्राधान्य रहेगा।

मीन

विगत माससे चले आते फल लगभग एक मास और प्रभावशील रहेंगे। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे समय साधारण है। क्रोधकी मात्रा कम रखनेसे ही मानसिक शांति संभव है। स्त्री संतान की ओरसे छोटीमोटी चिन्तायें चलती रहेंगी। स्त्रीको शीतविकार अथवा किसी दुर्घटनासे नवम्बर, दिसम्बर मासमें पीड़ा होगी। दिसम्बरके पश्चात् राजपक्ष प्रबल रहेगा। यात्रायें हानिकारक सिद्ध होंगी, व्यर्थके वादविवादसे अलग रहना ही श्रेयस्कर रहेगा। राजकर्मचारियोंके लिये अन्तिम मास उन्नतिका है। व्यापारी वर्गके लिये लाभकारक समय है, किंतु पांतीदारीके व्यापार में विश्वासघात होगा, अतः सचेत रहें। श्रमजीवी वर्गके लिये समय सामान्य है। महिलाओंके लिये समय कष्टकर है।



इन्हीं दिनों कुछ ठंडी गरमी लग कर मुझे ज्वर सा हो आया। औषधी होने लगी। स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। बङ्गाली बाबू बड़े अच्छे कविराज (वैद्य) थे। उनकी औषधी भी चलती रही, किन्तु ज्वरमें अन्तर न पड़ा। अब कुछ खांसी भी हो चली थी। अशक्तता बढ़ने लगी। लोग समाचारके लिए आते थे। अपनी-अपनी अनेक प्रकारकी अनुभूत सुख दुःख गाथाएं गाते। मुझे ऐसा लगता मानों मेरे सौभाग्य पर सभी को ईर्ष्या हो रही हो। कोई कहता अभी नाती पोतोंके ब्याह करने हैं। कोई कहता अभी तो जमींदारीका सुख ही नहीं भोगा। कोई कहता आयुका क्या विश्वास है। कोई कुछ, कोई कुछ। कुछ न कुछ सभी कहते। अब मैं नित्यकी उनकी इन सहानुभूतियोंसे त्रस्त और घबराया-सा रहता। स्नान, सन्ध्या, पूजापाठ, गायत्रीजप, गङ्गा-दर्शन, शिवमन्दिर जाना, आरती उतारना आदि सभी एक-एक करके बन्द हो गये। शतरंज खेलना, गाना-बजाना तो पहले ही बन्द हो गया था, और उसका कोई दुःख भी न था। अब चौबीस घंटे ज्वर रहने लगा। कुछ लोग कहते राजयक्ष्मा हो गया है। स्त्री-पुत्र सेवा-सुश्रूषामें लगे रहते थे। किसी भी उपायसे रोग न्यून न हुआ। हनुमानजीके आगे चढ़ते-उतरते आटेके दीपक जलाये गये। मृत्युञ्जय जप करवाया गया। दुर्गा पाठ हुए, गणेशजीके लड्डूका भोग लगाया, भैरों बाबाके बड़े चढ़ाये, जिसने जो बताया सब किया, पर रोग बढ़ता ही गया। लगभग दो महीने बीत गये। जठराग्नि इतनी मन्द हो गयी कि पानी तकका पचना बन्द हो गया। हड्डियोंका ढांचा रह गया था। अपना हाथ स्वयं उठाना भी दूभर हो गया। मलमूत्र बिस्तर पर ही होने लग पड़ा था। मलमें इतनी दुर्गन्ध होती थी कि बीस-बीस हाथ दूर तक कोई बैठ न सकता था। मन ही मन भगवान्से मैं कहता 'भगवन्! अब शीघ्र यहांसे उठा लो' कभी कहता—'यदि बच गया तो घर छोड़ कर जंगलमें एकान्तमें निरन्तर तुम्हारा भजन करूंगा।' मैं प्रायः मूर्छित रहता। चेत होने पर भी बातें करना मेरी शक्तिसे बाहर हो गया था। घरवाले सभी आशा छोड़ बैठे थे। पूछताछ वाले भी अब नहीं से ही आते थे। घरवाली प्रायः पास बैठी रहती। कभी रो पड़ती। मैं खुली आंखों देख भी लेता पर बोल नहीं सकता था। गौदान, अन्न-दान आदि दान हमारे हाथों लड़केने करवा दिये। अब एकमात्र मृत्युकी बाट जोह रहा था। न जाने प्राण कहां अटके थे। आयुके दिन अभी पूरे न हुए थे। फागुन प्रारम्भ हो गया था। ज्योतिषी कहते थे जो फागुन निकल गया तो फिर कोई भय नहीं। मारकेश दशा चल रही थी। वे कहते 'शनि राजा भी बनाता है और महान् वैराग्यवान् संन्यासी भी, और मृत्यु भी कराता है। बृहस्पति उच्च राशिका और उच्च नवांशका अष्टम है। शनिके साथ योग भी कर रहा है।' अकस्मात् दूरके एक बन्धु ब्राह्मण मेरा समाचार लेने आये। वे बहुत समयसे आसाममें रहा करते थे। वहीं अब घर-बार बना बैठे थे। कुछ समय बैठनेके पश्चात् बोले—यदि संन्यास करो तो बच जाओगे। मैं सहमत हो गया। घरवाली पहले तो न मानी, कहने लगी 'संन्यासी होने पर घर न रह सकेंगे।' फिर समझाने पर मान गयी। ब्राह्मण देवता कहने लगे—'देवि आप अपने पतिको सन्न्यासी होनेकी सहर्ष अनुमति दे दो। ये अवश्य बच जायेंगे। सन्न्यासी होकर भी यदि बच गये तो आपको कभी दर्शन तो हो सकते हैं न? और अपने कुलकी बयालीस पीढ़ियोंका उद्धार हो जायगा। आपने भी सब संसारके सुख देख लिये हैं। अवस्था भी आपकी अब चालीसके ऊपर हो चुकी है। अब क्या है पोते-नाती हो चुके, लड़का बहू भी बड़े योग्य हैं।" सब मान गये। पुत्र ने सभी आवश्यक सामग्री जुटा दी। कर्मकाण्डी ब्राह्मण आये। एक वेदान्तनिष्ठ दण्डी संन्यासी बुलाये गये। प्रैषोच्चारण क्रिया गया, कौपीन पहन ली गयी। शिरका पूरा मुण्डन हो गया, चोटी उतार दी गयी। गेरुए कपड़े पहने गये, दण्ड धारण किया गया। जनेऊ निकाल दिया गया। महावाक्योंका उपदेश हो गया। सन्न्यासका विधान पूरा हो गया, सब अपने अपने स्थान पर चले गये। आश्चर्यकी बात हुई, जीवन पलट गया। उसी दिन शामको भूख-सी लगी। दूध लिया, पच गया। आज कुछ और कल कुछ, मैं अच्छा

होने लगा। औषधी लागू हो गई। पन्द्रह दिनोंमें ही भली प्रकार उठने-बैठने लगा। एक पखवारा और औषधि हुई अपने पैरों चलने फिरने लगा। खाने-पीने लगा। साधारण वैद्यकी साधारण औषधिसे ही ठीक हो गया। अब मैंने स्त्री पुत्रोंसे बदरिकाश्रम जानेकी अनुमति मांगी। वे रोने लगे, कहने लगे "अब जाना तो आपने एक न एक दिन है ही, पर थोड़े दिन और ठहरिये। शरीर दृढ़ हो जाये फिर चले जाइये। एक पक्ष और ठहरा। शरीर ठीक हो गया था। मैंने फिर चलने की कही। लड़का, लड़की, स्त्री सभी रो पड़े। कहने लगे—"यहां भी तो पतितपावनी श्री भागीरथी गङ्गा जी विराजमान हैं। उनके तीर पर एकान्तमें कुटिया बना देते हैं। कभी-कभी हमको दर्शन तो हो सकेगा। यहीं रहिये।" मैंने कहा 'नहीं मैं तो बदरिकाश्रम ही जाऊंगा। यहां रहना पतन है मेरा यहांसे दूर जाना ही ठीक है। तुम लोग सदाचारसे रहो। भगवान्का भजन करो। साधु ब्राह्मणकी सेवा करो। वेदशास्त्रोंकी आज्ञा पर चलो। गौसेवा निरंतर करते रहो। गौरक्षासे कभी मुंह न मोड़ो, पुत्रसे कहा— 'गङ्गास्नान, गायत्रीजप, गौरक्षा, शिवपूजन, रामायणपाठ, साधुसेवा करते हुए भगवदाश्रय लेकर शांतिपूर्वक जीवन बिताओ।' इतना कह कम्बल कौपीन कमण्डल और दण्ड उठाया। और घरसे बाहर हुआ। पीछे लौटकर देखनेकी कई बार इच्छा हुई। मनको रोक दिया। सीधा रेलवे स्टेशनकी ओर चल पड़ा। स्त्री आदि सभी रेलवे स्टेशन पर आये थे। लड़का टिकट ले आया गाड़ी आई। गाड़ी में मैं बैठ गया। स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू सभीने पैर छुए, मैं चुप था। रेल चल पड़ी। स्त्री पुत्रादि सभीकी आंखोंसे अश्रुधारा बह चली। बरबस मेरी आंखोंसे अश्रु झड़ी लग पड़ी। मैंने विवेकसे काम लिया। आंखें पोंछ डालीं। गाड़ी पूरे वेगसे दौड़ रही थी। घंटों पर घंटे बीतते गये। कितने ही स्टेशन आये। कइयों पर गाड़ी ठहरी और कइयों पर नहीं। मनकी गाड़ीका वेग इस रेलगाड़ीसे लाखों गुना अधिक था। कितने ही विचारों पर मन रुकता था और कितनों ही पर नहीं। स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू, लड़की, नाती, शिशुपौत्र, नौकर और बन्धु-बान्धव, घर, खेती, गाड़ी, घोड़ा, गौ, शिवमन्दिर, क्या क्या कहूँ, मनके सम्मुख सभी बारी बारी आये, सभीको नश्वर समझ कर विवेकसे नारायणकी एकमात्र सुखद शरण लेनेके लिए मनको समझाता रहा। चौबीस घंटोंके पश्चात् ही प्रातःकाल लकसर गाड़ी पहुँच गई। उन दिनों लकसरसे हरिद्वारके लिए रेलवे लाइन नहीं थी। गाड़ीसे उतर पड़ा। गाड़ीमें केवल फल खाये थे। अभी भी मैं अशक्त था। फिर भी दिन भरमें एक दो मील चल सकता था। यहांसे मांगते खाते धीरे-धीरे कई दिनोंमें हरिद्वार पहुँच गया। श्रीगङ्गाजी और ब्रह्मकुंड तथा आस पासके पहाड़ी दृश्य देखकर चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ। वैराग्य की आंखोंमें जो निद्राकी झपकी सी आने लगी थी वह सहसा दूर हो गई। चित्त शान्त और प्रसन्न रहने लगा। यहां कई साधु संन्यासी महात्माओंके दर्शन हुए। एक परमहंसजीकी आज्ञासे श्रीगंगाजीमें दण्डको विसर्जित कर दिया। परमहंसकी संगतिसे परमहंस हो गया। अभी यहां ठंडी थी। फिर भी और कोई काम तो था ही नहीं। शीघ्र ही बदरिकाश्रम चलनेकी ठानली। चैत्रपूर्णमासी गङ्गाद्वारपर ही बीती। दूसरे दिन प्रस्थान कर दिया। मांगते खाते बदरीनारायणकी ओर चल पड़ा। ज्येष्ठ शुक्ल दशमीको जिस स्थानपर मैं पहुँचा, वहांसे श्री नारायणका मन्दिर पन्द्रह मील था। मार्गमें खाने पीने का कोई कष्ट न हुआ। यथेच्छ मांगते खाते सुन्दर जल पीते स्थान स्थानपर विश्राम करते यहां तक आ पहुँचा था। इधरके लोग बड़े श्रद्धालु सीधे सादे निष्कपट थे। चोरी तो स्वप्न में भी नहीं जानते। कई साथी हुए और कई बिछुड़े। हम अशक्त थे। पहाड़ी मार्गकी चढ़ाई उतराई बहुत विकट थी, और हमको मरने अथवा जीनेकी अपेक्षा भी नहीं थी निश्चिन्त प्रणवजप करते भगवान्का स्मरण करते, समय व्यतीत हो रहा था। ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को प्रातः आगेके लिये चल पड़ा। अब इधरके पवित्र वातावरणसे चित्त नितान्त, निश्चिन्त, शान्त और पवित्र हो गया था। शरीरमें सुदृढ़ता आ गई थी। यदा कदा घरकी स्मृति आजाती थी, और साथ ही रुग्णावस्थामें की

होने लगा। औषधी लागू हो गई। पन्द्रह दिनोंमें ही भली प्रकार उठने-बैठने लगा। एक पखवारा और औषधि हुई अपने पैरों चलने फिरने लगा। खाने-पीने लगा। साधारण वैद्यकी साधारण औषधिसे ही ठीक हो गया। अब मैंने स्त्री पुत्रोंसे बदरिकाश्रम जानेकी अनुमति मांगी। वे रोने लगे, कहने लगे "अब जाना तो आपने एक न एक दिन है ही, पर थोड़े दिन और ठहरिये। शरीर दृढ़ हो जाये फिर चले जाइये। एक पक्ष और ठहरा। शरीर ठीक हो गया था। मैंने फिर चलने की कही। लड़का, लड़की, स्त्री सभी रो पड़े। कहने लगे—"यहां भी तो पतितपावनी श्री भागीरथी गङ्गा जी विराजमान हैं। उनके तीर पर एकान्तमें कुटिया बना देते हैं। कभी-कभी हमको दर्शन तो हो सकेगा। यहीं रहिये।" मैंने कहा 'नहीं मैं तो बदरिकाश्रम ही जाऊंगा। यहां रहना पतन है मेरा यहांसे दूर जाना ही ठीक है। तुम लोग सदाचारसे रहो। भगवान्का भजन करो। साधु ब्राह्मणकी सेवा करो। वेदशास्त्रोंकी आज्ञा पर चलो। गौसेवा निरंतर करते रहो। गौरक्षासे कभी मुंह न मोड़ो, पुत्रसे कहा— 'गङ्गास्नान, गायत्रीजप, गौरक्षा, शिवपूजन, रामायणपाठ, साधुसेवा करते हुए भगवदाश्रय लेकर शांतिपूर्वक जीवन बिताओ।' इतना कह कम्बल कौपीन कमण्डलु और दण्ड उठाया। और घरसे बाहर हुआ। पीछे लौटकर देखनेकी कई बार इच्छा हुई। मनको रोक दिया। सीधा रेलवे स्टेशनकी ओर चल पड़ा। स्त्री आदि सभी रेलवे स्टेशन पर आये थे। लड़का टिकट ले आया गाड़ी आई। गाड़ी में मैं बैठ गया। स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू सभीने पैर छुए, मैं चुप था। रेल चल पड़ी। स्त्री पुत्रादि सभीकी आखोंसे अश्रुधारा बह चली। बरबस मेरी आंखोंसे अश्रु झड़ी लग पड़ी। मैंने विवेकसे काम लिया। आंखें पोंछ डालीं। गाड़ी पूरे वेगसे दौड़ रही थी। घंटों परघंटे बीतते गये। कितने ही स्टेशन आये। कइयों पर गाड़ी ठहरी और कइयों पर नहीं। मनकी गाड़ीका वेग इस रेलगाड़ीसे लाखों गुना अधिक था। कितने ही विचारों पर मन रुकता था और कितनों ही पर नहीं। स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू, लड़की, नाती, दिग्पौत्र, नौकर और बन्धु-बान्धव, घर, खेती, गाड़ी, घोड़ा, गौ, शिवमन्दिर, क्या क्या कहूँ, मनके सम्मुख सभी बारी बारी आये, सभीको नश्वर समझ कर विवेकसे नारायणकी एकमात्र सुखद शरण लेनेके लिए मनको समझाता रहा। चौबीस घंटोंके पश्चात् ही प्रातःकाल लकसर गाड़ी पहुँच गई। उन दिनों लकसरसे हरिद्वारके लिए रेलवे लाइन नहीं थी। गाड़ीसे उतर पड़ा। गाड़ीमें केवल फल खाये थे। अभी भी मैं अशक्त था। फिर भी दिन भरमें एक दो मील चल सकता था। यहांसे मांगते खाते धीरे-धीरे कई दिनोंमें हरिद्वार पहुँच गया। श्रीगङ्गाजी और ब्रह्मकुंड तथा आस पासके पहाड़ी दृश्य देखकर चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ। वैराग्य की आंखोंमें जो निद्राकी झपकी सी आने लगी थी वह सहसा दूर हो गई। चित्त शान्त और प्रसन्न रहने लगा। यहां कई साधु संन्यासी महात्माओंके दर्शन हुए। एक परमहंसजीकी आज्ञासे श्रीगंगाजीमें दण्डको विसर्जित कर दिया। परमहंसकी संगतिसे परमहंस हो गया। अभी यहां ठंडी थी। फिर भी और कोई काम तो था ही नहीं। शीघ्र ही बदरिकाश्रम चलनेकी ठानली। चैत्रपूर्णमासी गङ्गाद्वारपर ही बीती। दूसरे दिन प्रस्थान कर दिया। मांगते खाते बदरीनारायणकी ओर चल पड़ा। ज्येष्ठ शुक्ल दशमीको जिस स्थानपर मैं पहुँचा, वहांसे श्री नारायणका मन्दिर पन्द्रह मील था। मार्गमें खाने पीने का कोई कष्ट न हुआ। यथेच्छ मांगते खाते सुन्दर जल पीते स्थान स्थानपर विश्राम करते यहां तक आपहुँचा था। इधरके लोग बड़े श्रद्धालु सीधे सादे निष्कपट थे। चोरी तो स्वप्न में भी नहीं जानते। कई साथी हुए और कई बिछुड़े। हम अशक्त थे। पहाड़ी मार्गकी चढ़ाई उतराई बहुत विकट थी, और हमको मरने अथवा जीनेकी अपेक्षा भी नहीं थी निश्चिन्त प्रणवजप करते भगवान्का स्मरण करते, समय व्यतीत हो रहा था। ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को प्रातः आगेके लिये चल पड़ा। अब इधरके पवित्र वातावरणसे चित्त नितान्त, निश्चिन्त, शान्त और पवित्र हो गया था। शरीरमें सुदृढ़ता आगई थी। यदा कदा घरकी स्मृति आजाती थी, और साथ ही रुग्णावस्थामें की

होने लगा। औषधी लागू हो गई। पन्द्रह दिनोंमें ही भली प्रकार उठने-बैठने लगा। एक पखवारा और औषधि हुई अपने पैरों चलने फिरने लगा। खाने-पीने लगा। साधारण वैद्यको साधारण औषधिसे ही ठीक हो गया। अब मैंने स्त्री पुत्रोंसे बदरिकाश्रम जानेकी अनुमति मांगी। वे रोने लगे, कहने लगे "अब जाना तो आपने एक न एक दिन है ही, पर थोड़े दिन और ठहरिये। शरीर दृढ़ हो जाये फिर चले जाइये। एक पख और ठहरा। शरीर ठीक हो गया था। मैंने फिर चलने की कही। लड़का, लड़की, स्त्री सभी रो पड़े। कहने लगे—"यहां भी तो पतितपावनी श्री भागीरथी गङ्गा जी विराजमान हैं। उनके तीर पर एकान्तमें कुटिया बना देते हैं। कभी-कभी हमको दर्शन तो हो सकेगा। यहीं रहिये।" मैंने कहा 'नहीं मैं तो बदरिकाश्रम ही जाऊंगा। यहां रहना पतन है मेरा यहांसे दूर जाना ही ठीक है। तुम लोग सदाचारसे रहो। भगवान्‌का भजन करो। साधु ब्राह्मणकी सेवा करो। वेदशास्त्रोंकी आज्ञा पर चलो। गौसेवा निरंतर करते रहो। गौरक्षासे कभी मुंह न मोड़ो, पुत्रसे कहा— 'गङ्गास्नान, गायत्रीजप, गौरक्षा, शिवपूजन, रामायणपाठ, साधुसेवा करते हुए भगवदाश्रय लेकर शांतिपूर्वक जीवन बिताओ।' इतना कह कम्बल कौपीन कमण्डलु और दण्ड उठाया। और घरसे बाहर हुआ। पीछे लौटकर देखनेकी कई बार इच्छा हुई। मनको रोक दिया। सीधा रेलवे स्टेशनकी ओर चल पड़ा। स्त्री आदि सभी रेलवे स्टेशन पर आये थे। लड़का टिकट ले आया गाड़ी आई। गाड़ी में मैं बैठ गया। स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू सभीने पैर छुए, मैं चुप था। रेल चल पड़ी। स्त्री पुत्रादि सभीकी आंखोंसे अश्रुधारा बह चली। बरबस मेरी आंखोंसे अश्रुझड़ी लग पड़ी। मैंने विवेकसे काम लिया। आंखें पोंछ डालीं। गाड़ी पूरे वेगसे दौड़ रही थी। घंटों परघंटे बीतते गये। कितने ही स्टेशन आये। कइयों पर गाड़ी ठहरी और कइयों पर नहीं। मनकी गाड़ीका वेग इस रेलगाड़ीसे लाखों गुना अधिक था। कितने ही विचारों पर मन रुकता था और कितनों ही पर नहीं। स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू, लड़की, नाती, किशपौत्र, नौकर और बन्धु-बान्धव, घर, खेती, गाड़ी, घोड़ा, गौ, शिवमन्दिर, क्या क्या कहूँ, मनके सम्मुख सभी बारी बारी आये, सभीको नश्वर समझ कर विवेकसे नारायणकी एकमात्र सुखद शरण लेनेके लिए मनको समझाता रहा। चौबीस घंटोंके पश्चात् ही प्रातःकाल लकसर गाड़ी पहुँच गई। उन दिनों लकसरसे हरिद्वारके लिए रेलवे लाइन नहीं थी। गाड़ीसे उतर पड़ा। गाड़ीमें केवल फल खाये थे। अभी भी मैं अशक्त था। फिर भी दिन भरमें एक दो मील चल सकता था। यहांसे मांगते खाते धीरे-धीरे कई दिनोंमें हरिद्वार पहुँच गया। श्रीगङ्गाजी और ब्रह्मकुंड तथा आस पासके पहाड़ी दृश्य देखकर चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ। वैराग्य की आंखोंमें जो निद्राकी झपकी सी आने लगी थी वह सहसा दूर हो गई। चित्त शान्त और प्रसन्न रहने लगा। यहां कई साधु संन्यासी महात्माओंके दर्शन हुए। एक परमहंसजीकी आज्ञासे श्रीगंगाजीमें दण्डको विसर्जित कर दिया। परमहंसकी संगतिसे परमहंस हो गया। अभी यहां ठंडी थी। फिर भी और कोई काम तो था ही नहीं। शीघ्र ही बदरिकाश्रम चलनेकी ठानली। चैत्रपूर्णमासी गङ्गाद्वारपर ही बीती। दूसरे दिन प्रस्थान कर दिया। मांगते खाते बदरीनारायणकी ओर चल पड़ा। ज्येष्ठ शुक्ल दशमीको जिस स्थानपर मैं पहुँचा, वहांसे श्री नारायणका मन्दिर पन्द्रह मील था। मार्गमें खाने पीने का कोई कष्ट न हुआ। यथेच्छ मांगते खाते सुन्दर जल पीते स्थान स्थानपर विश्राम करते यहां तक आपहुँचा था। इधरके लोग बड़े श्रद्धालु सीधे सादे निष्कपट थे। चोरी तो स्वप्न में भी नहीं जानते। कई साथी हुए और कई बिछुड़े। हम अशक्त थे। पहाड़ी मार्गकी चढ़ाई उतराई बहुत विकट थी, और हमको मरने अथवा जीनेकी अपेक्षा भी नहीं थी निश्चिन्त प्रणवजप करते भगवान्‌का स्मरण करते, समय व्यतीत हो रहा था। ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को प्रातः आगेके लिये चल पड़ा। अब इधरके पवित्र वातावरणसे चित्त नितान्त, निश्चिन्त, शान्त और पवित्र हो गया था। शरीरमें सुदृढ़ता आगई थी। यदा कदा घरकी स्मृति आजाती थी, और साथ ही रुग्णावस्थामें की

हुई भगवान्के साथ अपनी प्रतिज्ञा। दूसरे क्षण निश्चय होता था कि अहा! भगवान्की इच्छासे ही यह शरीर रहा है। अब यह उन्हींके चरणोंमें समर्पित रहेगा। छूट जाये अथवा रहे। अब पूर्वाश्रमके संबन्धियोंसे नहीं मिलूँगा इस प्रकार अनेक विचारोंके अनन्तर अन्तमें यह निश्चित किया और एकाग्र हो नारायणका ध्यान करने लगा। कोई दो मील मार्ग चला था वहां एक रमणीय शीतल शिलातलपर विश्राम करनेके लिए बैठ गया। वहांके दृश्य इतने मनको मुग्ध करते हैं कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। समाधिसुख अनायास प्राप्त हो जाता है।

मैं उस शीतल शिलातलपर पद्मासन बांध नासाग्र दृष्टि हो एकाग्र चित्तसे भगवान् श्रीनारायणका ध्यान करने लगा। पर्याप्त समय बीत गया था। एकाएक मेरी आंखें खुलीं और बाह्य चेतना हुई। मैं अकेला ही वहां था। सूर्य अभी था किन्तु कुछ ही क्षणोंमें वह अस्ताचल पर पहुँचने वाला था। मेरी दृष्टि एकाएक दो हाथकी ऊँचे एक क्षुप जातिकी बूटीपर पड़ी। कभी न देखा न सुना दृश्य वहां दिखाई दिया। वह बूटी क्षणभरमें रक्त के समान लाल हो गई। उसकी पत्ती २ और टहनी २ सभी लाल हो गये थे। दूसरे ही क्षण पुनः पहले जैसी गाढ़े हरे रंगकी हो गई। कैसा विचित्र वह पौधा था! मेरेको भूख लगी हुई थी। मैं उठा मटरकी फलीमेंसे जैसे अँगूठा और अँगुरी दोनों दबाकर दाने निकालते हैं, वैसे ही उसकी टहनियोंको दबाकर पत्तियोंसे मुठ्ठी भर लेता और मुँह में डाल लेता। कितनी ही मुठ्ठियां भर २ चबा कर खागया। चनेके पत्तोंके आकारके छोटे २ बड़े कोमल थोड़ा खट्टापन लिये चरपरे स्वादके वे पत्ते बड़े ही स्वादु थे। छहों रस उसबूटीमें थे। पहले खट्टे फिर चरपरे, फिर कसैले प्रतीत होते थे। उसके अनन्तर कुछ कड़वापन और उसके पश्चात् नमकीन स्वाद आता था। अन्तमें मनोहर मधुररस प्रतीत होता था। वैसे तो थोड़ी मधुरता प्रारम्भसे ही प्रतीत होती थी। प्रत्येक रसमें मधुरता भरी ही थी।"

श्री महात्माजी अपनी इस जीवन कथाके कहते समय ऐसे तन्मय हो गये थे। मानो वे अभी अभी उ[illegible] रस चाख ही रहे हों। वे अपने स्वादका वर्णन कर रहे थे और मेरे मुँह में पानी भर रहा आ था। ऐसे लगता था मानो उनको अभी मद हो रहा हो। उन्होंने आंखें मूंद लीं और क्षण भर वे मौन हो रहे। इधर गगनभूषण भुवन भास्कर सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे हम दोनोंको नहलाकर निर्मल बना रहे थे। महात्माजीका सम्पूर्ण शरीर रक्त पुनर्नवाके समान अथवा अरुण कमल के समान लाल हो रहा था। बीचमें उनकी श्यामल कांति ऐसी मिश्रित हुई थी कि वे साक्षात् अग्निकुमार ही हों। महात्माजी उसी अमृतवल्लीकी आस्वादनस्मृतिमें अनुभूति समाधीके उसपार विराज रहे थे। मैं उनके दर्शनसे ही कृतार्थ हो रहा था। उनका शरीर अपूर्व लावण्यसे समृद्ध हो रहा था। उन्होंने आंखें खोलीं। आंखें भी पूर्ण अरुण वर्ण हो रही थीं। उनमें बूटीकी अथवा आत्मानंद की मादकता उछल रही थी। वे स्निग्ध और शान्त होने लगे, और मैं विस्मित हो रहा था। वे फिर स्मित पूर्वक कहने लगे—

"उस बूटीके पत्र खाते २ ही मुझे मद सा होने लगा और नींदसे आंखें भर गईं। मैं उसी शीतल शिलातल पर सो गया। रातभर वहीं ठंडमें सोया था किन्तु ठंड नहीं लगी। ऐसी गरमाहट थी जैसे बड़े २ दो लिहाफों का ओढ़ना ओढ़कर सोया हूं। प्रातःकाल हुआ ठंडी २ वायु बड़ी अच्छी लग रही थी। उठकर भगवान्का स्मरण किया। मनमें आया 'चलो उस बूटीके पत्ते चबा लेंगे।' किन्तु वह पौदा न जाने कहां छुप गया था। बहुत ढूंढ़ा आध मील इधर उधर छान मारा पर वह कहीं न मिला। अन्तमें निराश हो चुपचाप उसी शिलापर आ बैठा। इतने में एक यात्रीदल वहां आपहुँचा। उन्होंने अपने साथ चलनेके लिए बहुत आग्रह किया। किन्तु मैं नहीं गया। एक, दो, तीन, चार क्रमशः थोड़े २ क्षणोंके अनन्तर यात्री दल नारायणकी ओर चले गये। तीन, चार, दल यात्रियों के नारायण दर्शन करके लौटने वालोंके भी थे। मैं हतप्रभ और मूकभावसे वहां बैठा ही था। इतनेमें एक दिव्य दर्शन परमहंस मेरे आगे खड़े दिखाई दिये। वे भी वहां विश्रामके लिए उसी शिलापर मेरे पास ही बैठ गये।

हुई भगवान्‌के साथ अपनी प्रतिज्ञा। दूसरे क्षण निश्चय होता था कि अहा! भगवान्‌की इच्छासे ही यह शरीर रहा है। अब यह उन्हींके चरणोंमें समर्पित रहेगा। छूट जाये अथवा रहे। अब पूर्वाश्रमके संबन्धियोंसे नहीं मिलूँगा इस प्रकार अनेक विचारोंके अनन्तर अन्तमें यह निश्चित किया और एकाग्र हो नारायणका ध्यान करने लगा। कोई दो मील मार्ग चला था वहां एक रमणीय शीतल शिलातलपर विश्राम करनेके लिए बैठ गया। वहांके दृश्य इतने मनको मुग्ध करते हैं कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। समाधिसुख अनायास प्राप्त हो जाता है।

मैं उस शीतल शिलातलपर पद्मासन बांध नासाग्र दृष्टि हो एकाग्र चित्तसे भगवान् श्रीनारायणका ध्यान करने लगा। पर्याप्त समय बीत गया था। एकाएक मेरी आंखें खुलीं और बाह्य चेतना हुई। मैं अकेला ही वहां था। सूर्य अभी था किन्तु कुछ ही क्षणोंमें वह अस्ताचल पर पहुँचने वाला था। मेरी दृष्टि एकाएक दो हाथकी ऊँचे एक क्षुप जातिकी बूटीपर पड़ी। कभी न देखा न सुना दृश्य वहां दिखाई दिया। वह बूटी क्षणभरमें रक्त के समान लाल हो गई। उसकी पत्ती २ और टहनी २ सभी लाल हो गये थे। दूसरे ही क्षण पुनः पहले जैसी गाढ़े हरे रंगकी हो गई। कैसा विचित्र वह पौधा था! मेरेको भूख लगी हुई थी। मैं उठा मटरकी फलीमेंसे जैसे अँगूठा और अँगुरी दोनों दबाकर दाने निकालते हैं, वैसे ही उसकी टहनियोंको दबाकर पत्तियोंसे मुट्ठी भर लेता और मुँह में डाल लेता। कितनी ही मुट्ठियां भर २ चबा कर खा गया। चनेके पत्तोंके आकारके छोटे २ बड़े कोमल थोड़ा खट्टापन लिये चरपरे स्वादके वे पत्ते बड़े ही स्वादु थे। छहों रस उस बूटीमें थे। पहले खट्टे फिर चरपरे, फिर कसैले प्रतीत होते थे। उसके अनन्तर कुछ कड़वापन और उसके पश्चात् नमकीन स्वाद आता था। अन्तमें मनोहर मधुररस प्रतीत होता था। वैसे तो थोड़ी मधुरता प्रारम्भसे ही प्रतीत होती थी। प्रत्येक रसमें मधुरता भरी ही थी।"

श्री महात्माजी अपनी इस जीवन कथाके कहते समय ऐसे तन्मय हो गये थे मानो वे अभी अभी उस रस चाख ही रहे हों। वे अपने स्वादका वर्णन कर रहे थे और मेरे मुँह में पानी भर रहा आ था। ऐसे लगता था मानो उनको अभी मद हो रहा हो। उन्होंने आंखें मूंद लीं और क्षण भर वे मौन हो रहे। इधर गगनभूषण भुवन भास्कर सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे हम दोनोंको नहलाकर निर्मल बना रहे थे। महात्माजीका सम्पूर्ण शरीर रक्त पुनर्नवाके समान अथवा अरुण कमल के समान लाल हो रहा था। बीचमें उनकी श्यामल कांति ऐसी मिश्रित हुई थी कि वे साक्षात् अग्निकुमार ही हों। महात्माजी उसी अमृतवल्लीकी आस्वादनस्मृतिमें अनुभूति समाधीके उसपार विराज रहे थे। मैं उनके दर्शनसे ही कृतार्थ हो रहा था। उनका शरीर अपूर्व लावण्यसे समृद्ध हो रहा था। उन्होंने आंखें खोलीं। आंखें भी पूर्ण अरुण वर्ण हो रही थीं। उनमें बूटीकी अथवा आत्मानंद की मादकता उछल रही थी। वे स्निग्ध और शान्त होने लगे, और मैं विस्मित हो रहा था। वे फिर स्मित पूर्वक कहने लगे—

"उस बूटीके पत्र खाते २ ही मुझे मद सा होने लगा और नींदसे आंखें भर गईं। मैं उसी शीतल शिलातल पर सो गया। रातभर वहीं ठंडमें सोया था किन्तु ठंड नहीं लगी। ऐसी गरमाहट थी जैसे बड़े २ दो लिहाफों का ओढ़ना ओढ़कर सोया हूं। प्रातःकाल हुआ ठंडी २ वायु बड़ी अच्छी लग रही थी। उठकर भगवान्‌का स्मरण किया। मनमें आया 'चलो उस बूटीके पत्ते चबा लेंगे।' किन्तु वह पौदा न जाने कहां छुप गया था। बहुत ढूंढा आध मील इधर उधर छान मारा पर वह कहीं न मिला। अन्तमें निराश हो चुपचाप उसी शिलापर आ बैठा। इतने में एक यात्रीदल वहां आपहुँचा। उन्होंने अपने साथ चलनेके लिए बहुत आग्रह किया। किन्तु मैं नहीं गया। एक, दो, तीन, चार क्रमशः थोड़े २ क्षणोंके अनन्तर यात्री दल नारायणकी ओर चले गये। तीन, चार, दल यात्रियों के नारायण दर्शन करके लौटने वालोंके भी थे। मैं स्तब्ध और मूकभावसे वहां बैठा ही था। इतनेमें एक दिव्य दर्शन परमहंस मेरे आगे खड़े दिखाई दिये। वे भी वहां विश्रामके लिए उसी शिलापर मेरे पास ही बैठ गये।

हमारी उनकी आपसमें अनेक प्रकारकी बातचीत हुई। प्रसंगसे अपना बूटी वाला वृत्तान्त भी मैंने कह सुनाया। वे हँस दिये। कहने लगे 'नारायणकी माया है। चलो अब उनके दर्शन करो और उनके शरण होओ' हम दोनों उठे मुझमें अब बहुत अधिक बल प्रतीत हो रहा था। मार्ग पर दोनों हम नारायण नामका कीर्तन करते हुए चल रहे थे। दूसरे ही दिन श्रीबदरीनारायण मन्दिर में पहुँच गये। श्री अलकनन्दाके स्नान और श्रीनारायणके दर्शन से मैं परम पवित्र हो गया। वे परमहंस कहीं चले गये। पैंतालीस वर्ष इस घटनाको हो चुके हैं। मैं नारायणका स्मरण करता हुआ उन्हींके ध्यानमें मग्न हो इसी हिमालयमें कभी कहीं और कभी कहीं यदृच्छासे विचरता रहता हूँ। मैं निरन्त आत्मानन्द सागर में निमग्न रहता हूँ। किसी भी दुःखका अब साहस नहीं, जो मेरे सम्मुख आ खड़ा हो। उस दिनसे हमारा शरीर यह ऐसा हो गया है। हम जो भी खायें सबका सब रुधिर बन जाता है। हम यदि पत्थर भी खायें तो भी रुधिर बनेगा। प्रतिवर्ष नाड़ियोंमेंसे कुछ रुधिर निकलवा देता हूँ। कई कई दिन बिना खाए रह सकता हूँ, बरफमें नग्न शरीर सो सकता हूँ। पुराने बन्धु बान्धवोंसे न कभी मिला नाहीं उनके समाचार जाने। हिमालय छोड़कर कभी कहीं गया आया नहीं। यह एक विचित्र विधान ही था। "बताओ अब मेरी क्या वय होगी?" मैंने कहा—"इस प्रकार तो लगभग नब्बे वर्ष बैठती है।" उन्होंने कहा "हां ठीक है।" मैं आश्चर्य चकित था। भगवान् पतञ्जलीके—"अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः।" इस योगसूत्रपर मन ही मन विचार करने लगा। महात्माजी हँसकर कहने लगे—"संसारका मोह छोड़ दो। भगवान्का आश्रय ग्रहणकरो। उसमें ही जीवका कल्याण है। उनकी माया अचिन्त्य और अपार है। अच्छा, दिन चढ़ गया है। अब स्नान करो।" मैं बिना ननुनच किये उनकी आज्ञा मानकर श्रीभागीरथीके प्रवाहमें उतर पड़ा और यथेच्छ स्नान करने लगा। महात्माजी तीन चार गोते लगाकर बाहर निकल पड़े। चोला पहन लिया और नारायण शब्द किया। वे वायु-वेगसे हमसे कुछ भी न कह सुन कर जंगलकी ओर चले गये। मैं अभी पानी ही में था। शीघ्रतासे बाहर निकला, उन्हें दूर तक देखने गयापर वे सर्वथा हमारी दृष्टिसे अदृश्य हो चुके थे। वे पूर्ण निर्मोह थे। मेरे हृदयमें उनके साथ बातें करनेकी अभी बहुत लालसा थी, पर वह हृदयकी हृदयमें ही रह गई। फिर भी उनकी जीवन कथा का मनन करने पर निर्मोहता भगवद्भक्ति वैराग्य आदि पर श्रद्धा बढ़ जाती है।

महात्माजीके इस समागमको छब्बीस वर्ष बीत चुके हैं। किंतु अब भी मेरे हृदयमें यह 'विचित्र विधान' की कथा सशब्द होती ही रहती है। उनका वह दर्शन प्रथम भी था, और अन्तिम भी।

शमस्तु।



राजा और नीति

नृपस्य परमो धर्मः, प्रजानां परिपालनम्।
दुष्टनिग्रहणं नित्यं, न नीत्या ते विनाप्युभे॥
नीतिं त्यक्त्वा वर्त्तते यः, स्वतन्त्रः स हि दुःखभाक्।
स्वतन्त्र प्रभुसेवा तु, ह्यसिधारावलेहनम्॥

राजाका मुख्य धर्म प्रजाका पालन और दुष्टोंका दलन करना है। ये दोनों कार्य नीतिके बिना सफल नहीं हो पाते हैं।

जो व्यक्ति नीतिको छोड़कर स्वेच्छासे व्यवहार करता है, वह निश्चय दुःख पाता है। स्वेच्छाचारी राजाकी सेवा तलवारकी धारके चाटनेके समान है।

—'शुक्रनीति'



नारीका हित किसमें है ?

[श्रीमती शकुन्तलादेवी त्रिवेदी]

आज उपर्युक्त प्रश्न प्रत्येक भारतीय नर नारीके मस्तिष्कको आंदोलित कर रहा है 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार इस प्रश्नके उत्तर भी अनेक रूपमें दिये जाते हैं। फिर भी दो दृष्टिकोण मुख्य हैं। एक पूर्वी और दूसरा पश्चिमी। पश्चिमकी संस्कृति भौतिक है और भारतकी संस्कृतिमें आध्यात्मिक दृष्टिकोणकी प्रधानता है। भारत कभी शारीरिक क्षणिक सुख-दुःख, भोग विलास और ऐश्वर्यको ही जीवनका लक्ष्य मानकर नहीं चला, उसने आध्यात्मिक उन्नतिको ही मानव-जीवनका एक मात्र ध्येय स्वीकार किया। स्त्री और पुरुष दोनों इसी लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नशील रहते थे। पर आज पश्चिमके प्रभावसे भारतीय जनता अपने इस लक्ष्यसे भ्रष्ट होती जा रही है। पुरुषोंकी तो बात ही क्या नारी जाति भी पश्चिमी सभ्यताकी चमक दमकमें अपने वास्तविक स्वरूपको भूलकर इधर उधर भटकने लगी है। बहुत सी नवीन सभ्यताकी चकाचौंधसे चुंधियाई हुई आंखों वाली नवयुवतियां प्रत्येक क्षेत्रमें पुरुषकी समता प्राप्त कर स्वच्छन्द विहार करनेमें ही नारीका कल्याण मान बैठी हैं। 'हिन्दूकोडबिलका' जहां हिन्दू नरनारियोंकि बहुमतने प्रबल विरोध किया वहां कुछ सम्भ्रान्त नारियां उसका प्रबल समर्थन करती हुई भी दीख पडती हैं।

बात तो यह है कि इस युगके नारीसमाजको हम दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। प्रथम श्रेणीमें प्राचीन वृद्धमहिला-समाज आता है। इन्हें अपने दैनिक घरेलू धन्धोंको छोड़कर अन्य किसी प्रवृत्तिसे कुछ प्रयोजन नहीं थोड़ा बहुत रामभजन कर लेना, शक्तिके अनुसार जितना बन पडे पूजापाठ या घर का काम-काज करते हुए यह वर्ग अपने जीवनके अन्तिम दिन काट रहा है। आजकी नारीकी नवीन अभिरुचि और समस्याओंसे इन्हें कुछ लेन देन नहीं।

दूसरा वर्ग है आजकी शिक्षित जागृत नवयुवती नारियोंका। इस वर्गकी नारियोंको भी तीन श्रेणियोंमें बांटा जा सकता है। प्रथम अपठित, द्वितिय स्वल्प पठित, तृतीय उच्च शिक्षा प्राप्त।

उच्च शिक्षा प्राप्तके भी दो वर्ग हैं। एक वर्ग पश्चिमी सभ्यताका पुजारी और पोषक है तो दूसरा प्राचीन भारतीय संस्कृति का उपासक स्वभावतः उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियोंका अपठित और स्वल्पपठित स्त्रीसमाज पर विशेष प्रभाव रहता है।

इन सभी वर्गोंका नारियोंका स्त्रीजातिके कल्याणके सम्बन्धमें दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। उन सबके दृष्टिकोणमें सामंजस्य उपस्थित करनेका प्रयत्न बहुत कम या नहीं के बराबर हुआ। अब आवश्यकता इस बातकी है कि कोई ऐसा दृष्टिकोण उपस्थित किया जाय जो प्रत्येक वर्गकी नारीको स्वीकार्य हो। अभी जहां प्राचीन भारतीय संस्कृति की उपासिका सुसंस्कृत महिला पतिपरायणता, आस्तिकता, श्रद्धा, तप त्याग और आत्म बलिदान ही में नारी जातिका कल्याण मानती हुई अपनी प्राचीन परिपाटीका पालन करती चली आरही हैं, वहां नवीन विचारोंकी वशवर्तिनी हुई अनेक महिलाएं :—

'ढोल, गवांर शूद्र पशु नारी,
ये सब ताड़नके अधिकारी'

की उक्तिको उद्धृत करते हुए कहती हैं कि "प्राचीन भारतीय आदर्शोंमें तो नारीका ऐसा ही पतित स्थान है। वहां नारीको मनुष्यके पांवकी जूती या दासी माना जाता था और उसे एक मात्र 'ताड़न की अधिकारी' कहा जाता था। बूढे, रोगी, कुष्टी और सब प्रकारके दोषोंसे दूषित पतिकी भी सब प्रकारसे सेवा करना नारीका परम कर्तव्य माना जाता था। प्राचीन भारतीय नारीके इस आदर्शको अपनानेसे आधुनिक नारीका कल्याण हो

सकता है, यह बात उनकी कुछ समझमें नहीं आती। पुराने विद्वान कवि और ऋषि मुनि तो नारी निन्दाको ही अपना परम प्रमुख कर्तव्य मानते थे, इसलिए आजकी जागृत और उन्नत नारीको प्राचीन रूढ़ि वादियोंके भुलावेमें डाल देने वाले मायापाशको तोड़ कर स्त्रियोंको पुरुषोंकी समानताके तथा आर्थिक स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोको स्वीकार कर लेना चाहिए।" ऐसा नवीन प्रणालीकी उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवतियोंका कथन है। यह वर्ग दूसरी भोली भाली अपठित और स्वल्पपठित स्त्रियोंको भी अपने पीछे चलानेके लिए सदा सचेष्ट रहता है। इनका प्रयत्न यही होता है कि:—

'ढोल गंवार शूद्र पशु और नारी,
ये सब ताड़नके अधिकारी'

जैसी घृणा उत्पन्न करने वाली उक्तियां सुना-सुनाकर उन्हें प्राचीन भारतीय आदर्शोंसे विमुख कर दें। इसके विपरीत जो विदुषी नारियां भारतीय संस्कृतिकी उपासिका हैं, वे स्वयं इसके महत्वको भली भांति समझती हुई भी सामान्य नारी समाजमें अपनी प्राचीन सभ्यता और आदर्शोंके प्रति नवीनताकी उपासिकाओं द्वारा फैलाई जारही घृणाको दूर करनेके लिए कोई सक्रिय भाग नहीं लेती। वे स्वयं तो उस प्राचीन आर्य सभ्यताका पालन करतीं हैं, पर दूसरोंको आचरण करनेके लिए प्रेरित नहीं करती। फलतः भारतीय नारियोंके अशिक्षित और स्वल्पशिक्षित वर्ग पर भी इन अंग्रेजी पढी लिखी महिलाओंका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। साधारण नारी समाजमें भी प्राचीन आदर्शोंके प्रति विरागके भाव जागृत हो रहे हैं। यदि अभीसे भावशुद्धिके प्रयत्न प्रारम्भ न हुए तो निकट भविष्यमें ही भारतीय नारी समाज भी पुरुषोंकी भांति धर्म और श्रद्धासे विमुख होकर पाश्चात्य रंगमें रंगकर भारतीय आर्य-मर्यादाओंको तिलांजलि दे बैठेगा। फिर हिन्दू कोड बिल जैसे घृणा, द्वेष स्वार्थ, कामुकता व विलासिताके प्रचारक बिल पास हों या न हों जनतामें विशेषतः स्त्रियोंमें वैसे भाव ही भर जाय'गे। किसी बिल या कानूनके पास होनेका इतना प्रभाव या महत्व नहीं जितना कि उसमें वर्णित नियमोंका जनतामें प्रचारित हो जानेका। जन रुचि यदि किसी सिद्धान्तके अनुकूल हो गई तो उसके लिए यदि कोई कानून न भी हो तो भी उसके प्रचारको कोई रोक नहीं सकता।

संसदके इस सत्रमें राजनैतिक तथा अन्य कारणोंसे हिन्दू कोड बिल पास नहीं हो सका, अतः अब उसके समर्थक दूसरे मोर्चे पर कार्य आरम्भ कर देंगे और वह मोर्चा होगा जनता और विशेषतः भोली भाली स्त्रियोंमें हिन्दू कोड बिलके विषैले सिद्धान्तोंका चमकीला और भड़कीला स्वरूप दिखाकर उसके प्रति नारीसमाजकी सहानुभूति जागृत करना। इस स्थितिको समक्ष रखते हुए नारीसमाजके वास्तविक कल्याणके इच्छुक प्रत्येक शिक्षित नरनारीका यह परम प्रधान कर्त्तव्य होजाता है कि वह अशिक्षित और अर्धशिक्षित भारतीय देवियोंको यह भलि भांति समझा देनेका प्रयत्न आरम्भ करे कि इनका वास्तविक कल्याण किसमें है? यह निर्विवाद और निर्भ्रान्त सत्य है कि नारीसमाजका कल्याण मन, वचन, कर्मसे पतिव्रत धर्मका पालन करनेमें है न कि तलाक, बहुविवाह और गांधीजीके शब्दोंमें 'अनेक मजनुओंकी लैला' बननेमें।

स्त्रीका कल्याण अपने पतिके गृहकी गृह-लक्ष्मी बनकर उसकी संपत्तिके संवर्द्धन, सदुपयोग और सत्कार्योंके व्ययमें है न कि अपने पिता की संपत्तिको कानूनके बलसे हड़पनेका प्रयत्न कर अपने भाई बन्धुओं और माता पिताके साथ मुकदमे बाजी करनेमें। नारीका कल्याण आदर्श गृहस्थी बननेमें न कि आर्थिक स्वतन्त्रताकी मृगमरिचिकाके पीछे भटकते हुए आफिसोंमें जाकर विवध आफिसरों और अधिकारियोंके इंगितों पर नाचनेमें।

नारीका कल्याण अपने कुल, समाज, धर्म और वर्णकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए इसको दृढ बनानेमें है न कि मर्यादाके किनारोंको तोड़कर उद्दाम-वेगसे बहने वाली नदीकी भांति जिधर चाहे बह जानेमें। हिन्दूकोड-बिलमें निर्दिष्ट आदर्शोंको सुधारके नाम पर नारी-समाज

सकता है, यह बात उनकी कुछ समझमें नहीं आती। पुराने विद्वान कवि और ऋषि मुनि तो नारी निन्दाको ही अपना परम प्रमुख कर्तव्य मानते थे, इसलिए आजकी जागृत और उन्नत नारीको प्राचीन रूढ़ि वादियोंके भुलावेमें डाल देने वाले मायापाशको तोड़ कर स्त्रियोंको पुरुषोंकी समानताके तथा आर्थिक स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोको स्वीकार कर लेना चाहिए।" ऐसा नवीन प्रणालीकी उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवतियोंका कथन है। यह वर्ग दूसरी भोली भाली अपठित और स्वल्पपठित स्त्रियोंको भी अपने पीछे चलानेके लिए सदा सचेष्ट रहता है। इनका प्रयत्न यही होता है कि:—

'ढोल गंवार शूद्र पशु और नारी,
ये सब ताड़नके अधिकारी'

जैसी घृणा उत्पन्न करने वाली उक्तियां सुना-सुनाकर उन्हें प्राचीन भारतीय आदर्शोंसे विमुख कर दें। इसके विपरीत जो विदुषी नारियां भारतीय संस्कृतिकी उपासिका हैं, वे स्वयं इसके महत्वको भली भांति समझती हुई भी सामान्य नारी समाजमें अपनी प्राचीन सभ्यता और आदर्शोंके प्रति नवीनताकी उपासिकाओं द्वारा फैलाई जारही घृणाको दूर करनेके लिए कोई सक्रिय भाग नहीं लेती। वे स्वयं तो उस प्राचीन आर्य सभ्यताका पालन करतीं हैं, पर दूसरोंको आचरण करनेके लिए प्रेरित नहीं करती। फलतः भारतीय नारियोंके अशिक्षित और स्वल्पशिक्षित वर्ग पर भी इन अंग्रेजी पढी लिखी महिलाओंका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। साधारण नारी समाजमें भी प्राचीन आदर्शोंके प्रति विरागके भाव जागृत हो रहे हैं। यदि अभीसे भावशुद्धिके प्रयत्न प्रारम्भ न हुए तो निकट भविष्यमें ही भारतीय नारी समाज भी पुरुषोंकी भांति धर्म और श्रद्धासे विमुख होकर पाश्चात्य रंगमें रंगकर भारतीय आर्य-मर्यादाओंको तिलांजलि दे बैठेगा। फिर हिन्दू कोड बिल जैसे घृणा, द्वेष स्वार्थ, कामुकता व विलासिताके प्रचारक बिल पास हों या न हों जनतामें विशेषतः स्त्रियोंमें वैसे भाव ही भर जायंगे। किसी बिल या कानूनके पास होनेका इतना प्रभाव या महत्त्व नहीं जितना कि उसमें वर्णित नियमोंका जनतामें प्रचारित हो जानेका। जन रुचि यदि किसी सिद्धान्तके अनुकूल हो गई तो उसके लिए यदि कोई कानून न भी हो तो भी उसके प्रचारको कोई रोक नहीं सकता।

संसदके इस सत्रमें राजनैतिक तथा अन्य कारणोंसे हिन्दू कोड बिल पास नहीं हो सका, अतः अब उसके समर्थक दूसरे मोर्चे पर कार्य आरम्भ कर देंगे और वह मोर्चा होगा जनता और विशेषतः भोली भाली स्त्रियोंमें हिन्दू कोड बिलके विषैले सिद्धान्तोंका चमकीला और भड़कीला स्वरूप दिखाकर उसके प्रति नारीसमाजकी सहानुभूति जागृत करना। इस स्थितिको समक्ष रखते हुए नारीसमाजके वास्तविक कल्याणके इच्छुक प्रत्येक शिक्षित नरनारीका यह परम प्रधान कर्त्तव्य होजाता है कि वह अशिक्षित और अर्धशिक्षित भारतीय देवियोंको यह भलि भांति समझा देनेका प्रयत्न आरम्भ करे कि इनका वास्तविक कल्याण किसमें है? यह निर्विवाद और निर्भ्रान्त सत्य है कि नारीसमाजका कल्याण मन, वचन, कर्मसे पतिव्रत धर्मका पालन करनेमें है न कि तलाक, बहुविवाह और गांधीजीके शब्दोंमें 'अनेक मजनुओंकी लैला' बननेमें।

स्त्रीका कल्याण अपने पतिके गृहकी गृह-लक्ष्मी बनकर उसकी संपत्तिके संवर्द्धन, सदुपयोग और सत्कार्योंके व्ययमें है न कि अपने पिता की संपत्तिको कानूनके बलसे हड़पनेका प्रयत्न कर अपने भाई बन्धुओं और माता पिताके साथ मुकदमे बाजी करनेमें। नारीका कल्याण आदर्श गृहस्थी बननेमें न कि आर्थिक स्वतन्त्रताकी मृगमरिचिकाके पीछे भटकते हुए आफिसोंमें जाकर विवध आफिसरों और अधिकारियोंके इंगितों पर नाचनेमें।

नारीका कल्याण अपने कुल, समाज, धर्म और वर्णकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए इसको दृढ़ बनानेमें है न कि मर्यादाके किनारोंको तोड़कर उद्दाम-वेगसे बहने वाली नदीकी भांति जिधर चाहे बह जानेमें। हिन्दूकोड-बिलमें निर्दिष्ट आदर्शोंको सुधारके नाम पर नारी-समाज

त्रैमासिक चांदीका जनरलरुख:

[लेखकः— श्री पं० गङ्गाप्रसादजी ज्योतिषाचार्यः]

नवम्बर १९५१ ई०

ता० १ को बेचो । ता० ३ तक मंदी २।)
ता० ३ को खरीदो । ता० ६ तक तेजी ३॥)
ता० ६ को बेचो । ता० १३ तक मंदी ४) ७)
ता० १५ को खरीदो । ता० १७ तक तेजी २)
ता० १७ को बेचो । ता० २० तक मंदी २॥।=)
ता० २० को खरीदो । ता० २८ तक तेजी ६)
ता० २९ को बेचो । ता० ३० तक मंदी २)

दिसम्बर १९५१ ई०

ता० १ को बेचो । ता ३ तक मंदी । ३॥)
ता० ३ को खरीदो । ता० ८ तक तेजी ४)
ता० ८ को बेचो । ता० १३ तक मंदी ४॥) ६)
ता० १७ को खरीदो । ता० २८ तक तेजी ६) ९)
ता० २९ को बेचो । ता० ४ जनवरी तक मंदी ४)

श्री स्वाध्यायके ग्राहकोंकी प्रेरणासे चांदीके भावोंमें घटाबढ़ी तारीखवार और टकेवार दी है किन्तु इस रुखका समर्थन केवल तारीखोंपर ही होगा टकोंका मिलान ठीक ठीक होना संभव नहीं आगे पीछे भी होसकता है कमी बेसी भी आंकड़ोंमें हो सकती है। विशेष करेक्ट सात प्रकारके गणितसे शुद्ध दैनिक टकेवार चांदीके चांस ता० १ जनवरी १९५२ से ३१ दिसम्बर १९५२ तकके १०॥) भेजकर श्रीस्वाध्यायसदन सोलनसे प्राप्त करें ।

अनुभूत तेजी-मन्दी प्रकाश

ग्वार मटर अरहर चांदी सोना रुई आदि पर अनुभूत विचार

[लेखकः— श्री राजाराम जैन]

आश्विन शुक्लपक्ष १३ दिनका था । यथाफलः—

यदा चः जायते पक्ष स्त्रयोदशदिनात्मकः ।
भवेल्लोकक्षयो घोरो मुण्डमालायुता मही ॥

यथान्यत्— त्रियोदश दिने पक्षे तदासंहरते जगत् ।

नवदुर्गाका घटना आर्यजातिके लिये अशुभ है। संवत् २००० में कार्तिक शुक्ल पक्ष १३ दिनका हुआ था फलस्वरूप विचित्र ज्वर हिन्दव्यापी हो गया था। जिसके कारण हजारों बली निर्बल मनुष्य स्त्री बच्चोंका नाश हुआ था । (यू० पी०) में तो यह दशा हुई थी कि जिस घरमें आठ मनुष्य और आठों ही ज्वरमें कोई किसीको पानी सरलतापूर्वक देने में असमर्थ था । एक मास पहलेसे २ मास आगे तक प्रभाव रहा था । प्राचीन रेलगाड़ी के डिब्बे भी साक्षी हैं, उनपर लिखा विज्ञापन यात्रियोंने अवश्य पढ़ा होगा । इस ज्वरके पश्चात् अतिसार चला था । अब क्या होगा भगवान ही जाने । परन्तु यह सुनिश्चित है कि किसी राज्यका पतन और रोगोंका भयंकर कोप होगा सम्वत् २००० कार्तिक शुक्लामें रुई, चांदी सोनामें मन्दी आई थी तथा सरसों अन्नादि पदार्थोंमें तेजी आई थी । शु० मं० के० योग शेयर्स (काली मिर्च शेयर्स)में खतरनाक घटाबढ़ी निश्चय ही करेगा विजयादशमी से पहले ही ग्वार मटर अरहर रमास मसूर धनिया उड़द मूंग मोठ खरीदें । १९ अक्टूबरको डबल बिकवाली करें ।

में प्रचारित कर उसे विनाश मार्गकी ओर ले जानेसे बचानेका प्रयत्न जितना शीघ्र और प्रबल-रूपमें होगा उतना ही नारी समाज और भारतीय समाजका कल्याण होगा ।

———

१८ अक्टूबर तक लाभ लें, फिर तेजीका उछाला आनेपर बिकवाली ही करें। २४ अक्टूबर तक अच्छी मन्दी आएगी। १ नवम्बरको पुनः तेजी आजानेपर बेचें, ३ नवम्बरको लाभ दिखाई देगा। यहां से मार्गशीर्ष कृष्ण तक घटाबढ़ी होकर बाजार बढ़ता रहेगा शुक्लपक्षमें पर्याप्त मन्दा आनेकी संभावना है। दिसम्बरके द्वितीय सप्ताहमें होशियारीसे व्यापार करें। तथा हर तेजीके उछालामें बिकवालीपर ही ध्यान रखें। दिसम्बरके तीसरे सप्ताहमें खरीदने वाले महान लाभ पा सकेंगे। २७ दिसम्बर से ६ जनवरी तक चांदी, सोना, ग्वार, धनियां, दाल अन्नमें भयानक घटाबढ़ी और तेजी होगी। इसी अवधिमें बादल वर्षा आदिका जोर रहेगा। जबकि सरसों, तिलहन, समस्त तेलके बीज मन्दे होते जायेंगे। इस वर्ष दीपावली मंगलवारी आरही है यथा फलः—

मंगलवारी परे दिवारी, हँसे किसान रोये व्यापारी।

इस दिन खील मन्दी रहे तो निश्चय ही जानलेना कि माघमासमें प्रायः हरवस्तुमें मन्दीका ही चमत्कार होता रहेगा, जबकि ग्वार, दाल, अन्न, धनिया, पौषी अमावसके पहले ही संग्रह कर लेना उचित होगा। पौषी अमावस मूलयुक्ता शुभकारी रुईवारी अन्न तिलहन आदिमें मन्दीका धमाका लावेगा। चिरप्रतीक्षित चांदी सोनाकी मन्दी चाहने वाले संवत् २००७ से नीचा भाव इस वर्ष तथा सन् १९५२में अवश्य ही देख सकेंगे। जबकि तेजीवालोंको महानतम आश्चर्य होगा। वह ऐसा मन्दीका योग होगा जो कभी भी प्राचीन १० वर्षीय रिकार्ड संवत् १९९७ से १९९७ तकमें कभी भी दिखाई नहीं गया। २६ अक्टूबर सन् ५१ को कार्तिक कृष्णाष्टमी पुष्य युक्ता रुई, रेशम, बारदाना, कपास, केलान रीठिदन, गुड़, पाट, जूट, कालीमिर्चमें तेजीका चमत्कार होगा। १ नवम्बरको शुक्र शनि योग बहुत सी चीजोंमें तेजीका चमत्कार लावेगा। खासकर चांदी सोना तेज होगा। शनि ५ कलासे अधिक चालवाला अतिचारी होता है। १ दिसम्बरको मंगलसे शुक्रका साथ छूटते ही योग होगा। हालाकि यह रुईकी तेजीका पक्का योग है। अतिचारी शनिका योग रुई रेशम मय उसकी साथकी चीजोंके मन्दा करेगा। किसी किसी अनुभवी दैवज्ञका कथन है कि मंगल जब दो ग्रहोंके साथ होता है, चांदी व सोनामें भारी मन्दी लाता है, यह योग १ नवम्बरको बना है लेकिन प्रत्येक दशामें शनि मंगल योग चांदी सोनाको तेज ही करता है। जबकि अतिचारी शनि मंगल योग रुई रेशमको मन्दा करता है। शेयर्समें तूफान आता है।

चांदी १३ अक्टूबरको खरीदो २३।२४ को बेचो। पुनः एक नवम्बर या दो नवम्बरको खरीदो—१२।१३ नवम्बरको बेचो। १७ नवम्बरको मन्दी आजाय तो खरीदो नफा मिलनेपर बेचो। तथा ३ दिसम्बर तक चांदी सोना तेज रहे तो अवश्य बेचना। एक सप्ताहमें मन्दीका भी धड़ाका होगा। यदि एक दिसम्बरको अचानक तेजी ही आजावेगी यदि २-१२-५१ मन्दा रहे तो मन्दी तेज रहे तो तेजीका व्यापार करना उचित है।

नोट—१३ दिनके पखवाड़ेमें कोरिया युद्ध समाप्त होजावे तो आश्चर्य नहीं है।



व्यापारिक संघर्ष और ज्योतिष

[श्री एम. सी. गोठी]

कार्तिक मासके आरम्भमें पूर्वा फाल्गुनीमें मंगल प्रवेश कर रहा है और शनी पूर्वमें उदय हो रहा है। ता० १७ को सूर्य तुलामें प्रवेश करेगा, यहांसे चांदीमें मंदी शुरु होगी। २१ अक्टूबरको हर्शल वक्री हो रहा है यह मंदीके प्रवाहको रोककर चांदी बाजारको मजबूत बनाये रखेगा। ता ६ से ११ तक बाजारका रुख देखकर व्यापार करें, हमारा ध्यान तेजीका है। ता० १२-१३ नवम्बरको विशेष योगोंके द्वारा चांदीमें ४-५ टकोंकी मन्दीका आना सम्भव है। ता० १५ नवम्बरसे चांदीमें तेजी प्रारम्भ होगी जो ११ दिसम्बरतक रहेगी। १६ दिसम्बरतक चांदीमें २-३ टकोंकी मंदीकी सम्भावना है। ता. १७ से ता. ३ जनवरीतक चांदीमें ४ टकों तक तेजी आसकती है। यहांसे चांदीमें मंदी प्रारम्भ होती है, जिसका विवरण आगामी अंकमें देखें।

आगे ता० ७ नवम्बर तक मंदीका रिएक्शन आ सकता है। ता ११ नवम्बरसे फिर पाटका बाजार मजबूत होगा।

———

त्रैमासिक चांदी सोनेका भविष्य

[राजवैद्य डा० अमरदत्त मिश्रा एच. एम. डी. एस.]



नवम्बर १९५१ ई०

बुध शुक्र एक राशि पर हैं। चांदीमें तेजी लावेगे और शुक्र मंगल कन्या में हैं कन्या राशी न मंदीकारक और न तेजीकारक है, इस कारण बाजार बना रहेगा गुरु। ता० मेषमें हैं यह चांदीको मंदी करेगा गुरू मार्गी होता है यह भी मंदी करेगा ता० २६ को। बाजार ता० ४ से घटाबढ़ी में चलेगा और फिर ता० ८ को मंदी आवेगी। पुनः ९ को तेजो १० को तेजी ११ से १३ तक Steady रहे और ता० १५ से बाजारका रुख तेजीमें रहकर ता० १८ को घटाबढ़ी होवे, ता० २१ को शुक्र शनी की युति है, सो बाजार चांदी ही में विशेष तेजी होगी और फिर २२ को मंदी २४ को फिर तेजी एवं २५ को भी तेजी रहे। ता० २६ को बाजार Steady में रहकर मंदी में बहेगा अन्तिम तक यही टोन चलेगी।

स्पेशल चांस एवं विशेष जानकारीके लिए श्रीस्वाध्याय सदनसे पत्र व्यवहार करें।

नोटः—यह तेजीमंदी सायन युति प्रतियुतिके आधार एवं राशिफलसे है, अतः जो इसका उपयोग करेगा वह सोच समझकर अपनी जिम्मेदारीपर करेगा। हानि लाभ उसके ही जिम्मे है। स्पेशल चांसोंकी गारंटी होती है। यह केवल पथप्रदर्शक एवं व्यापारियोंके लिए रोशनी एवं कुछ सही चांस भी हैं। श्रीस्वाध्यायके पाठकों के लाभार्थ यह भेंट स्वरूप है।



त्रैमासिक व्यापार विमर्श

[लेखक—श्री पं० गेन्दनलालजी ज्यौतिषाचार्य]

कार्तिक, मार्गशीर्ष, मासमें खरीदे गये मक्का, बाजरा, आदि अन्नों को-पौष, माघ और आधे फाल्गुण तक बेचने में अच्छा लाभ होगा। कुछ स्थानों पर १३) रु० प्रतिमन से १६॥) रु० प्रतिमन के लगभग तक मक्का और बाजरा का भाव बन सकता है। इन महीनों में अन्न, चांदी, आदि के बाजारका झुकाव तेजीकी तरफ रहेगा। चांदी २००) रु० के लगभग बिक जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। सामयिक परिस्थिति को ध्यान में रखतें हुए व्यापारी वर्ग कार्य करें।

सं० २००८ मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया शनिवारसे सं० २००६ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा तक जिस किसी स्थान पर—जिस समय—[ता० के घण्टा मिण्ट पर] वर्षा बादल दिखाई दें तो वर्षा होने या बादल दिखाई देनेके समय जिस दिशा से बादल आ रहे हो! जिस दिशा का वायु चल रहा हो, बादलोंका जैसा रंग और आकार हो, उसकी ठीक रिपोर्ट जो सज्जन हमारे कार्यालयमें भेजेंगे! उनकी रिपोर्टके अनुसार विचार करके—अमुक स्थान पर अमुक तारीखको—अमुक समय पर—अमुक दिशासे बादल बनेंगे, अमुक दिशाका वायु चलेगा, वर्षा होगी या नहीं, होगी तो कितनी होगी, इत्यादि आश्चर्यजनक भविष्यवाणियां श्रीस्वाध्यायमें प्रकाशितकी जायंगी। जो सज्जन लाभ उठाना चाहें वे सही रिपोर्ट भेजनेका कष्ट करें। जिज्ञासु सज्जन व्यापार विषयक विशेष जानकारी के लिये भी जवाबी पत्र भेजकर श्रीस्वाध्याय-सदन-सोलन [शिमला] द्वारा बातचीत करें।

—०—

त्रैमासिक अनुभूत रिपोर्ट रुई, चांदी, गुड़

[लेखकः—ज्यो. भू. दै. र. पं० गिरधरीलाल शर्मा]

ता. १ नवम्बर से ६ तक रुई के सिवाए हरेक वस्तु घट बढसे तेज होगी। ता. १ को सायंकाल बन्द बजार जिस वस्तुका भाव तेजीमें रहे और ता. ३ तक तेजी मंदी में बन्द हो। वो मंदी समझो हमारा ध्यान तेजी। ता. ५ को या ६ को अचूक तेजी ता. ३ को चांदी मंदी।

ता० ७ नवम्बरसे १३ तक साधारण स्थितिमें बाजार रहेगा। २॥) दिन मंदा २) दिन तेजी ऐसा रहेगा। पहले २ दिन देखके कार्य करना चाहिये। ता० ७ को २ बजे से तेजी ता. ८ को २ बजे तक रहेगी। ता. ९-१० मंदीमें रहेगी। ता. १२ को रुई मंदी सब वस्तु तेज। ता. १३ को रुई तेजी सब वस्तु मंदी। पूर्णिमा मंगलवारको व्यतिपात होनेसे आगे मार्गशीर्षका महीना बड़ी विकट समस्या में गुजरेगा ध्यान रखो।

ता. १४ नवम्बरसे २१ तक हरेक वस्तु तेज। लड़ाई झगडेमें विशेष तेजी। यहां वर्षासे हानि होनेका भी योग बनता है। ता. १४ को रुई मंदी। गुड़ चांदी तेजी ता. १५ से १९ तक जनरल ध्यान तेजी। ता. २० को अच्छी घट बढ, गुड़में अवश्य तेजी। यहां उत्पात योग काश्मीरमें पड़ेगा।

ता. २२ नवम्बरसे २८ तक हरेक वस्तुमें बढ़े भाव बेचना अच्छा है। ता. २२-२३-२४ प्रायः मंदीमें गुजरेगा। इन तारीखोमें जहां भी बढे, वहां ही बेचो। ता. २२ को सायंकाल मंदी रहे तो निश्चय मंदी समझो, ता. २६ तेजी २७ मंदी। ता. २८ को फीचर बहुत ज्यादा अंशो मे आवेगा ५० से १०० तक आ सकते हैं। हमारा ध्यान तेजी पर बैठता है।

ता. २९ नवम्बर से ५ दिसम्बर तक। घटे भाव खरीदना अच्छा है। चांदी सोना अवश्य तेज। रुई मंदी होके तेज। ता. २९ को रुई मंदी। चांदी तेज। ३० को घटबढ, ता. १ को एक बार हरेक बजार घटेगा वहां खरीदो। ता० ३ को हरेक वस्तु एक वार मंदी होगी वहा खरीदो। ता. ४ को रुई में अच्छी घट बढ और तेजी। चांदी ता. ४ को तेज या मंदी जैसी रहेगी भविष्यमें ८ दिनके लिये वैसी ही रहेगी। जनरल में ता० ५ को अच्छी घट बढ होगी। पहले तेजी पीछे मंदा होगा।

ता० ६ दिसम्बरसे १३ तक चांदीके सिवा सब वस्तु मंदी। ता. ६-७ अच्छी घट बढ होगी। बढे वहां रुई बेचों। ता. ८-९ हरेक वस्तु मंदी। ता. १० को तेजी ११ को मंदी ता. १२ को न्यूयार्क रुई अच्छी तेज। १ बजे बाद सब वस्तु तेज। ता. १३ को हरेक वस्तु मंदी ता. १३ को रस कस तैल पदार्थ तेज। शेयर रुई यहां पर कुछ मन्दा रहेगी। पाट हैसीयन भी मन्दा।

ता. १८ तक तेजी पीछे मंदी रहेगी। ता. १४ को दिन भर घट बढ रहेगी।

ता. १५ १७ को तेजी ता. २८ को १ बजे तक जो बजा रहे उससे वीपरीत करो अच्छा चान्स है। ता. १९ से २१ तक ३ नो दिन घट बढ रहेगी। बढे वहां बेचो। घटे वहां खरीदो। ता. १९ को तेजीसे मन्दा ता. २० को मंदी से तेजी ता० २१ को दिन भरमे २ बार घटेगा २ बार बढेगा। १ घण्टा से व्यापार बदलते रहो।

ता० २२ से २८ तक। रुई चांदिमें पूरा झटका एक मन्दिका आवेगा ता. २४-२५ अच्छी या साधारण परन्तु पूर्ण मन्दी है। ता. २६ को तेजी ता. २७ को मन्दी हरेक वस्तु में। ता. २८ को सब वस्तु तेज। घट बढ से होगा, घटे वहां खरीदो।

ता. २९ दिसम्बर में ५ जनवरी सन् ५२ तक तेजी का चक्र रहेगा। ता. २९—३१ और जनवरी अचूक तेजी। ता. २ को चांदी तेजी रहे तो भविष्यमें भी तेजी समझो। अगर मन्दी रहे तो मन्दी समझो, ता. ३-४ को घट बढ रहेगा। ता. २ से विपरीत बाजार रहेगा। ता. ५ को तेजी पूर्ण होगा। रुई अवश्य तेज।

तीन मासकी दैनिक तेजी-मंदी

[लेखकः— श्री यादवचन्द्र जैन ज्योतिर्विद]

कार्तिक मास

वदी १५ मं० ता० ३० अक्टू. मुहूर्तके समय वस्तु खरीदने का ध्यान रखें, परन्तु चांदी खरीदने पर एक बार मन्दी का झटका देखना पड़ेगा।

सुदी १ बुध ता० ३१ अक्टू० चांदी मन्दी।

सुदी २ बृह. ता० १ नवम्बर शामको या रातको मन्दी आवे। गुड़, खांड मन्दे हों। तिलहन तेज हों।

सुदी ३ शु. ता० २ ,, रुई मन्दी चांदीमें घटा-बढ़ी होके तेज।

सुदी ४ शनि ता० ३ ,, रुई, चांदी तेज।

सुदी ६-७ सोम. ता० ५ ,, कुछ मन्दीका झटका होके चांदी तेज हो।

सुदी ८ मं. ता० ६ ,, चांदी तेज होके मन्दी।

सुदी ९ बुध ता० ७ ,, चांदी तेज होके मन्दी या घटाबढ़ी।

सुदी १० बृह. ता० ८ ,, रुई तेज।

सुदी ११ शु. ता० ९ ,, रुई मन्दी।

सुदी १२ शनि ता० १० नव० चांदी तेज।

सुदी १४ सोम. ता० १२ नव० चांदी तेज।

सुदी १५ मं. ता० १३ ,, चांदी मन्दी।

सारांशः—

इस मास चांदी, रुई, तिलहन, (सरसों, अलसी, अंडी, मूंगफली आदि) गुड़, खांडमें जोरदार तेजी मन्दी होगी, कुछ वस्तुओंमें जोरदार तेजी तथा कुछ वस्तुओंमें अच्छी मन्दी आवेगी। व्यापारमें भारी तहल-का मचेगा। युद्ध इस मास काफी जोर पकड़ेगा, धन, जनका विनाश होगा। दीपावलीका पर्व कुछ नीरस-सा दिखाई देना सम्भव है। काले रंगके पदार्थ, लोहा आदि में विशेष तेजी होगी। चांदी, रुई, सरसों, गुड़, खांड आदिके व्यापारी हमें पत्र डाल कर पूछें। कातिकसे तथा कातिक और मार्गशीर्ष मासमें देशके ऊपर दुखदायी प्रसंग आवे, प्रजामें लड़ाई झगड़े होनेकी सम्भावना है। अग्नि उपद्रव हों। किसी चट्टानका या किसी प्रसिद्ध बड़ी इमारतका टूट कर गिरना, ५ मासके अन्दर ही सम्भव है। कोई छत्रभंग मगसिर तक होनेकी आशंका है। तथा किसी महापुरुष या गवर्नर या राजदूत, सेनापति अथवा किसी बड़े नेताका निधन भी इन्हीं ५ मासमें होना सम्भव है।

मगसिर मास

वदी १ बुध ता० १४ नव० चांदी मन्दी। परन्तु तेजी का उछाला भी हो।

वदी २ बृह. ता० १५ ,, चांदी तेज। अलसी, रुई तेज हो।

वदी ३ शु. ता० १६ नवम्बर बाजार रुख देखो।

वदी ४ शनि ता० १७ ,, चांदी, गुड़, रुई तेज होके मन्दी।

वदी ५ सोम. ता० १९ ,, चांदी मन्दी।

वदी ६ मं. ता० २० ,, चांदी मन्दी।

वदी ७ बुध ता० २१ ,, चांदी मन्दी होके तेज।

वदी ८ बृह. ता० २२ ,, चांदी मन्दी होके तेज।

वदी १० शनि ता० २४ ,, रुई, गुड़' खांड मन्दे।

वदी १२ सोम. ता० २६ नव० चांदी मन्दी, तेजीका उछाला भी हो।

वदी १३ मं. ता० २७ नव० चांदी तेज।

वदी १४-१५ बुध ता० २८ नव० चांदी मन्दी।

सुदी १ बृह. ता० २९ नव० चांदी मन्दी।

सुदी २ शु. ता० ३० ,, शाम— घटाबढ़ी होके तेज।

सुदी ३ शनि ता० १ दिस० चांदी तेज होके मन्दी।
सुदी ५ सोम. ता० ३ ,, चांदी मन्दी होके तेज।
सुदी ६ मं. ता० ४ ,, चांदी तेज।
सुदी ८ बृह. ता० ६ ,, चांदी मन्दी होके तेज।
सुदी ९ शु. ता० ७ ,, चांदी मन्दी, सरसों मन्दी।
सुदी १० शनि ता० ८ ,, चांदी मन्दी।
सुदी १२ सोम. ता० १० दिस० चांदी मन्दी।
सुदी १३ मं. ता० ११ दिस० चांदी तेज होके मन्दी।
सुदी १५ बृह. ता० १३ ,, तिलहन तेज।

सारांश

इस मास चांदीमें १०) १५) गुड़ शक्करमें २) ३) मन सरसों, अलसी, अंडी आदि तिलहनमें २) ३) रु. मन, रुईमें ५०) की जोरदार घटाबढ़ी होगी। इकतरफा लाइनके अचूक चांस भी आवेंगे। लाल रंग, लाल मिर्च तथा लाल रंगकी सभी वस्तु तेज होंगी।]

पौष मासका सारांश

इस मास ५ शु. शनिवार हैं तथा और ग्रहयोग देखते हुए वस्तुओंके भावोंमें तेजी ही रहेगी। परन्तु साधारण ही तेजी आवेगी। विशेष तेजी न आ सकेगी। किसी २ वस्तुमें विशेष तेजी-मन्दी चलेगी। हल्दी, लाल मिरच, लाल रंगके पदार्थ तेज रहेंगे। ठंड अधिक पड़ेगी। तथा हिम (पाला) भी पड़ना सम्भव है। गुड़, खांड, शक्करके भावोंमें मन्दी रहना सम्भव है।

[पृष्ठ ६५ का शेष]

२३ आज १ बजेसे मंदी चालू हो जायगी। ॥।) १)
२५ दिनके २ बजेसे चल पड़ेगी।
२६ मध्य ३ बजेसे अच्छी मंदी चलेगी।
२७ प्रातः ८ से १२ बजेतक मंदा चलेगा।
२८ सायं ४ बजे पीछे तेजी चलेगी।

[जनवरी १९५२ [व्यापार रुख] चांदी के चांस तारीखवार—

१ आज १ बजे पीछे तेजी चलेगी ॥।) १)
३ दिनभर अच्छी मंदीका योग है २) २।)
४ दिनके एक बजे पीछे तेजी चलेगी ॥) ॥।)
५ दिनभर तेजीके योग हैं १) १।)
८ सायं ४ बजे पीछे मंदा चलेगा

ग्राहकों को आवश्यक सूचना

कई पुराने ग्राहक वार्षिक मूल्य भेजते समय न तो अपना ग्राहक नम्बर लिखते हैं और न पूरा पता लिखते हैं, ऐसे ग्राहकों को अंक भेजने में बड़ी असुविधा होती है अतः प्रत्येक ग्राहकको अपना पूरा पता मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये। कई सज्जन पत्रमें अपना केवल नाम मात्र लिखते हैं स्थान डाकघरका उल्लेख नहीं करते और कुछ नाम भी नहीं लिखते। ऐसे सज्जनों को उत्तर नहीं दिया जा सकता। जो ग्राहक उत्तर के लिए टिकट वा जवाबी कार्ड भेजेंगे उन्हें ही समय पर उत्तर दिया जा सकेगा। पत्र व्यवहार हिन्दीमें ही करना चाहिए। उर्दू अंग्रेजीके पत्रों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जायगा। ग्राहकोंका 'नया ग्राहक' या 'पुराना ग्राहक' यह भी अवश्य लिखना चाहिए।

व्यवस्थापक— 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (शिमला)

नास्तिक कौन ?

"नास्तिक उसे कहते है जो आत्मा परमात्मा, स्वर्ग नरक की न माने, भौतिकवाद में अपने जीवन को उलझा ले, अपने जीवनका मूल लक्ष्य पैसा पैदा करना ही बना लें, जो त्याग तपस्या पर, श्रद्धा पर विश्वास न करे वह है नास्तिक।"

—आचार्य श्री तुलसी

व्यापार रुख

[लेखकः — ज्योतिषाचार्य, श्रीगणेश विद्यासागर, विश्वनाथ शर्मा "दैवज्ञ"]

ता० १ नवम्बर सन् १९५१ से ता० ९ जनवरी सन् १९५२

❀ साप्ताहिक विवरण ❀

ता० १ नवंबरसे ता० ७ तक

कन्या राशि पर शुक्र आ गया। शनि नैपच्यूनसे मस्करा करेंगे तथा सूर्य शनि द्विर्द्वादश योग ता० १ से ३ तक हर वस्तुमें भारी घटाबढ़ी चले। मेरे ध्यानमें यहां तेजी आनी चाहिये। खास कर शेयर मार्केटमें अच्छी तेजी बन जाये। ता० ४को नजराने लगा दो, आप जिस वस्तुके व्यापारी हैं, देखो लाइन एक चलेगी। ता० ५ को बुध शुक्रका त्रिएकादश योग बन रहा है। यह ता० ७ तक बाजारको एक लाइन बना देगा। यहां नजराने लगा कर सुपते छोड़ दो जिधर जिस वस्तुका बाजार चले उधर ही व्यापार कर डालो। सुवर्णा ३,२,५,७,४।

ता० ८से १४ तक

ता० ८ और ९को चन्द्र गुरु युति होगी। यहां मंदीका काम करने वालोंको प्रोत्साहन मिलेगा। ता० १०को बुध का उदय होगा। यह कुछ तेजीका झमकला बतला कर ता० ११को बुध गुरु त्रिकोण मंदी करने वाला अच्छा योग है। मतलब ता० ८ से ११ तक मन्दी अधिक है। ता० १२को मंगल कन्या राशि पर प्रवेश करेगा, चांदी सुवर्ण मटर, गुवार, अलसी, सरसोंमें मन्दीका या तेजी का तूफान ता० १२-१३ इन दो दिनमें आयेगा। ता० १४को गुरु शुक्रकी दृष्टि गिरेगी। यहां चांदीमें २) सुवर्ण ।।।) गुवार मटर ।।) अलसी सरसों १।) शेयर आइरन १) अचानक मंदा कर देगा। सुवर्णाङ्कक ३,५,७,८

ता० १५से ता० २१ तक

ता० १५को शुक्र राहु षडष्टक, वृश्चिकमें सूर्यका प्रवेश ता० १५को बाजार कुछ उछाला खायेगा, लेकिन ता० १६को सूर्य बुध पर गुरुकी पूर्ण दृष्टि गिरेगी। रुई, सूत, कपड़ेके भाव घटेंगे, उस समय खरीदना। चांदी, सुवर्ण, अलसी, सरसों, मूंगफली, रुवार, मटर आदि उछाले बेचाण बोलना। भाव कितनी तादादमें घटेंगे यह तो हम व्यापार रुखमें देंगे, इच्छा हो मंगवा लेना। ता० २०को सायंकाल शुक्र शनिकी युति होगी। यहां अचानक तेजी हर संसारभरकी वस्तुओंमें आ जावेगी। इसका असर ता० २३ तक रहेगा। सुवर्णाङ्क ३,५,७,०।

ता० २२से ता० २८ तक

ता० २२को शुक्र हर्षल केन्द्र योग ता० २३को प्लूटो वक्र होगा। यह जब वक्र होता है तब बाजारोंमें भारी तेजी कर देता है। गत वर्ष जब वक्र हुआ, तब चांदी में १०) रु० ३ दिनमें बढ़ गये थे, लेकिन बुध नैपच्यून का त्रिएकादश योग मन्दी का आया है। अतः अलसी, सरसों तेल, तिल, बीयां, मूंगफलीमें तेजी ही आयेगी। मतलब ता० २२के ३ बजेसे ता० २५के सायंकल तक तेजी लेलो। ता० २६से २८ तक आरे उछाले भाव बेचाण कर नफा बढ़ाते रहो। सुवर्णाङ्क २,३,७,०,५

ता० २९ नवम्बरसे ५ दिसम्बर तक

गुरुदेव मार्गी होवेंगे। मंगल गुरुकी पूर्ण दृष्टि है, इस समय ग्रह गणना तेजीका अधिक तथा मंदीका कम समर्थन करती है। लेकिन रुई स्टीमर, शेयर डिफर्ड तथा आइरनमें मंदी आयेगी और चांदी सुवर्ण, गवार मटरमें तेजीके उछाले लगेंगे अथवा भाव समान बने रहें तो कोई बड़ी बात नहीं। सुवर्णाङ्क २, ७।

ता० ६ दिसम्बरसे ता० १२ तक

धनु राशि पर बुध वक्री हुआ । शुक्रके ऊपर किसी भी क्रूर ग्रहकी दृष्टि सम्बन्ध नहीं है । शुक्रको शुभ ग्रह देख रहे हैं, ऐसे समयमें अच्छी मन्दी आया करती है । मेरे ध्यानसे तो यहां मन्दीका वातावरण इस प्रकारसे बने कि चांदीमें १५) २० टके भी टूट जायँ । इस माह में अन्य सर्व वस्तुओंमें भारी मन्दी आयेगी । अब तेजी वालोंका दिवाला पिट जायगा । सुवर्णाङ्क ५,७,८ ।

ता० १३से १९ तक

चन्द्र बुधका वाण वेध पूर्णिमा गुरुवारी नैपच्यून त्रिएकादश योग ता० १५ तक मंदी आकर ता० १६-१७को सूर्य बुधकी युति होगी । यहां चांदी सुवर्ण रुईमें तेजीका वातावरण बन जायेगा । ता० १८को शनि मंगल युति है, यह भी अनेक पदार्थोंमें तेजी कर देता है । इसका असर ता० १८के सायंकाल तक चलेगा । ता० १९ मन्दा । सुवर्णाङ्क ५,७,८ ।

ता० २०से २६ तक

ता० २०को शुक्र शनि द्विर्द्वादश योग मन्दा करता है । २१ मंगल शुक्र द्विर्द्वादश योग ता० २२को बुधका उदय । ता० २३को बुध शुक्र द्विर्द्वादश योग यह सब तेजी के योग हैं । ता० २४से २६ तक दोनों तरफ बाजार चलता रहेगा । सुवर्णाङ्क ४,७,५,० ।

ता० २७से २ जनवरी १९५२ तक

शनिवारको चन्द्र दर्शन, बुध मार्गी हुआ । शुक्र वृश्चिकमें आयेगा । यहां तेजी मन्दीके ठहरे हुए भावोंमें अचानक तूफान आयेगा । लेकिन इस तूफानको आप किस प्रकारसे हल करेंगे, सुनिये नजराने द्वारा व्यापार करियेगा और चलती गाड़ीमें सवारकी ताकत रखियेगा । सुवर्णाङ्क ५,७ ।

ता० ३ जनवरीसे ता० ९ तक

मंगल नैपच्यून युति, सूर्य हर्षल दृष्टि, शुक्र राहु केन्द्र योग, सूर्य शनि केन्द्र योग इत्यादि योगायोग देखते शेयर आईरन में मन्दी, चांदी, सुवर्ण, अलसी, सरसों, मूंगफली, गुवार, मटर ता० ३को मंदे आकर ता० ४को भावोंमें तेजी आजावेगी । ता० ५ समान भाव रह कर ता० ६से ९ तक बाजार मन्दे चलेंगे । सुवर्णाङ्क २,३,४,०,८ ।

नवम्बर [व्यापार रत्न चांदीके चांस]

ता० तेजी या मन्दी—

४ आज ११ बजेसे रात्रि तक बाजार तेज रहेगा ॥) १)
८ प्रातः कलकत्ता तेज खुलेगा और तेज ही रहेगा ।॥)
९ अच्छी तेजी आनेका योग आया हैं १) १॥) तेज ।
१० प्रातः कलकत्ता मंदा चल पड़ेगा ।॥) ॥) मंदा ।
११ प्रातः ११ बजेसे ५ बजे तक मंदा रहेगा । १)
१४ सायं ४ बजे पीछे रात्रि में मन्दा ।॥) १)
१५ प्रातः ८ बजेसे २ बजे तक मंदा ॥) ।॥)
२१ दिनभर तेजी १॥) २) बढ़ जायेंगे ।
२२ आज दो बजेसे सायंकाल तक मंदा चलेगा ।
२४ मध्य ११॥ बजेसे तेजी चालू हो जायेगी ।॥) १)
२५ आजका योग भी तेजीका है १) १।) तेज
२९ अचूक निशाना तेजीका बैठने वाला है १।) १॥)
३० शेयर, चांदीमें मन्दी आयेगी ।॥) १)

दिसम्बर [व्यापार रत्न] चांदीके चांस

ता०

१ सायंकाल ४ बजेसे रातको तेजी आयेगी ॥) ॥=)
५ प्रातः ८ बजेसे तेजी चालू हो जायेगी १)
७ मध्य १२॥ बजेसे १॥ बजे तक मन्दा ॥) ॥=) सायं तेजी !
९ मध्य ३।२५से रात्रि तक मन्दा ।॥) १)
१३ मध्य ३ बजेसे ४ बजे तक अच्छी तेजी १।)
१५ मध्य ११॥ बजेसे २ बजे तक तेजी ।॥)
१७ दिनभर तेजी के ही योग नजर आते हैं ।
१९ सायं ४ बजेसे रात्रिको तेज रहेगा ॥) ।॥)
२२ अच्छी मंदी दिनभर चलेगी । १।) १॥)

[शेष पृष्ठ ६६ पर]

ता० ६ दिसम्बरसे ता० १२ तक

धनु राशि पर बुध वक्री हुआ । शुक्रके ऊपर किसी भी क्रूर ग्रहकी दृष्टि सम्बन्ध नहीं है । शुक्रको शुभ ग्रह देख रहे हैं, ऐसे समयमें अच्छी मन्दी आया करती है । मेरे ध्यानसे तो यहां मन्दीका वातावरण इस प्रकारसे बने कि चांदीमें १५) २० टके भी टूट जायँ । इस माह में अन्य सर्व वस्तुओंमें भारी मन्दी आयेगी । अब तेजी वालोंका दिवाला पिट जायगा । सुवर्णाङ्क ५,७,८ ।

ता० १३से १९ तक

चन्द्र बुधका वाण वेध पूर्णिमा गुरुवारी नैप्च्यून त्रिएकादश योग ता० १५ तक मंदी आकर ता० १६-१७को सूर्य बुधकी युति होगी । यहां चांदी सुवर्ण रुईमें तेजीका वातावरण बन जायेगा । ता० १८को शनि मंगल युति है, यह भी अनेक पदार्थोंमें तेजी कर देता है। इसका असर ता० १८के सायंकाल तक चलेगा । ता० १९ मन्दा । सुवर्णाङ्क ५,७,८ ।

ता० २०से २६ तक

ता० २०को शुक्र शनि द्विर्द्वादश योग मन्दा करता है । २१ मंगल शुक्र द्विर्द्वादश योग ता० २२को बुधका उदय । ता० २३को बुध शुक्र द्विर्द्वादश योग यह सब तेजी के योग हैं। ता० २४से २६ तक दोनों तरफ बाजार चलता रहेगा । सुवर्णाङ्क ४,७,५,० ।

ता० २७से २ जनवरी १९५२ तक

शनिवारको चन्द्र दर्शन, बुध मार्गी हुआ । शुक्र वृश्चिकमें आयेगा । यहां तेजी मन्दीके ठहरे हुए भावोंमें अचानक तूफान आयेगा । लेकिन इस तूफानको आप किस प्रकारसे हल करेंगे, सुनिये नजराने द्वारा व्यापार करियेगा और चलती गाडीमें सवारकी ताकत रखियेगा । सुवर्णाङ्क ५,७ ।

ता० ३ जनवरीसे ता० ९ तक

मंगल नैपचून युति, सूर्य हर्षल दृष्टि, शुक्र राहु केन्द्र योग, सूर्य शनि केन्द्र योग इत्यादि योगायोग देखते शेयर आईरन में मन्दी, चांदी, सुवर्ण, अलसी, सरसों, मूंगफली, गुवार, मटर ता० ३को मंदे आकर ता० ४को भावोंमें तेजी आजावेगी । ता० ५ समान भाव रह कर ता० ६से ९ तक बाजार मन्दे चलेंगे । सुवर्णाङ्क २,३,७,०,८ ।

नवम्बर [व्यापार रुख चांदीके चांस]

ता०	तेजी या मन्दी—
४	आज ११ बजेसे रात्रि तक बाजार तेज रहेगा ॥) १)
८	प्रातः कलकत्ता तेज खुलेगा और तेज ही रहेगा ॥।)
९	अच्छी तेजी आनेका योग आया हैं १) १॥) तेज ।
१०	प्रातः कलकत्ता मंदा चल पड़ेगा ॥।) ॥) मंदा ।
११	प्रातः ११ बजेसे ५ बजे तक मंदा रहेगा १)
१४	सायं ४ बजे पीछे रात्रि में मन्दा ॥।) १)
१५	प्रातः ८ बजेसे २ बजे तक मंदा ॥) ॥।)
२१	दिनभर तेजी १॥) २) बढ़ जायेंगे ।
२२	आज दो बजेसे सायंकाल तक मंदा चलेगा ।
२४	मध्य १॥ बजेसे तेजी चालू हो जायेगी ॥।) १)
२५	आजका योग भी तेजीका है १) ११) तेज
२६	अचूक निशाना तेजीका बैठने वाला है ११) १॥)
३०	शेयर, चांदीमें मन्दी आयेगी ॥।) १)

दिसम्बर [व्यापार रुख] चांदीके चांस

ता०	
१	सायंकाल ४ बजेसे रातको तेजी आयेगी ॥) ॥=)
५	प्रातः ८ बजेसे तेजी चालू हो जायेगी १)
७	मध्य १२॥ बजेसे १॥ बजे तक मन्दा ॥) ॥=) सायं तेजी !
९	मध्य ३।३५से रात्रि तक मन्दा ॥।) १)
१३	मध्य ३ बजेसे ४ बजे तक अच्छी तेजी ११)
१५	मध्य ११॥ बजेसे २ बजे तक तेजी ॥।)
१७	दिनभर तेजी के ही योग नजर आते हैं ।
१९	सायं ४ बजेसे रात्रिको तेज रहेगा ॥) ॥।)
२२	अच्छी मंदी दिनभर चलेगी । ११) १॥)

[शेष पृष्ठ ६६ पर]

—त्रैमासिक पर्व व्रतादि निर्णय—

कार्तिक कृष्ण	३० मंगलवार	ता०	३०	अक्टूबर	दीपमालिका श्री महालक्ष्मी पूजनम्
कार्तिक शुक्ल	१ बुधवार	ता०	३१	अक्टूबर	अन्नकूट गोवर्धनपूजन वृष्टिकाकर्षण
,,	२ गुरुवार	ता०	१	नवम्बर	टीका २ भाई २ दवातकलमपूजन चन्द्रदर्शन
,,	८ मंगलवार	ता०	६	,,	गोपाष्टमी
,,	९ बुधवार	ता०	७	,,	परिक्रमा ९ कुष्मांड ९ आमला ९
,,	११ शुक्रवार	ता०	९	,,	हरिप्रबोधनी ११ व्रत, भीष्मपंचकारम्भ, तुलसीविवाह
,,	१२ शनिवार	ता०	१०	,,	चातुर्मास समाप्ति, धातृभोजन
,,	१५ मंगलवार	ता०	१३	,,	कार्तिकस्नान भीष्मपंचक समाप्ति, मेला पुष्करराज, नानकजयन्ती सत्यव्रत,
मार्गशीर्ष कृष्ण	२ गुरुवार	ता०	१५	,,	श्री जवाहरलाल नेहरू जन्मदिन
,,	३ शुक्रवार	ता०	१६	,,	वृश्चिक संक्रान्ति मु. ३० पुण्य २।३१ उ.
,,	४ शनिवार	ता०	१७	,,	श्रीगणेश ४ व्रत, चन्द्रोदय स्टेन्डर्ड टा. घ. ८ मि. १३
,,	७ बुधवार	ता०	२१	,,	श्रीमहाकालभैरवाष्टमी
,,	११ रविवार	ता०	२५	,,	उत्पन्ना ११ व्रत
,,	१२ सोमवार	ता०	२६	,,	सोमप्रदोष व्रत
,,	१४ बुधवार	ता०	२८	,,	मैलापुरमंडल देविका स्नान काश्मीर
मार्गशीर्ष शुक्ल	२ शुक्रवार	ता०	३०	,,	चन्द्र दर्शन
,,	११ रविवार	ता०	९	दिसम्बर	मोक्षदा ११ व्रत श्रीगीताजयन्ती
,,	१२ सोमवार	ता०	१०	,,	सोम प्रदोष व्रत
,,	१३ मंगलवार	ता०	११	,,	पिशाच मोचन श्राद्ध
,,	१४ बुधवार	ता०	१२	,,	श्रीदत्त जयन्ती सत्यव्रत
पौष कृष्ण	२ शनिवार	ता०	१५	,,	धनुः संक्रांति मु. ४५ पुण्यं परद्दिने
,,	४ सोमवार	ता०	१७	,,	श्रीगणेश ४ व्रत चन्द्रोदय स्टे. टा. घ. ८ मि. ५५
,,	१० सोमवार	ता०	२४	,,	सफला ११ व्रत
,,	१३ बुधवार	ता०	२६	,,	प्रदोष व्रत
,,	३० शुक्रवार	ता०	२८	,,	मेला बाबा हरवल्लभ
पौष शुक्ल	१ शनिवार	ता०	२९	,,	चन्द्र दर्शन
,,	५ मंगलवार	ता०	१	जनवरी	१९५२ ई० प्रारम्भ
,,	७ गुरुवार	ता०	३	,,	गुरु गोविन्दसिंह जन्मदिन



देशकी दुरवस्थाका कारण कौन ?

[लेखक:— श्री भाई चूहरमलजी मुआल]

—:(•):—

जिस प्रकार एक शरीरमें सर्दी, गर्मी, बुखार, नमोनिया, फोड़े-फुंसी, खांसी, क्षय इत्यादि कई रोग लग जाते हैं—इन रोगोंके लग जानेसे मनुष्य दुःखी हो जाता है—इसी प्रकार इस समय देशको भी मूर्खता, रोग, बेरोजगारी, मंहगाई, रिश्वत, अन्याय, अन्न, कपड़ा, मकानोंकी कमी इत्यादि कई रोग लग गए हैं। जिससे देश बहुत दुखी हो रहा है। जिस प्रकार शरीरके रोगोंके कई कारण होते हैं, परन्तु मूल कारण होता है दुर्बलता (कमजोरी)। इसी प्रकार देशको लगे हुए रोगोंके भी कई कारण हैं, परन्तु इनका मूल कारण है 'कांग्रेस'। जब तक शारीरिक रोगोंके मूल कारणका नाश नहीं हो जाता तब तक शरीर स्वस्थ होकर बलवान् नहीं होता। इसी प्रकार देशके रोगोंका मूल कारणका जब तक नाश न होगा तब तक देश दुखी अवस्थासे निकल कर सुखी नहीं बन सकेगा।

कांग्रेस देशके रोगोंका मूल कारण क्यों है ?

कारणके भी कारण हुआ करते हैं जैसे गीता अध्याय २ श्लोक ६२ और ६३में। भगवान्ने कहा है कि मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन होता है, विषयोंके चिन्तनसे उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति होनेसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है, कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे अविवेक और अविवेकसे स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है। स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे बुद्धिका नाश हो जाता है, बुद्धि नाशसे मनुष्य अपने श्रेय साधनसे गिर जाता है। भगवान्ने केवल यह नहीं कह दिया कि मनुष्य बुद्धिनाशसे गिर जाता है, वरन् क्रमशः मनुष्यके गिरनेके कारण बतलाए हैं, ताकि मनुष्य अपने गिरनेका कारण पूरी तरह समझ सके और फिर उन कारणों पर विचार करके अपने श्रेय साधनको प्राप्त कर सके।

इसीप्रकार हमें हिन्दू धर्म, हिन्दू जाति और हिन्दू देशके पतनके जो कारण हैं उनपर विचार करना होगा। तब हम किसी निर्णय (नतीजे) पर पहुँच कर देशका ठीक उपचार (इलाज) करके दुःखोंसे छुटकारा पा सकेंगे, वरन् अन्धकारमें ठोकरें खाकर सुख शान्तिसे वञ्चित रहेंगे।

२. अन्न, कपड़ा और मकानोंकी कमी, शरणार्थियोंका दर दर भटकना, हड्डीचूर मंहगाई, घूस (रिश्वत) का दौर दौरा कागजी कण्ट्रोल, हर चीजमें मिलावट, गन्दा शासन (ADMINISTRATION) महगी शिक्षा, बेरोजगारी, काश्मीरकी समस्या यह सब रोग इस समय देशको लगे हुए हैं। इन रोगोंका कारण ६० प्रतिशत देशका बटवारा है। यदि आज भी हिन्दुस्थान पाकिस्तान एक हो जाय तो देशके ६० प्रतिशत रोग एक क्षणमें दूर हो सकते हैं। उन रोगोंका कारण है पाकिस्तान। पाकिस्तान बननेका कारण है मुसलमानोंकी ओरसे पाकिस्तानकी मांग, पाकिस्तानी मांगका कारण है मुसलमानोंके बढ़े हुए हौसले, मुसलमानोंके बढ़े हुऐ हौसलोंका कारण है, कम्यूनल एवार्ड, कम्यूनल एवार्डका कारण है, कांग्रेसकी कमजोरी। कांग्रेसकी कमजोरीका कारण है महात्मा गांधीके विपरीत विचारविनिमय (सलाह मशवरा), महात्मा गांधीके गलत विचारविनिमय (सलाह मशवरे) का कारण है उनकी भ्रमित बुद्धि—उनकी भ्रमित बुद्धिका कारण है, उनकी हिन्दू मुसलमानोंकी अनुचित एकताकी भावना, उनकी हिन्दू मुसलमानोंकी अनुचित एकताकी भावनाका कारण है महात्मा गांधीके अनुचित एकताकी भावनाका कारण है महात्मा गांधीके

दिलमें पैगम्बर बननेकी इच्छा उनके पैगम्बर बननेकी भावनाका कारण है उन पर हिन्दुओंका अन्धविश्वास और उनकी जयके नारे (जयघोष)।

महात्मा गांधी पर हिन्दुओंने अन्धविश्वास किया उनकी हर बात धर्म अधर्म, उचित अनुचित मानते चले गए, उससे उनके मनमें पैगम्बर (धर्माचार्य) बननेकी भावना उत्पन्न हुई। उस भावनाके पैदा होनेसे उन्होंने हिन्दू मुसलिम-एकताका बिगुल बजाया—इस झूठी एकता कराने पर उनकी बुद्धि भ्रमित हुई—उनकी भ्रमित बुद्धिने कांग्रेसको गलत विचार विनिमय (सलाह मशावरे) मिले—विपरीत विचारों पर चलनेसे कांग्रेस में दुर्बलता आई—इस दुर्बलतासे कांग्रेसने मुसलमानोंकी उचित अनुचित मांगे स्वीकार कीं—इसी दुर्बलतासे कांग्रेसने कम्यूनल एवार्ड न रद न उस पर आचरण करनेकी नीति अपनाई—कम्यूनल एवार्डसे मुसलमानोंके हौसले बढ़े। हौसले बढ़नेसे उन्होंने पाकिस्तानकी मांगकी। पाकिस्तानकी मांग करने पर सबसे पूर्व श्री राजगोपालाचार्यने पाकिस्तान दे देनेका अपना मत प्रकट किया, उसके पश्चात् डा० राजेन्द्रप्रसादने अपनी पुस्तकमें इसका चित्र खींचा। उसके पश्चात् बिना किसी हिन्दुओंके साथ विचार किए। श्री जवाहरलाल नेहरूने कांग्रेसकी ओरसे पाकिस्तान स्वीकार किया। बस देशकी ९० प्रतिशत रोगों का बड़ा कारण हिन्दुओंका अन्धविश्वास और कांग्रेस ही है। यह सब कारण दब सकते थे। यदि श्रीजवाहरलालजी पाकिस्तान स्वीकार न करते। उनका पाकिस्तान स्वीकार करना ही देशमें रोगोंको निमंत्रित करना था। पाकिस्तान बननेसे जो परिणाम निकले हैं उनका पंडितजीको पहले ज्ञान न था। यदि इन परिणामोंका श्रीनेहरूजीको पहले ज्ञान होता तो वह हरगिज पाकिस्तान स्वीकार न करते। कर्मके परिणामका ज्ञान न होना यह किसका दोष है। यह दोष है मस्तिष्क (दिमाग)का न कि दिलका—श्रीनेहरूजी नहीं चाहते थे कि ऐसे परिणाम निकलें। मनसे तो वह प्रसन्नता, सुख और वैभवका चित्र बांधे हुए थे, परन्तु मस्तिष्कने धोखा खाया। मस्तिष्कने उत्पन्न होने वाले परिणामोंकी कुछ खबर न दी—बुद्धि ठीक काम न कर सकी। यह स्पष्ट बात है कि श्री नेहरू अंग्रेजके पालिटिक्सको न समझ सके और पाकिस्तान स्वीकार कर लिया इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देशमें इस समय जितने दुख हैं, वह देशके बटवारेसे पैदा हुए और देशका बटवारा कांग्रेसकी ओरसे पं० जवाहरलाल नेहरूने स्वीकार किया।

पं० जवाहरलालजीने देशका बटवारा करके कांग्रेस शासनकी नींव डाली।

जबसे कांग्रेसमें गांधीयुग प्रारम्भ हुआ है तबसे कांग्रेस हिन्दुओंके अधिकार छीन कर मुसलमानोंको देती आई है। प्रत्येक मीटिंगमें, कान्फ्रेंसमें, प्रत्येक समझौतेमें हिन्दुओंको मुसलमानों पर कुर्बान किया जाता रहा है। क्रिप्स मिशन (CRIPPS MISSION) विलायतसे हिन्दुस्तानका निर्णय करनेके लिए आया। उन्होंने निर्णय हिन्दूओंको और मुसलमानोंके विचारसे करना था, इसलिए उन्होने हिन्दुओं और मुसलमानोंकी प्रतिनिधि संस्थाओंको बुलाया। मुसलमानोंकी ओरसे मुस्लिम लीग आई और हिन्दुओंकी ओरसे कांग्रेस। क्या कांग्रेस हिन्दू संस्था थी यदि नहीं थी तो उन्होंने हिन्दुओंका प्रतिनिधित्व क्यों ग्रहण किया। उस समय साम्प्रदायिकता कहां चली गई। राज्यको यह दिखा जाता कि यदि तुमने हिन्दू-मुसलमानोंके प्रश्न पर निर्णय करना है तो हिन्दू महासभाको बुलाओ उनसे बातचीत करो। कांग्रेस हिन्दुओंकी संस्था नहीं है। कांग्रेसने हिन्दुओंका पार्ट क्यों अदा किया। उस समय कांग्रेस सम्प्रदाय क्यों बनी हिन्दुओंके अधिकारों पर डाका क्यों डाला। अब भी साम्प्रदायिकताकी आड़में पण्डित नेहरू हिन्दुओंको मुसलमानों पर कुर्बान कर रहे हैं। अभी जो उन्होंने कांग्रेस कमेटियोंको अपना सर्कुलर भेजा है उसमें स्पष्ट लिखा है कि चेष्टा करो कि चुनावमें अधिकसे अधिक टिकटें अल्पसंख्यकों (माइनोरिटीज) को दी जावें। सबसे बड़े अल्पसंख्यक मुसलमान हैं। इसका अभिप्राय यह है कि शासनमें अधिकसे अधिक भाग पंडित नेहरू मुसलमानोंको देना चाहते हैं और दूसरा भाग सिक्खोंको—

दैवज्ञकी दृष्टिमें संसारचक्र

शनि-मंगल युद्धका संसार पर प्रभाव

[श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्यौतिषाचार्य]



विगत दशवर्षोंसे 'श्री स्वाध्याय' के प्रत्येक अङ्कमें ज्योतिर्विज्ञानके आधारपर देश-विदेशकी राजनैतिक सामाजिकादि सामयिक घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता रहा है। पाठकोंने भी इस वैज्ञानिक लेखपर अत्यधिक रुचि दिखाई है और कई पाठकोंने तो यहां तक लिखा है कि "हम सर्वप्रथम श्री स्वाध्यायमें 'दैवज्ञकी दृष्टिमें संसारचक्र' लेखको ही विशेष उत्सुकतासे पढ़ते हैं, यह पत्रका प्रधान अंग है।" इत्यादि। अनेक महत्वपूर्ण घटनाओंके अक्षरशः सत्य प्रमाणित होनेसे सर्वसाधारण जनताके अतिरिक्त भारतीय ज्योतिर्विज्ञान पर श्रद्धा न रखनेवाले महाशयोंका ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ है। अस्तु।

इसबार अङ्क प्रकाशनके समय सहसा रोगाक्रान्त हो जानेसे यह लेख न लिखा जासका था और अभी अत्यधिक निर्बलतामें लेखनी पकड़ने वा मस्तिष्क सम्बन्धी कोई भी कार्य करनेसे वैद्य डाक्टरों और मित्रोंने बिल्कुल मना किया है। परन्तु इस 'नववर्षाङ्क' में यह स्तम्भ न पाकर हमारे सहस्रों पाठक निराश होते और कुछ यह कल्पना भी कर सकते कि अभी श्री नेहरूजी ने जो ज्योतिषियोंका प्रताड़न किया इसी भयसे 'श्री स्वाध्याय' ने भी यह स्तम्भ बन्द कर दिया हो।' इसी भ्रमको दूर करने और पाठकोंकी मनस्तुष्टिके लिए शक्ति न होते हुए भी रोग-शय्यापर से ही ये कुछ पंक्तियां लिख रहा हूं।

'श्री स्वाध्याय' के गताङ्क (वर्ष १० अङ्क ४) में हमने जो सविस्तर भविष्य सूचन किया था उससे पाठक भलि भांति परिचित ही हैं। गत जुलाई-अगस्त मासमें हिन्द पाक सीमापर दोनों ओर से भारी सैनिक तैयारी और सुरक्षाके प्रबन्ध हो गये थे और भारत पाकिस्तानमें युद्ध छिड़नेकी आशंका उत्तरोत्तर प्रबल होती जारही थी, फलत: सीमाप्रान्त, अमृतसर आदिसे लाखों नरनारी युद्ध भयसे भागकर पूर्वी पंजाब हिमाचल और दिल्लीकी ओर

क्योंकि स्त्रियोंके सम्बन्धमें लिखा है कि प्रत्येक जिलासे एक-एक स्त्री खड़ी की जाय। यदि श्री नेहरूकी इच्छा पूर्ण हो सके तो हिन्दुस्तानका सारा शासन मुसलमानों और स्त्रियोंसे चलाया जाना चाहिए। महात्मा गांधी भारतका प्रधान किसी अछूतकी कन्याको बनाना चाहते थे और पण्डित नेहरू शासनमें अधिकसे अधिक मुसलमानों और स्त्रियोंको पसन्द करते हैं। यह है कांग्रेसी राज्य और कांग्रेसी नेताओंकी नीति। यदि देशकी बागडोर पांच वर्ष और कांग्रेसके हाथमें रही तो देशकी क्या अवस्था होगी—यह समय बतलावेगा।

परन्तु जो जाति जो संस्था जो आदमी किसी पर अन्याय करके किसीका अधिकार छीन कर दूसरोंको देता है वह अपनी जड़ोंको खोखला करता है। इस अन्यायसे न कोई बना रहा और न रहेगा। आजकल कांग्रेसकी नींव हिन्दुओंके अधिकार कुर्बान कर देने पर कायम कर दी गई है। यह बनी नहीं रह सकती—न अन्याय कभी बना रहा—न कौवे कभी हंस बने—न विषसे कभी अमृत निकला। बुराईसे बुराई और भलाईसे भलाई निकलेगी यह अटल सिद्धान्त है। एक जवाहरलालजी तो क्या दस जवाहरलालजी भी आजावें तो कांग्रेसको ठीक नहीं कर सकते उसकी नींव खोखली हो चुकी है।

प्रयाण कर रहे थे। उसी समय हवाका रुख देखकर कुछ अवसरवादी ज्योतिषियोंने सस्ती प्रसिद्धि प्राप्त करने लिए उर्दू अंग्रेजीके समाचार पत्रोंमें भविष्यवाणी प्रकाशित करवा दी कि ता० ६ सितम्बरको युद्ध प्रारम्भ हो जायगा।' इससे जनताका भय और भी बढ़ गया। सुना है कि एक ज्योतिषीने श्री पं० जवाहरलाल नेहरू के नाम रजिस्टर्ड पत्र भेजा कि "६ अगस्तको पाकिस्तान अवश्य युद्ध छेड़ देगा, सावधान रहें।"

सम्भवत: ऐसे अवसरवादी ज्योतिषियोंकी इन ऊल-जलूल भविष्यवाणियोंसे खीझकर ही प्रधानमन्त्रीजी ने सभी ज्योतिषियों और ज्योतिर्विज्ञान पर प्रहारकर डाला। किन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि ज्योतिर्विज्ञान कोई हँसी मखौलकी वस्तु या ढकोसला नहीं यह वेदका नेत्र-रूप प्रधान अङ्ग है। इसी कारण भारतीय जनता और बड़े बड़े नेता इस शास्त्रको विज्ञानके रूपमें मानकर श्रद्धा रखते आये हैं। हां, इस शास्त्रको न जानने वाले यशिणी कर्ण पिशाचनी वाले ज्योतिषम्मन्य लोग वा अरुणसंहिता भृगुसंहितादि कपोल कल्पित संहिताएँ बनाकर स्वार्थ-सिद्धि के हेतु इस विज्ञानको कलंकित करने वाले कुछ अनाड़ी ज्योतिषियोंका दोष हो सकता है, ज्योतिर्विज्ञान का नहीं। अतः सबको एक लाठीसे हांकना और विज्ञान पर प्रहार करना उचित नहीं। महामान्य राष्ट्रपति श्रीडा० राजेन्द्रप्रसादजी और वर्तमान नेहरू गवर्नमेंटके कई केन्द्रीय एवं प्रान्तीय कांग्रेसी मन्त्री, गवर्नर और विश्व-विद्यालयोंके कुलपति-उपकुलपति तक इस विज्ञानपर विश्वास रखते हैं। ज्योतिष शास्त्रकी सत्यताके सम्बन्धमें इन सज्जनोंके प्रशंसापत्र हमारे पास आते रहे हैं। श्री नेहरूजी और श्री राजेन्द्रबाबूकी जन्मकुण्डलीके आधार पर हमने वर्षों पहले जो भविष्यवाणी प्रकाशित की थी उसके सत्यसिद्ध होने पर वयोवृद्ध विद्वान् विहारके राज्य-पाल (गवर्नर) हिजएक्सीलेन्सी लोकनायक श्री एम. एस. अणे महोदयने अपने १३ नवम्बर १९४९ के पत्रमें हमें लिखा था कि—

"......You have given own forecast about the achievements of pandit Jawahar Lal ji and Rajendra Babu. I am glad you are taking so much pains to interpret their kundalis......"

("आपने श्री पं० जवाहरलालजी नेहरू और श्री राजेन्द्रबाबूके विषयमें जो महत्वपूर्ण भविष्यवाणी की है उसके लिए मुझे प्रसन्नता है कि आपने उनकी जन्म-कुण्डलियोंका इतने मनोयोगसे अध्यन किया है।")

श्री नेहरूजी भारतकी महान् विभूति हैं उन्होंने देशके लिए जो अपूर्व त्याग और बलिदान किया है, उसके प्रति हमारे हृदयमें विशेष श्रद्धा है, इसी कारण हमने निःस्वार्थ भावसे समय-समयपर उनकी जन्मकुण्डली और वर्षकुण्डलीपर परिश्रम करके अपने विचार व्यक्त किये थे। परन्तु अब जब पंडितजीका इस विज्ञानपर विश्वास नहीं है, तो हम भी अब उनके सम्बन्धमें विशेष कुछ नहीं लिखेंगे। हां, अपने पाठकोंको हम यह बता देना आव-श्यक समझते हैं कि श्री नेहरूजी या किसी भी समाज या व्यक्तिके मानने या न मानने से ज्योतिर्विज्ञानका कुछ भी नहीं बनता बिगड़ता। नेहरूजी चाहे भले ही न मानें पर पाठकोंको स्मरण होगा कि हम 'श्री स्वाध्याय' और अपने पंचांगमें सन् १९४६ से और बादमें भी कई बार ६५६८ लिख चुके हैं कि—श्री नेहरूजीके जीवनमें सबसे अधिक महान् उत्कर्ष यश प्रतिष्ठा और राजयोग-कारक मंगलकी महादशा है, जो सन् १९४६ से प्रारंभ होकर १९५३ ई० तक रहेगी। इसमें उत्तरोत्तर उनका उत्कर्ष बढ़ता जायगा।" तदनुसार जो हुआ वह पाठकों के सामने ही है। अब इसी विज्ञानके आधारपर हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि मंगलकी महादशा समाप्त होने पर सन् १९५३ से आगे आजके समान श्री नेहरूजी की लोकप्रियता और एकाधिपत्य स्थिर न रह सकेगा। अभी मार्च १९५२ तक उनके जन्मलग्न और राशिसे भाग्यस्थानमें बलवान् गुरु चल रहा है, अतः वे अपने प्रभावसे कांग्रेसमें पुनः प्राण प्रतिष्ठा करके भावी चुनावोंमें कांग्रेसको बहुमत प्राप्त करानेमें सफल हो सकते हैं। यह

बात हम गतवर्ष अपने श्री विश्वविजय पंचांग सं० २००८ पृष्ठ ३७ पर भी स्पष्ट लिख चुके थे कि—"…… अत: निर्वाचन युद्धमें स्वल्प बहुमतसे कांग्रेसको सफलता मिल जाना सम्भव है।" यह सब होते हुए भी अभी शनि मंगल युद्धके बाद और आगे मार्च ५२ से जब गुरु मीन राशिसे निकल जायेगा, तब उन्हें अनेक विषम समस्याओंका सामना करना पड़ेगा। वहां विरोधी वातावरण बढ़ेगा (अस्तु)

पाठकोंको विदित ही है कि गत जुलाईके मध्यमें हमने परिस्थितिके सर्वथा विपरीत ज्योतिर्विज्ञानके आधार पर 'श्रीस्वाध्याय' के गतांकमें पृष्ठ ४४-४५ पर स्पष्ट लिखा था कि—"……इस अवधिमें एक यही बात संतोष की है कि गुरु शुक्र दोनों शुभग्रह बलवान् हैं, और शनि मंगलपर गुरुकी दृष्टि रहेगी अतः उपद्रवोंके कारण उपस्थित होने पर भी स्थिति काबूसे बाहर नहीं होने पायेगी।……अतः इस मासकी अवधिमें ये दोनों ग्रह संसारमें रोग दुर्भिक्ष युद्ध उत्पातादि अशुभ फलोंको न्यून करके कुछ सुख शांतिकी वर्षा करेंगे।……इस अवधिमें बड़े बड़े राष्ट्रोंमें शांति और संधि चर्चाएं अधिक चलेंगी। इत्यादि।

शनि मङ्गल युद्ध

इन मासोंमें विशेष महत्वका योग कन्या राशिमें शनि मंगलका युद्ध (युति) है। पौष कृष्ण ६ बुधवार ता० १९ दिसम्बर १९५१ ई० को इन दोनों संहारप्रिय ग्रहोंकी अंशसाम्य युति हो रही है। शनि मंगल परस्पर 'अहिनकुल' की भांति बद्धवैरी हैं। शनि कृष्णवर्ण प्रधान और मंगल रक्तवर्ण प्रधान ग्रह हैं। कृष्णवर्ण दूसरोंको हानि, पर द्रव्य पहार आदि दोषोंका द्योतक है। सम्पूर्ण भूमण्डलमें काला रंग विनाशकारक अशुभ रूप माना गया है। इसी कारण काले रंगके जितने भी कार्य हो सकते हैं वे सब स्वभावतः प्राय शनिमें निवास करते हैं। पापग्रहोंमें शनिको इसी कारण मुख्य स्थान प्राप्त है। मंगलका वर्ण लाल है, यह वर्ण क्रोधका द्योतक है, युद्धादि क्रोध के बिना हो नहीं सकते। इसी कारण रक्तवर्ण, रक्तपात, युद्ध, रोग, आदिका द्योतक है। पापग्रहोंमें इसका (मंगल का) दूसरा स्थान है, कारण रक्तवर्णका परिमाण अत्यन्त बढ़ जाने पर काले रंगमें परिणित हो जाता है। विनाशकारक कार्योंका प्रारम्भ सूचक रक्तवर्ण है, किन्तु उसको पूर्णतामें पहुँचाने वाला कृष्णवर्ण ही है। यहां रक्त और कृष्ण (मं० श०) का युद्ध कन्या राशिमें हो रहा है। साथ ही विशेषता यह है कि हस्त नक्षत्रस्थ इन दोनों पाप ग्रहोंपर आर्द्रानक्षत्रस्थ पापग्रह हर्शल (वरुण) का वेध है, और आगे ता० ३ जनवरी १९५२ ई० को मंगल नेपच्यून (इन्द्र) की युति भी हो रही है। ये सब योग संसारके लिए अनिष्टप्रद घटनाओंके सूचक हैं। इन पाप युद्ध वा युतियोंका प्रभाव विशेष समय तक लगभग तीन वर्ष तक रहेगा।

शनि-मंगल युतिका फल

मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ और मीन राशि तथा लग्न वाले व्यक्तियों, राष्ट्रों और वस्तुओंपर इस युतिका बुरा प्रभाव पड़ेगा। इन राशिवाले व्यापारियोंको बहुत सावधानीसे काम करना चाहिए। आधिदैविक आधिभौतिक उपद्रव अधिक होंगे। कहीं भयानक अग्निकाण्ड, यान-दुर्घटना (विशेषतः वायुयान-जहाजी दुर्घटना) भूकम्प वा विस्फोटसे जन-धनकी क्षति होगी। प्रजामें असन्तोष दुर्भिक्ष, रोग, सन्ताप, क्षोभ, घरेलू झगड़े, राजनैतिक साम्प्रदायिक संघर्ष और मंत्रीमण्डलमें उलटफेर अधिक होंगे। संसारके किसी प्रधान राजपुरुषकी मृत्यु वा तत्सम कष्ट होना सम्भव है। किसी प्रदेशमें शीत अधिक पड़ने, कहीं वर्षाकी न्यूनता अतिवर्षण, हिमपात, आंधी, तूफान, शलभा आदिसे खेतीमें हानि होगी। बड़े बड़े राष्ट्रोंमें पारस्परिक कलह, असन्तोष, युद्ध, भय और आतंक बढ़ेगा। कन्या राशि और मंगलका प्रभाव दक्षिण दिशा क्षत्रिय जाति, शासकवर्ग, और पूंजीपतिपर है और शनि का प्रभाव पश्चिम दिशा, यवन म्लेच्छ जाति एवं श्रमिकवर्गपर विशेष है, एतदर्थ क्षत्रिय जाति, शासक वर्ग सामन्तवर्ग, जागीरदार, जमींदार पूंजीपति बड़े व्यवसायी और प्रजावर्ग एवं श्रमजीवियोंमें साधारणतः यत्रतत्र और विशेषकर दक्षिण पश्चिम दिशा और राजस्थानमें अधिक

वा अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न होगी। निरपराधोंकी हत्या चोरी डाके लूटमार आदि अनैतिक कार्य अधिक होंगे। आर्थिक संकट और अन्न संकट बढ़ेगा। कन्याराशि में शनि मंगल पृथ्वीमें धन धान्यकी हानि और युद्ध भय उत्पन्न करते हैं और बृहस्पतिका समसप्तक होनेसे पूर्वी भारत (बंगाल बिहार आसाम उड़ीसा आदि) अयोध्या लंका और मध्यदेशमें दुर्भिक्षादि उत्पात अधिक होते हैं। यथा—

कर्क मीनमृगस्त्रीषु शनिभौमौ यदास्थितौ।
तदा युद्धाकुला पृथ्वी धनधान्यविवर्जिता॥
यदारसौरौ सुराजमन्त्री, यदैकराशौ समसप्तके वा।
साकेत लङ्का पुर मध्यदेशे, क्षुधाभयं शस्त्रभयं करोति॥

सारांश

कन्याराशिमें जहां इन दोनों संहारप्रिय ग्रहोंका युद्ध संसारको विनाशकी ओर ले जाना चाहता है, वहां सुख शांतिप्रिय ज्ञानविवेक और न्यायके अधिपति देवगुरु बृहस्पति बलवान् होकर (मीन राशिसे) इनकी गतिविधिको पूर्णरूपेण देख रहे हैं, फलतः ये अपने अमृतोपम प्रभावसे शनि मंगलके प्रचण्ड ताण्डवजन्य अशुभफलको बहुत अंशोंमें न्यून कर देंगे। इसके नेपथ्यूनपर भी गुरुदेव अपना प्रभाव डाल रहे हैं। अतः अभी शनि मंगल युद्धके प्रभावसे न तो संहारकारक विश्वयुद्ध प्रारंभ होगा और न भारत पाकिस्तानमें ही युद्ध छिड़ेगा। हां, भारत में घरेलू झगड़े, राजनैतिक धार्मिक साम्प्रदायिक संघर्ष, दुर्भिक्ष, आर्थिक संकटादिसे प्रजामें असन्तोष बढ़ेगा और यत्रतत्र कुछ दुर्घटनाएँ भी हो सकती हैं। अब गेहूं मक्का बाजरा, चावल, गुड़, शक्कर, अलसी, सरसों आदि तिल, इन पदार्थ और चांदी सोनामें भी तेजीकी सम्भावना है। अब गुरुदेव मीनराशि को छोड़कर शनिपर से अपना दृष्टि सम्बन्ध हटा लेंगे उस समयसे (मार्च १९५२ से आगे) संसार और भारतकी राजनैतिक आर्थिक समस्या उग्ररूप धारण करने लगेगी, अस्तु। अब हम यहां इन तीन मासों में (अश्विन शु० १० से पौष शु० १० तक) आनेवाले तिथिवार नक्षत्रपरक कुछ अन्य योगोंका दिग्दर्शन कराके इस निबन्धको समाप्त करेंगे।

तीन मासके अन्य योग

(१) कार्तिक कृष्ण अमावास्या (दीपमाला) मंगलवारी होनेसे प्रजामें असन्तोष और अग्निभय को सूचित करती है। यथा—

कार्तिकस्य त्वमावस्या रविवारेण संयुता।
शनिभौमयुता वापि सर्वलोकभयावहा॥
कार्तिक चेदमावास्यां भौमे वह्नि भयं भवेत्।

(२) कार्तिक शु० १२ मंगलवारको भरणी नक्षत्र होने से प्रजामें दुर्भिक्ष और रोगभय व्यापे।

अथवा भरणी सर्वा कार्तिक्यां (१५) भवति ध्रुवम्।
दुर्भिक्षं जायते घोरं तथा रोगा भवन्ति हि॥

(३) मार्गशीर्ष कृष्ण और शुक्लपक्षकी दोनों एकादशियोंको शनि रविवारका संयोग जलशोष, प्रजानाश और छत्रभंगकारक तथा कपास सूत्रादिके संग्रहसे वैशाखमें लाभकारक है। यथा—

मार्गे यदि स्यादादित्य एकादश्यां तिथौ यदा।
कार्पासादिकसूत्राणि ग्राह्यं वैशाखलाभकृत्॥
अथवा दैवयोगेन शनिवारस्य संगमः।
जलशोषः प्रजानाशश्छत्रभङ्गस्तदा भवेत्॥

(४) मार्गशीर्ष कृष्णपक्षमें तिथिवृद्धि और शुक्लपक्ष में प्रतिपदा का क्षय छत्रभंग प्रजापीड़ा, दुर्भिक्ष रोग शोकादि उत्पात सूचक है। यथा—

मार्गशीर्षे कृष्णपक्षे तिथिवृद्धिश्च जायते।
तदा युद्धाकुला पृथ्वी प्रजाः क्रन्दन्ति नित्यशः॥
मार्गशीर्षादि मासेषु शुक्लपक्षे तिथिक्षयः।
छत्रभङ्गं प्रजापीडां दुर्भिक्षं च समादिशेत्॥

(४) पौषकृष्णा ३ को धनुः संक्रान्ति रविवारको होनेसे आगे धान्य (अन्नपदार्थ) का भाव बहुत तेज होगा। यथा—

पौषमासेऽर्कसंक्रान्ती रविवारो यदाभवेत्।
धान्यमूल्यं द्विगुणितं तदाभवति नान्यथा॥

सं० २००९ का सविस्तार भविष्यविचार हमारे श्री विश्वविजय पंचांगमें देखिये। यह पंचांग गोयल ब्रादर्स थोक पुस्तकालय दरीबा कलां, देहली इस पतेसे प्राप्त हो सकेगा। अब पंचांगके लिए हमें न लिखकर सब ग्राहकों को उक्त पतेसे ही मंगवा लेना चाहिए। इस प्रतिका मूल्य ॥।) और डाक रजिस्ट्री के ।≈)॥ अलग हैं।

व्यक्तिगत शंका समाधान

["ज्यो० गर्ग"]

प्रश्न (१) मुझे आर्थिक कष्टसे छुटकारा होकर आर्थिकलाभ व्यापारसे कब होगा। — मदनलाल गुप्ता

उत्तर:—शुभ समय १६५३ मार्चसे आरहा है, प्रयत्नशील रहिये, चांदी कपड़ा आदिसे लाभ होगा। कृषिसे विशेष लाभ हो सकता है।

प्रश्न (२) संतान होगी कि नहीं, कब होगी? गोद की संतानसे लाभ होगा कि नहीं। —उमादत्त नन्दलाल

उत्तर—पत्नीकी पत्रिका की नकल भेजना आवश्यक है। शनि दशा मंगल अन्तर लाभकारक रहेगा। १) प्रति प्रश्न श्री स्वाध्याय को भेजें। अन्य प्रश्नोंका उत्तर दिया जा सकेगा। दोनों पत्रिका व २१) भेजकर पंचम भावका अध्ययन पूर्णतः प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न (३) अनेक प्रश्नः—श्री मोहनलाल जैन ग्रा० सं० ४०४७ इतने प्रश्नों का उत्तर इस क्षेत्र के बाहरका विषय है। १) प्रति प्रश्न व डाकव्यय श्री स्वाध्यायमें जमा करा दें तो उत्तर डाक द्वारा भेजा जा सकेगा।

प्रश्न (४) मेरा राजयोग कैसा है, तरक्की कब मिलेगी। "पीरियन" जयपुर।

राजयोग अच्छा है। ३६ की उम्र के बाद अच्छा लाभ है। गत मार्चके अन्तमें तरक्की मिली थी १६५२ अप्रैल में पुनः मिलेगी। स्थानांतर या यात्रा हो।

प्रश्न (५) सं० २००८ से खांड गुड़में हानि हो रही है। कब तक रहेगी, कैसे ठीक होगी।

ग्रा० सं० ३३८७ मोहनलाल बंसल।

उत्तर—हानिका समय समाप्त हो चुका है। स्टाकसे चिमटे न रहिये लाभ होगा आगामी वर्ष सं० २००६ लाभकारी है।

प्रश्न ६:—भाग्योदय कब होगा। ऋण मुक्ति कब होगी? ग्राहकसे ३७२२ रामस्वरूप 'गुप्त'।

सन् १६५३से भाग्योदय है। अधिक जोखमका धंधा न करें विपत्तियोंकी उपासनासे ऋण मुक्ति होगी

प्रश्न ७:—समय कबसे अच्छा निकलेगा। किस कामसे लाभ होगा? सं०१३१६ पंकटलाल व्यास

गुरु महादशा अच्छी है। सूर्य चन्द्र मंगलके अन्तर लाभकारी हैं। सं० २००६ सूर्य ११-१८ सेविशेष शुभ समय है। इस दशामें विद्याभ्यास करें।

प्रश्न ८:—सं० २००८ में आर्थिकक दशा सुधरेगी या नहीं, व्यापार कैसा रहेगा। बादानीलाल अग्निहोत्री

सन् संवत समय कुछ नहीं दिया है। तथापि सं० २००८ साधारण है। २००६से शुभ समय आने वाला है।

प्रश्न ९:—कब कब किस किस वस्तुसे लाभ होगा।

—रामजल मेहता 'जावरा'

तेजी मंदी आदि इस क्षेत्रके बाहरकी वस्तु है। वर्ष-पत्र बनवा लें ताकि प्रतिमासका विवेचन दिया जा सके।

प्रश्न १०:— स्वास्थ्यके विषयमें ज्योतिष क्या कहती है। ग्रा० सं० ३८५१ पुत्तूलाल जी

शनिकी शांतिके बिना स्वास्थ्यमें सुधार कठिन है। नीलम ३-३॥ रत्तीका धारण करनेसे लाभ होगा।

प्रश्न ११—बच्चे होकर मर जाते हैं, शांति बतावें। —श्री श्रीदत्तजी शास्त्री निंदाना

पत्नीके दोषसे यह होता है। प्रदोषव्रत और शिवाराधन करिये।

प्रश्न १२:—धन स्थान कैसा है, दोनों पुत्रोंमें किससे व कितने वर्ष तक लाभ है। —श्री मिलापचन्द श्रीमाली

धन स्थान संतोषजनक है, संतान दोनोंसे लाभ है। छोटेको कुसंगतिसे बचावें, उसका विवाह हो जाने पर चिंता दूर हो जायगी।

प्रश्न १३:—घाटेका रुपया कब व कैसे लौटेगा? ग्रा० सं० २६५१ बेचनलाल।

१६५३ मध्य तक लौटेगा। गुरुकी उपासना करो।

प्रश्न १४:—भाग्योदय कब किस प्रकार होगा।

—नारायण रघुसिंह गायकवाड

समयादिकी पूरी नकल नहीं भेजी है। २१ वैसे नौकरी लग कर २४ वेंमें भाग्योदय दिखाई देता है। २६ वें पुनः उन्नति होकर ३० के पश्चात् स्थायित्व आवेगा।

प्रश्न १५:—व्यापारमें डेढ मासले हानि है, घाटा पूरा होगा कि नहीं? किस किस वस्तुसे लाभ है?

—मोहनलाल जैन केशवराम पाडा 'पाटन'।

नुकसान तो पूरा हो ही रहा है आगामी वर्ष धनिया व चांदी का व्यापार ठीक रहेगा। लाभ भी अच्छा होगा।

प्रश्न १६:—तीन वर्षसे जिसमें हाथ लगाता हूँ हानि होती रही है। ६००० की हानि हो चुकी है। लाभ होगा या नहीं होगा तो कब? प्रा० सं० ३१८० जन्मका समयादि नहीं हैं। बिना शांतिके शुक्र महाराजकी कृपा कठिन है।

१७. प्रश्न:—आर्थिक स्थिति कब किस व्यापारसे सुधरेगी? —काशीप्रसाद वैश्य प्रयाग।

उत्तर—सं० २००६ के अन्तसे तुलाके शनिमें काले रंग और विलाहन वस्तुओंके व्यवसायसे आर्थिक स्थिति सुधरेगी।

१८. प्रश्न—दशममें उच्चका राहु किस उम्रमें कैसा फल करेगा? —भरतपुरका एक ग्राहक।

उत्तर—राहु दशम भावका उच्चफल ३६ वर्षके उपरान्त करेगा।

१९. प्रश्न—ऋण मुक्ति कब तक होगी।

—हुकमचन्द्र शर्मा कलकत्ता

उत्तर—पूर्ण ऋणमुक्ति सं० २०१० में होगी। श्रीसूक्तके पाठ विधि पूर्वक करें या करावें। प्रतिष्ठा यथापूर्व बनी रहेगी।

२०. प्रश्न—लगातार नुकसान हो रहा है। लाभ कबसे होगा? पुत्र होगा कि नहीं?

—राधामोहन चौधरी अराई

उत्तर—सं० २००१ से क्रमशः लाभ होना प्रारम्भ होगा। पुत्रयोग कष्ट साध्य है। शिवार्चन देवीभागवत और नया श्राद्ध कराइये।

२१. प्रश्न—शेष जिन्दगी कितनी बाकी है?

—सेवाराक ब्यावर

उत्तर—लगभग १० वर्ष और जियेंगे। आयुका स्पष्ट निर्णय इस स्तम्भमें निःशुल्क नहीं होता।

२२. प्रश्न—पुत्र कब होगा? और वह जीवित रहेगा या नहीं। —गोपीचन्द गर्ग दल्की

उत्तर—पुत्र योग कष्ट साध्य है। ४२ वें वर्ष में योग बनता है। पहले शिवार्चन सोमवार व्रत पूजन और सन्तान गोपाल पुरश्चरण करने से वृद्धावस्था में एक पुत्र जीवित रह सकेगा।

विशेष सूचनाः—

इनके अतिरिक्त कई ग्राहकों ने अपने लम्बे चौड़े पत्रों में कई प्रश्न पूछ डाले तो कुछ ने लिखा है कि हम तीन वर्ष से ग्राहक हैं अतः तीन प्रश्नोंका उत्तर दीजिए, कुछ ग्राहकों ने साल भरका पूरा वर्ष फल ही निःशुल्क डाक द्वारा भेजने को लिखा है। ऐसे ग्राहकों को इस स्तम्भ में कोई उत्तर नहीं दिया जाता। हम कई बार लिख चुके हैं कि वर्ष भर में एक ग्राहक को केवल एक साधारण प्रश्न का उत्तर ही श्री स्वाध्याय के इस स्तम्भ में प्रकाशित हो सकेगा चाहे वह दश वर्ष से पुराना ग्राहक ही क्यों न हो। इस प्रकार यदि प्रत्येक ग्राहकों के अनेकों प्रश्नों के शास्त्रीय उत्तर वर्ष फल और आयु स्पष्ट करने के लिए बैठ जावें तो इसके लिए एक पूरा विभाग ही अलग खोलना पड़े, उसका रुपयों का व्यय कौन ग्राहक या श्रीमान देने के लिए उद्यत है। ग्राहकों से इतना तो होता नहीं कि वे ज्योतिविज्ञान की उन्नति के लिए यदि अपने पल्ले से कुछ न दे सकें तो कम से कम एक दो नये ग्राहक बनाकर ही सहायता करें। फिर हम किस बल पर उनकी अधिक सेवा कर सकते हैं। श्रीस्वाध्याय के स्तम्भ में एक प्रश्न के निःशुल्क उत्तर की जो योजना बनाई है उसी नियम के अनुसार ग्राहकों को लाभ उठाना चाहिये।

—ज्यो० 'गर्ग'

श्री स्वाध्यायसंद नं. रोशन



महामहिम आचार्य
श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीत

श्रीराष्ट्रालोक

राष्ट्रभाषानुवादसहित

राष्ट्रवादी हो आर्य हैं। आर्य ही शान्तिकी स्थापना कर सकते हैं।

भारत भारतीयोंका है

स्वातन्त्र्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। राष्ट्र हमारा पिता है, माता है और आचार्य है। हम सदा उसके सेवक हैं। हमारा राष्ट्र हमें भोग और मोक्ष दोनों देता है।

हम सच्चे राष्ट्रिय हैं

अभारतीय भारतके अतिथि हो सकते हैं, राष्ट्रिय नहीं।

हम संक्रांतिका सदा आदर करते हैं। हमें ऐसी शान्ति नहीं चाहिये जो राष्ट्रको परतन्त्र बनाए।

राष्ट्रिय राष्ट्रके पुत्र होते हैं, पति नहीं।

भारतीय अपने आपको हिन्दू माननेमें गौरवका अनुभव करते हैं। भारतीय आदर्शके विपरीत क्रांति किंक्रांति है, संक्रांति नहीं। यदि आप इन भावोंसे स्नेह करते हैं तो 'श्रीराष्ट्रालोक' अवश्य पढ़िये।

श्रीराष्ट्रालोक परम पवित्र भारतीय आदर्शका एक जीवन शास्त्र है।

राष्ट्र प्रेमी इसका आदर कर रहे हैं। जनता हाथों-हाथ अपना रही है। आप भी आज ही मंगाइये। मूल्य ॥) मार्गव्यय ≈) 'श्रीस्वाध्याय' और श्रीविश्वविजयपञ्चाङ्गके स्थायी ग्राहकों तथा विद्यार्थियोंको मार्गव्यय सहित ।≈) में

महामहिम श्रीमदमृतवाग्भवाचार्यप्रणीत

श्रीआत्मविलास

मनुष्यमात्रके लिए परम कल्याणकारी व सन्मार्ग प्रदर्शक यह वही अद्भुत आध्यात्मिक दार्शनिक ग्रन्थरत्न है, जिसके प्रकाशित होते ही दार्शनिक जगत्में हलचल-सी मच गई और सैंकड़ों प्रतियां हाथों-हाथ लग गई। इस ग्रन्थको पढ़नेसे स्थितप्रज्ञता प्राप्त होती है, चित्त शांत होता है। अतः यदि आप भी आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? ईश्वर जगदुत्पत्ति क्यों और किस प्रकार करता है? हम क्या हैं और हमें क्या करना चाहिए? दर्शन किसे कहते हैं? उनका प्रारम्भ तथा अन्त कहां होता है? उनकी उपपत्ति क्या है? आदि आदि आध्यात्मिक गूढ़ रहस्योंसे भलीभांति परिचित होकर आत्मसाक्षात्कार करना चाहते हैं तो इस ग्रन्थका अवश्य मनन कीजिए। आपके सभी सन्देह दूर होकर अद्वैत आनन्द प्राप्त होगा।

मूल्य २) रु० मार्ग व्यय ।≈) अलग।

सूचना

श्रीपञ्चस्तवी श्रीपरशुरामस्तोत्र और श्रीसप्तपदीहृदय की अब कोई भी प्रति कार्यालयमें शेष नहीं है। अतः इन के लिए कोई ग्राहक अब मार्गव्यय (टिकट) न भेजें। श्रीपञ्चस्तवी लघुस्तवश्री ज्ञानदीपिका संस्कृत टीका सहित नागपुरमें वयोवृद्ध विद्वान् श्रीस्वाध्यायके सम्मान्य सहायक श्रद्धेय श्री पं० गोवर्द्धन शर्माजी छांगाणी आयुर्वेदाचार्य महोदयके तत्वावधानमें छप रही है। शीघ्र प्रकाशित होगी।

'श्रीस्वाध्याय' और 'श्रीविश्वविजयपञ्चाङ्ग'
मिलनेके स्थान

दिल्ली—गोयल ब्रादर्स बुकसेलर, दरीबाकलां
बम्बई—मावीहल कार्यालय राममन्दिर बिल्डिङ्ग कालबादेवी
जयपुर – भृगुज्योतिषकार्यालय, गोविन्दराजियोंका रास्ता
उज्जैन – श्री पं० रामचन्द्रजी त्रिवेदी मारुतीगंज
भरतपुर—श्री डा० आर० सी० गुप्ता गंगामन्दिर
मुरार—श्री पं० गंगाप्रसादजी ज्योतिषाचार्य

प्राप्तिस्थान—व्यवस्थापक, श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)

तीसरी बार

छप गया

महामहिम आचार्य
श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीत

श्रीराष्ट्रालोक

राष्ट्रभाषानुवादसहित

राष्ट्रवादी ही आर्य हैं। आर्य ही शान्तिकी स्थापना कर सकते हैं।

भारत भारतीयोंका है

स्वातन्त्र्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। राष्ट्र हमारा पिता है, माता है और आचार्य है। हम सदा उसके सेवक हैं। हमारा राष्ट्र हमें भोग और मोक्ष दोनों देता है।

हम सच्चे राष्ट्रिय हैं

अभारतीय भारतके अतिथि हो सकते हैं, राष्ट्रिय नहीं।

हम संक्रांतिका सदा आदर करते हैं। हमें ऐसी शान्ति नहीं चाहिये जो राष्ट्रको परतन्त्र बनाए।

राष्ट्रिय राष्ट्रके पुत्र होते हैं, पति नहीं।

भारतीय अपने आपको हिन्दू माननेमें गौरवका अनुभव करते हैं। भारतीय आदर्शके विपरीत क्रांति किंक्रांति है, संक्रांति नहीं। यदि आप इन भावोंसे स्नेह करते हैं तो 'श्रीराष्ट्रालोक' अवश्य पढ़िये।

श्रीराष्ट्रालोक परम पवित्र भारतीय आदर्शका एक जीवन शास्त्र है।

राष्ट्र प्रेमी इसका आदर कर रहे हैं। जनता हाथों-हाथ अपना रही है। आप भी आज ही मँगाइये। मूल्य ॥) मार्गव्यय ≈) 'श्रीस्वाध्याय' और श्रीविश्वविजयपञ्चाङ्गके स्थायी ग्राहकों तथा विद्यार्थियोंको मार्गव्यय सहित ।=) में

महामहिम श्रीमदमृतवाग्भवाचार्यप्रणीत

श्रीआत्मविलास

मनुष्यमात्रके लिए परम कल्याणकारी व सन्मार्ग प्रदर्शक यह वही अद्भुत आध्यात्मिक दार्शनिक ग्रन्थरत्न है, जिसके प्रकाशित होते ही दार्शनिक जगत्में हलचल-सी मच गई और सैंकड़ों प्रतियां हाथों-हाथ लग गईं। इस ग्रन्थको पढ़नेसे स्थितप्रज्ञता प्राप्त होती है, चित्त शांत होता है। अतः यदि आप भी आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? ईश्वर जगदुत्पत्ति क्यों और किस प्रकार करता है? हम क्या हैं और हमें क्या करना चाहिए? दर्शन किसे कहते हैं? उनका प्रारम्भ तथा अन्त कहां होता है? उनकी उपपत्ति क्या है? आदि आदि आध्यात्मिक गूढ़ रहस्योंसे भलीभांति परिचित होकर आत्मसाक्षात्कार करना चाहते हैं तो इस ग्रन्थका अवश्य मनन कीजिए। आपके सभी सन्देह दूर होकर अद्भुत आनन्द प्राप्त होगा।

मूल्य २) रु० मार्ग व्यय ।=) अलग।

सूचना

श्रीपञ्चस्तवी श्रीपरशुरामस्तोत्र और श्रीसप्तपदीहृदय की अब कोई भी प्रति कार्यालयमें शेष नहीं है। अतः इन के लिए कोई ग्राहक अब मार्गव्यय (टिकट) न भेजें। श्रीपञ्चस्तवी लघुस्तवश्री ज्ञानदीपिका संस्कृत टीका सहित नागपुरमें वयोवृद्ध विद्वान् श्रीस्वाध्यायके सम्मान्य सहायक श्रद्धेय श्री पं० गोवर्द्धन शर्माजी झांगाणी आयुर्वेदाचार्य महोदयके तत्वावधानमें छप रही है। शीघ्र प्रकाशित होगी।

'श्रीस्वाध्याय' और 'श्रीविश्वविजयपञ्चाङ्ग' मिलनेके स्थान

दिल्ली—गोयल ब्रादर्स बुकसेलर, दरीबाकलां
बम्बई—भावीरहस्य कार्यालय राममन्दिर बिल्डिङ्ग कालबादेवी
जयपुर - भृगुज्योतिषकार्यालय, गोविन्दराजियोंका रास्ता
उज्जैन — श्री पं० रामचन्द्रजी त्रिवेदी मारुतीगंज
भरतपुर—श्री डा० आर० सी० गुप्ता गंगामन्दिर
मुरार—श्री पं० गंगाप्रसादजी ज्योतिषाचार्य

प्राप्तिस्थान—व्यवस्थापक, श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)

भारतीय संस्कृतिके अग्रदूत राष्ट्रधर्मके प्रमुख प्रचारक—

'श्रीस्वाध्याय' के लिए--

राष्ट्रके उद्गार



श्रीयुत बा० पुरुषोत्तमदासजी टण्डन अध्यक्ष अ०भा० राष्ट्रीय महासभा—'श्रीस्वाध्याय' को देख मुझे बहुत सुख मिला। ....इस पत्र और इसके सञ्चालक मण्डलसे राष्ट्रीय कार्यमें पूर्ण सहायता मिलेगी........।

त्यागमूर्त्ति श्री १०८ गो० गणेशदत्तजी महाराज—'श्रीस्वाध्याय' अपने विषयका अनुपम पत्र है।.... यह प्रत्येक सार्वजनिक संस्थाओं, पुस्तकालयों और वाचनालयोंमें स्थान पाने योग्य है........।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी खाद्यमंत्री केन्द्रीय सरकार—'श्रीस्वाध्याय' बहुत अच्छा निकल रहा है। लेख विचार प्रवर्तक हैं।........मैं इसकी पूर्ण सफलता चाहता हूँ........।

पंजाबविश्वविद्यालयके उपकुलपति दीवान श्री आनन्दकुमार जी—"श्रीस्वाध्याय साहित्यिक अभिरुचिका पत्र है और अपने पाण्डित्यपूर्ण स्तरको अक्षुण्ण व स्थिर रक्खे हुए है।............ पत्र द्वारा हमारी प्राचीन संस्कृतिके उद्धार व संवर्द्धनका प्रशंसनीय प्रयत्न किया जा रहा है।................"

श्रीयुत बा० मैथिलीशरणजी गुप्त—"........'श्रीस्वाध्याय' बहुत सुन्दर निकल रहा है। मैं आपके परिश्रमकी प्रशंसा और पत्रकी उन्नतिकी कामना करता हूँ।........"

श्रीयुत प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति—'श्रीस्वाध्याय' अपने ढङ्गका अनूठा पत्र है।........यह एक उच्चकोटिका सांस्कृतिक पत्र है। मैं इसकी पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्रीयुत बाबूराव विष्णु पराड़कर जी—"....वस्तुतः यह त्रैमासिक अपने ढङ्गका निराला है। आर्य संस्कृतिके प्रायः प्रत्येक अङ्ग पर इसमें प्रकाश डाला जाता है।........"

श्री डा० रामकुमार वर्मा जी—"........'श्रीस्वाध्याय' हमारे साहित्यका ऐसा पत्र है जिस पर हमें अभिमान है। इसमें जो सांस्कृतिक दृष्टिकोण रहता है वह हमें अन्य भारतीय पत्रोंमें नहीं मिलता। 'श्रीस्वाध्याय' के प्रत्येक पृष्ठमें मुझे अध्ययन और अनुशीलनसे परिपूर्ण साहित्यिक सामग्री मिली।........"

श्रीयुत पं० रूपनारायणजी पाण्डेय (सम्पादक 'माधुरी')—"........'श्रीस्वाध्याय'की सभी सामग्री ज्ञानवर्द्धक और उपादेय है।........प्रत्येक देशभक्त, राष्ट्रभाषा प्रेमी, जिज्ञासु, धर्म प्रेमीको अवश्य इसे अपनाना चाहिए। हर एक पुस्तकालयमें यह पत्र स्थान पाने योग्य है।........"

श्रीयुत पं० देवीदत्तजी शुक्ल (पू०सम्पादक 'सरस्वती')—"........'श्रीस्वाध्याय' बहुत ही सुन्दर निकल रहा है।........आपने 'स्वाध्याय' निकाल कर हिन्दीके एक विशेष अभावकी पूर्त्ति की है, इसमें सन्देह नहीं। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए हिन्दी वाले आपके अवश्य कृतज्ञ होंगे।

श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर—"....'श्रीस्वाध्याय' के विषय में विशेष क्या कहा जाय, यह एक अत्युत्तम पत्र है। मैं हृदय से इसकी सफलता चाहता हूँ। इसका अन्यान्य महत्ताओं पर वैदिकधर्म' में प्रकाश डालूंगा।

इनके अतिरिक्त भारतके अनेकों महामान्य विद्वानों और प्रमुख पत्र-पत्रिकाओंने 'श्रीस्वाध्याय' की मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। स्थानाभावके कारण वे सब यहां उद्धृत नहीं हो सकीं।

श्री प० हरदेव शर्मा त्रिवेदी द्वारा अर्जुन प्रेस दिल्लीमें छपकर 'श्रीस्वाध्यायसदन' सोलन (शिमला) से प्रकाशित।